UNIVERSAL LIBRARY

OU_180337

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No 118/V31S Accession No. H2872

Author वर्मा, शिवनारायण

Title शान्ति का संदेश। N.D.

This book should be returned on or before the date last marked below.

# शाही लकड़हारा

प्रत्येक घर में रखने योग्य पुस्तक

लाखों व्यक्ति जिसका अध्ययन कर चुके हैं।

## हमारे अन्य प्रकाशन

विजय किस की ?
शैतान पुजारी
क्रान्तिकारी रमणी
आँचल और आंसू
उसकी कहानी
प्रेम पुजारिन
कौन किसी का ?
चाँद सितारे
पायल
आग
आंसू
बुढ़ा फरोश
फांसी की कोठरी से
राजकुमारी की प्रेम कहानी
समाज का अत्याचार
पति पत्नी प्रेम
चोट
गुनाह
जीना सीखो
खेले कैसे ?

सहगल प्रकाशन नं०—८

# शाही लकड़हारा

लेखक
शिवव्रत लाल वर्मन एम० ए०

प्रकाशक
नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़
चौक फतहपुरी, देहली-६

प्रकाशक :—
बलराज सहगल
प्रो०: नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज
चौक फतहपुरी, देहली-६

( प्रकाशक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित )
[स्वतन्त्र भारत में—दूसरा संस्करण]
मूल्य—तीन रुपया आठ आना

मुद्रक:—
महालक्ष्मी प्रेस,
दरीबा कलाँ, देहली

# विषय-सूची

१—राजा रानी की बात चीत
२—अबला का देश निकाला
३—रानी बन में
४—मृत्यु
५—लकड़हारा और लोभीलाल
६—सत्संग
७—लाड प्यार का परिणाम
८—राजा कुम्हार के घर
९—राजकुमारी
१०—सौतेली माता
११—धमलू माली
१२—पिता पुत्री
१३—बनावटी राजकुमार
१४—बाग की बाते
१५—बीना का विवाह
१६—बेली की दुर्दशा
१७—लकड़हारा
१८—धमलू का स्वप्न

१६—भटियारी
२०—लोभीलाल की दुकान
२१—भाग्य का खेल
२२—माधो गोविन्द की यात्रा
२३—लकड़हारा राजकुमार
२४—वियोग
२५—लकड़हारा
२६—धूर्तों का स्वांग
२७—जोधानाथ और बीना
२८—युवक सन्यासी
२९—शाही लकड़हारे की कहानी
३०—छल कपट
३१—साधुओं का अखाड़ा
३२—महल की दासी
३३—धूर्तता की सफलता
३४—घर का भेदी लंका ढावे
३५—पाप परिणाम
३६—किछुड़े हुवों का मिलाप

———

# भूमिका

मैं अमेरिका से वापस आ रहा था, सिंगाई में पी० एण्ड ओ० के जहाज में काशी निवासी पण्डित काशीनाथ शर्मा से मेरी भेंट हुई। वह बड़े प्रसन्न चित्त के रसिक महाशय थे। उस जहाज में हम केवल दो व्यक्ति ही भारतीय थे। हम दोनों में प्रेम हो गया और रात दिन एक साथ रहने लगे। मनुष्य को प्रकृति ने सामाजिक जीव बनाया है। ऐसे मनुष्य संसार में बहुत थोड़े मिलेंगे, जो मेल मिलाप न चाहते हों। यदि किसी की ऐसी प्रकृति हो, तो समझ लो कि वह मनुष्य विरक्त होगा अथवा जंगली होगा। साधारण लोग मेल मिलाप चाहते हैं और एक दूसरे से प्रेमपूर्वक बातचीत करते हैं। इससे चिन्ता के दूर करने का निश्चिन् साधन हाथ लग जाता है और एकान्त का समय आनन्द से कट जाता है। मैंने पण्डित काशीनाथ की संगति को सौभाग्य समझा, क्योंकि यात्रा में मुझे प्रायः जो कष्ट थे वो भी दूर हो गये और उनसे मुझे सब प्रकार की सहायता भी प्राप्त हुई। दिन में वह अधिकतर मेरे ही केबिन में रहते थे, केवल रात को सोने के लिए अपने केबिन में जाया करते थे।

सिंगाई से हम हांगकांग आये। हांगकांग तथा सिंगापुर में मैंने रात को पण्डित जी से कहा—कोई कथा सुनाओ, जिससे समय सुख से कट जाये। प्रायः जहाज की यात्रा की अकर्मण्यता मनकी उदासीनता का कारण हो जाती है। कहां तक कोई समुद्र

के दृश्यों को देखा करे, उनसे मन ऊब जाता है। आप हंसे, कहने लगे—मुझे शाही लकड़हारे की कथा याद है, जो अपनी नवीनता की दृष्टि से बहुत ही मनोरंजक है, कहो तो सुनाऊँ? मैंने कहा, उपकार और फिर पूछ पूछ, "अंधा क्या चाहे, दो आंखें" आप सुनाइये। उन्होंने दो तीन घण्टों में ही यह कथा आदि से अन्त तक मुझे सुना डाली। सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने कहा लाहौर चलकर मैं इसको पुस्तक के रूप में प्रकाशित करूंगा।

यात्रा से लौटकर लाहौर पहुँचने पर मुझे इस कथा का ध्यान आया, लिखकर प्रेस में छपने को दे दी। पुस्तक के प्रकाशित होने पर जनता ने इसे जिस सम्मान की दृष्टि से देखा, सराहनीय थी। देखते ही देखते हिन्दी और उर्दू दोनों जबानों में इसके अनेक संस्करण छप गये। यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे किसी भी ग्रन्थ से कम मान नहीं दिया जा सकता। और जिसे गृहस्थ के सभी व्यक्ति पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री और मित्र सभी निस्संकोच एक दूसरे के सामने पढ़ सकते हैं।

अन्त में मैं उन अपने मित्र काशीनाथ जी को हार्दिक धन्यवाद देता हूं, जिनकी वाणी से यह कथा सुनी गई और जिनके कारण मुझ में इसको छपवा कर प्रकाशित करने का भाव उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार का दूसरा "शाही डाकू" नामक उपन्यास भी हिन्दी में छप गया है, जो अत्यन्त उपदेश पूर्ण पुस्तक है।

शिवव्रत लाल वर्मन

१

# राजा-रानी की बात-चीत

"राजा दिन क रात कहे, तो रात कहे सब कोय।
सांच झूठ का निर्णय नहीं, हांजी हाँजी होय ॥"

ग्रीष्म ऋतु की पूर्णिमा की अर्द्धरात्री के समय राजस्थान का एक वीर नरेश अपनी सुन्दर स्त्री के साथ महल की छत पर खुली हवा में लेटा हुआ है। परस्पर प्रेम की बातें हो रहीं हैं। समय आनन्द और हर्ष में व्यतीत हो रहा है।

राजा ने कहा—"सुन्दरी! कोई गीत सुनाओ, जिससे जी प्रसन्न हो। रानी ने--'जो आज्ञा' कह तुरन्त हाथ में बीन ले ली और घुटना टेक कर भूमि पर बैठ गई। एक सुरीला राग छेड़ दिया। परन्तु सहसा राजा को न जाने किस चिंता ने आ घेरा। उसने एक ठंडी सांस ली और मुंह से 'हाय-हाय' शब्द निकल पड़े। अपशब्दों को सुनकर सती-साध्वी स्त्री के होश उड़ गये। वह हृदय की सरल थी, पतिव्रता थी! पतिदेव के मुख से 'हाय' शब्द का निकलना था कि उस का फूल की तरह खिला हुआ मुखड़ा मुर्झा गया। वह चरणों में शीश नवाकर बोली—"महाराज! मुझसे क्या अपराध हुआ? मैंने क्या किया जो आप इतने रुष्ट हो गए? स्वामिन्! मैं आपकी दासी हूं, आप

की सेवा अपना परम धर्म समझती हूं। आप मेरे लिए ईश्वर तुल्य हैं। आपकी प्रसन्नता मेरे जीवन का आधार है। आप हंसते हैं तो मेरे मन को प्रसन्नता होती है। आपकी उदासी से मेरी छाती फटने लगती है। नाथ! शीघ्र बतलाइये, मैंने क्या अपराध किया? मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी हूं, आपके सुख-दुःख की साथी हूं। मुझसे अपने मन का हाल न कहियेगा तो फिर किस से कहियेगा?"

राजा—"प्रिये, इसके सुनने से तुम को कुछ लाभ न होगा?"

रानी—"लाभ हो या न हो। जिस प्रकार सूर्य से चन्द्रमा प्रकाश लेता है। उसी प्रकार पत्नी अपने पति के मुख को देख कर प्रसन्न रहती है। जिस प्रकार सूर्य के अस्त होते ही कमलिनी का मुख कुम्हाला जाता है, उसी प्रकार स्त्री पति को दुःखी देख कर दुःखी हो जाती है। मेरा धर्म है कि मैं आपके दुःख का कारण पूछूं और उसके दूर करने का उपाय करूं। आपने क्यों लम्बी साँस से आह खींची? आर्यपुत्र, जब मैं आप के सुख की साथी हूं तो मुझे अपने दुःख की भी साथी बनाइये। मैं नहीं समझती कि मैंने क्या अपराध किया है? आपको प्रसन्न करने के लिए मैंने गीत गाया, आशा थी कि आप सुनकर प्रसन्न होंगे, परन्तु परिणाम इसके विपरीत ही हुआ।"

राजा—"नहीं प्रिये, तुझ से कोई अपराध नहीं हुआ। मैं जानता हूं कि तू स्त्री-धर्म से परिचित है। तूने अपने तन-मन को मुझ पर अर्पण कर रखा है। विश्वास रख, मेरे लम्बी साँस खींचने का कारण कुछ और ही है।"

रानी—"वही तो मैं सुनना चाहती हूँ। भिखारी निर्धनता से घबराता है, अभिलाषी अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने से दुःखी रहता है, सेनापति अपनी सेना को योग्य बनाने की चिन्ता में रहता है, राजा अपनी प्रजा के दोषों को देखकर घबराता

है। आप पर तो ईश्वर की पूर्ण कृपा है, देश आबाद है, प्रजा सुखी है, सेना शिक्षित है, भण्डार भरपूर है, शत्रु आपका नाम सुनकर काँपते हैं, आप का न्याय भी विख्यात है, शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं, न ही किसी शत्रु का भय है, फिर आपने लम्बी सांस खींची तो क्यों खींची ? मैं केवल इतना ही जानना चाहती हूं।"

राजा—"प्यारी, जो बातें तूने कहीं, सब सच हैं। इनकी सत्यता में तनिक भी सन्देह नहीं। हाँ, एक बात अवश्य है। मेरी सदैव यह इच्छा रहती है कि मैं ऐसा न्याय करता रहूँ कि शेर और बकरी एक ही घाट पानी पियें। न कोई किसी को सताए और न कोई किसी को बेजा दबाए। इसके अतिरिक्त मुझे और कोई चिन्ता नहीं है। इस में मैं असफलता देखता हूं। उद्योग करता हूं, रात-दिन इसी धुन में लगा रहता हूं। परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकलता। अगर कोई शत्रु होता, तो मैं उसे नष्ट कर देता, और यदि राज-काज में मेरे कारण कोई त्रुटि होती, तो मैं उसको भी दूर कर देता।"

रानी-"धन्य है महाराज ! सूर्य-कुल-तिलक ऐसे ही होते हैं।"

राजा—"बाह्य शत्रुओं को पराजित करना आसान है, परन्तु अन्तरंगत शत्रुओं पर विजय पाना कठिन है।"

रानी-"महाराज ! अन्तरंग शत्रु कौन हैं, मैं भी तो सुनूं ?"

राजा—"सुनो, यदि पुत्र दुराचारी है, तो पिता को दुःख होता है। यदि सेवक दुष्ट है तो स्वामी को चिन्ता रहती हैं।"

रानी कुछ देर के लिये चिन्तित हो गई ; उसके मुख से कोई शब्द नहीं निकला। परन्तु कुछ देर बाद बोली—"यह कौनसी कठिन बात है। यदि पूत कपूत है तो उसे त्याग दिया जाये, और यदि सेवक स्वामी भक्त नहीं है तो उसे निकाल दिया जाए। संसार में जहाँ अनेक रोग हैं उन रोगों की औषधियां भी हैं।

संसार में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसका उपाय न हो। कठिन से कठिन बात भी उद्योग से सरल हो जाती है। आप तो राजा हैं, आप को सब प्रकार के आदमियों से पाला पड़ता है। भले-बुरे सभी राज्य आधीन रहते हैं। राजा केवल बाह्य जगत् का ही शासक नहीं, वह अन्तरंग जगत् का भी अधिष्ठाता और व्यवस्थापक है। प्राचीन समय में तो राजा बड़ेज्ञानी हुआ करते थे। ऋषि-मुनि तक उनसे ज्ञान सीखने आते थे। वे जप, तप, नियम, संयम सब से परिचित हुआ करते थे। यदि किसी सेवक से आप रुष्ट हैं, तो उसे निकाल दीजिये।"

राजा—"सलाह तो ठीक है, पर मैं करूं तो क्या करूं? एक नौकर बुरा हो तो उसे निकाल दूँ, परन्तु यहाँ तो आबे-का-आवा ही बिगड़ा हुआ है। आदि से अन्त तक सब एक जैसे हैं। यदि सब को एकबारगी निकाल दूँ तो राज-काज में हानि पहुँचे। मैं स्वयं चिन्तित हूँ, क्या करूँ क्या न करूँ? सब धूर्त्त और चापलूस हैं।"

रानी—"क्या आपके बड़े नौकर भी हाँ जी, हाँ जी करने वाले हैं? सबके सब चापलूस हैं? क्या उनमें कोई भी न्याय प्रिय नहीं है? मेरी समझ में नहीं आता कि प्रधान मंत्री, सेनापति अथवा उच्च कर्मचारी कैसे चापलूस हो सकते हैं? वे सब उच्च पदाधिकारी हैं। उनकी ज़िम्मेदारियाँ भी भारी हैं। उनको अपने सम्मान और आत्म गौरव का भी विचार होता है।"

राजा—"सबके-सब एक जैसे हैं। कोई भी अपनी बुद्धि से काम नहीं लेता। जो मैं कहता हूं वही स्वर सब अलापते हैं। आंखों के अन्धे नाम नैनसुख। इतना भी होता, तो भी सन्तोष की बात थी।"

रानी—"नहीं महाराज! ऐसा न कहिए। यह आपके राज के स्तम्भ हैं, सोच-विचारकर काम करते हैं। इनमें पक्षपात और

संकीर्णता न होगी। चापलूसी करना छोटे आदमियों का काम है, बड़े आदमी कभी ऐसा नहीं करते। पृथ्वीनाथ! इस में आपकी भूल है। एक लाठी से सबको हाँकना ठीक नहीं है। सब के सब एक जैसे नहीं होते। ऊँचा पद पाने से मनुष्यों की बुद्धि भी ऊँची हो जाती है। कहिये, मैं ठीक कहती हूं या नहीं?"

राजा--"सुन्दरी! मुझमें इतनी बुद्धि है कि बात को समझता हूँ। कहो तो मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिये हां जी-हां जी कर दूँ। परन्तु नहीं, मैं जानता हूं कि मेरे मन में क्या विचार है। कभी-कभी इस नीति से घोर अन्याय हो जाता है। जब मुझे इसकी सूचना मिलती है तो मैं दुखी होता हूं।"

रानी—"मेरे प्रसन्न करने के लिये आप सच को न त्यागिये। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं, मन यही चाहता है कि मैं आप की बातों को सुनकर प्रसन्न होती रहूं और हम दोनों एक ही स्वभाव के बने रहें।"

राजा—"रानी अब तक तुम को मेरी बातों का विश्वास नहीं हुआ? इस समय आधी रात है। यदि तू कहे तो मैं उच्च कर्मचारियों को बुलाकर तेरे सामने उनकी परीक्षा लूँ। अगर मैं रात को दिन कहूं और शरद ऋतु के पूर्निमा के चन्द्रमा को सूर्य कह दूं, तो ये सब वही बातें कहेंगे और इनमें से कोई भी मेरे कथन के विरुद्ध कहने का साहस न करेगा।"

रानी—"आधी रात को केवल राजा के प्रसन्न करने के लिये दिन और दोहर बताना केवल मूर्खों का काम है। कैसे सम्भव है कि ये लोग इतने चापलूस हो जायं? यदि वास्तव में वे ऐसे ही हैं तो उनसे राज का काम क्या होता होगा?"

राजा—"वे मूर्ख नहीं हैं। हां उनको पढ़ा-लिखा मूर्ख कह सकती हो। उनमें हर तरह की समझ-बूझ है, परन्तु वे मेरे प्रसन्न करने की चिन्ता में रहते हैं। यदि मैं आग को पानी कह

दूं, तो वे भी उसको पानी ही कहेंगे, कभी विरोध न करेंगे। आज इन मूर्खों के व्यवहार से मुझे बड़ा दुःख हुआ है। और मैं अन्याय कर ही चुका था, कुशल यह हुई कि संभल गया।"

रानी—"क्या मैं भी उस घटना को सुन सकती हूं, जिसमें कर्मचारियों ने आप को धोखा दिया?"

राजा—"क्यों नहीं, सुनो। एक तेली ने एक कुर्मी को कुछ रुपये अमानत दिये थे। वादा यह था कि वह तीर्थ यात्रा से लौटकर महाजन से अपना रुपया ले लेगा। कारणवश वह न जा सका। कुछ दिन बाद जब उसने रुपये माँगे तो कुर्मी मुकर गया। अदालत तक नौबत पहुंची। तेली ग़रीब था, कुर्मी अमीर था। तमाम अदालतों ने एक सिरे से दूसरे सिरेतक तेली के विरुद्ध फैसला किया। अन्त में तेली मेरे दरबार में आया। मैंने सब अदालतों के फैसले मंगवाकर देखे। अदालतों की राय कुर्मी के अनुसार थी और उसके गवाह भी प्रतिष्ठित पुरुष थे। मेरे मुखसे भी यह निकल गया कि निस्सन्देह तेली का अपराध है। उसने झूठा मुकदमा किया है। मन्त्री, सेनापति सभी कहने लगे, हाँ अन्नदाता यह तेली बेईमान है। मैं तेली के विरुद्ध फैसला सुनाने ही को था कि अकस्मात् मेरे मन में यह बात आ गई कि 'दाल में कुछ काला है? मैंने पुलिस के हाकिम को आज्ञा दी कि कुर्मी के माल का बक्स उठा लाओ। लोग चकित थे कि क्या मामला है। जब उसका बक्स दरबार में आया और मैंने उसे खोल कर देखा तो उस में कितने ही रुपये चिकने थे। कुर्मी को उनके छिपाने का अवसर नहीं मिला था। मैंने कुर्मी को धिक्कारा। अन्तमें उसने स्वीकार कर लिया कि हां तेली ने रुपया दिया था, मैं अपनी बेईमानी से इन्कार करता रहा। देखो रानी, यदि आज ईश्वरने प्रेरणा न की होती तो न्याय का खून हो चुका था। इसी कारण इन कर्मचारियों की ओर से मुझे अविश्वास

हो गया है। पहले भी इस प्रकार की बहुत सी बातें हो चुकी हैं।"

रानी—"महाराज! इस में मन्त्री आदि का क्या अपराध है? यदि अपराध किसी का है तो अदालत के हाकिमों का है। उन को अलग कर उनकी जगह विश्वासी आदमी रख लीजिये!"

राजा-"रानी तू क्या कहती है? यही दीवान और मन्त्री मेरे दरबार के सलाहकार हैं। इनकी सलाह के बिना मैं कोई काम नहीं करता! जिस सभा में यह मुक़दमा हुआ था, ये उसमें राय देने वाले मेम्बर थे! इनका अपराध क्यों नहीं है। जैसे मैं ईश्वर के दरबार में उत्तरदाता हूं, वैसे ही यह भी तो है। तेरी राय है कि इनको नौकरी से अलग कर दूं, पर हज़ारों आदमी किस तरह से एकदम अलग किये जा सकते हैं? सारा राज्य अभी उलट-पुलट हो जायेगा।"

रानी—"ठीक है, महाराज! भूल-चूक हर किसी से होती है। आपको इतना क्रोध न करना चाहिये और न शान्ति तथा गम्भीरता को त्यागना चाहिये। यदि मुझसे कोई अपराध हो जाये तो क्या आप क्षमा न करेंगे?"

राजा—"तुम्हारी कोई भूल नहीं थी? तुम अपने स्वभाव और विचार के अनुसार राय दे रही थीं। भूल तो उनकी है जो जान-बूझकर हाँ-में-हां मिलाते हैं।"

रानी—"यह ठीक है, परन्तु जैसा आपने कहा कि वे केवल आपके कहने से ही आधी रातको दोपहर बता देंगे, सही नहीं है।"

राजा-"रानी, चुप रहो। इस समय मेरी बुद्धि काम नहीं करती। मैं इस विषय में अधिक बातचीत करना नहीं चाहता। यदि मैं चाहूँ तो अभी तुम्हारे सामने उन सबको यहां बुलाकर आधी रात को दिन और दोपहर कहलवा दूँ।"

रानी-"मैं इस बात को नहीं मानती। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मैं दावे के साथ कहती हूँ और शर्त लगाती हूं कि यह

बात सही नहीं हो सकती।"

राजा–"ज़िद मत करो। जो कुछ मैं कहता हूं वह अक्षरशः सत्य है?"

रानी–"कदापि नहीं। आपका कहना केवल हठ है। यदि यही बात है तो आइये, शर्त बांधिये। यदि आपकी बात ठीक निकली तो मैं हार जाऊँगी, और आप जो कहेंगे वही करूंगी।"

राजा—"बहुत अच्छा। यद्यपि मैं नहीं चाहता था कि तुम मेरे साथ शर्त लगाओ और व्यर्थ में झगड़ा मोल लो, पर तुम हठ कर रही हो, इस लिए मैं शर्त बांधता हूँ। यदि कर्मचारियों ने रात को दिन कह दिया तो याद रहे, बारह वर्ष तक तुम्हें जंगल में रहना पड़ेगा?"

रानी ने समझा राजा हंसी कर रहे हैं। कह दिया—"शर्त स्वीकार है! मैं तैयार हूं, बुलवाइये और उनकी परीक्षा लीजिये।"

राजा—"देखो, पीछे पश्चाताप न करना?"

रानी–"जी नहीं, पश्चाताप न करूंगी। मैं भी तो देखूं वे कैसे हाँ-में-हाँ मिलाते हैं! रानी को गर्भ था। वह समझती थी कि राजा अपनी गर्भवती स्त्री को कैसे जंगल में भेज देगा। यह शर्त यों ही हंसी में की जा रही है। इसलिए उसने कहा--महाराज अब देर न कीजिये। सबको बुलाइये और परीक्षा लीजिये।"

राजाने प्रधान मन्त्री, सेनापति, दीवान और अर्थ विभाग के मंत्री के पास उसी समय आदमी भेज दिये और उनको कहला भेजा कि एक आवश्यक कार्य है, सब-के-सब महलमें चले आवें।

———

## २

# अबला का देश निकाला

"बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हंसाय॥"

क्या तो सब लोग अपने-अपने घरों में लम्बी ताने पड़े थे या राजसेवक के आते हीं हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए और इस चिन्ता में पड़ गये कि इस समय राज महल में क्यों बुलाया गया है ? क्या बात है ? ये लोग स्वभावतः चापलूस थे। आत्म गौरव का इनमें नाम भी न था। इनका मन इनका नहीं था; इनका मस्तिष्क इनका नहीं था। कहने को ये मनुष्य थे, परन्तु वास्तव में कठपुतलियाँ थीं, जो मदारी के हाथ के इशारों पर नाचा करती हैं। कल को जिधर मोड़ दो, उधर ही फिर जाती हैं। प्रजा इनका सम्मान करती थी, इनकी बात मानती थी, परन्तु ये महा नीच थे। बिस्तर से उठे और कपड़े पहिन कर महल में आ पहुंचे। राजा पलंग पर बैठा था। रानी चिक के अन्दर चली गई। सब ने राजा को झुककर प्रणाम किया। राजा ने मुस्कराकर सबको अपने पास बिठाया और प्रधान मन्त्री की ओर देखकर बोला—"प्रधानजी ! देखो गर्मी के दिन हैं। दोपहर का समय है, सूरज की गर्मी से तपे जाते हैं। महल में सब तरह का सुख

है। परन्तु उन ग़रीबों का क्या हाल होगा जो मारवाड़ की जलती हुई रेत पर पैदल चलते होंगे ? भला बताइये तो क्या करूं ?"

मन्त्री ने सोचा, कि राजा रात को दिन कह रहा है। न जाने किस कारण से ऐसा कहता है। यदि म विरोध करता हूं तो कहीं क्रुद्ध न हो जायें। राजाओं का स्वभाव विचित्र होता है। उनसे डरते रहना चाहिये। घड़ी में वे प्रसन्न होते हैं और घड़ी में क्रुद्ध होते हैं। राजहठ बुरा होता है। भलाई इसी में है कि जो कुछ राजा कहता है उसी का मैं भी समर्थन करूं। वह बोला—"महाराज ! सच है वास्तव में गर्मी अधिक है। सूरज से बचना तो आसान है, परन्तु सूरज की तपी हुई रेत से बचना कठिन है।"

तब राजा ने दीवान से कहा—"आप बताइये इस गरमी में आपका क्या हाल है ? दिल में ठंडक है या अन्दर-ही-अन्दर जल रहा है ? मैं तो समझता हूं कि इस समय समुद्र के खौलते हुए पानी में भी मछलियाँ जल-भुन रही होंगी। जब पानी में ही ठंडक नहीं तो फिर और चीज़ों की क्या हालत होगी ? दीवानजी ने देखा कि जब प्रधान मन्त्री राजा की हां-में-हां मिला रहे हैं तो मैं क्यों पीछे रहूं, मुझे भी उनका अनुकरण ही करना चाहिये। हाथ जोड़कर बोले—"पृथ्वीनाथ ! जो कुछ आप कहते हैं वह सब सच है। आज गरमी बहुत ज्यादा है, बाग़ की सैर कीजिये, वहां शीतल मन्द-सुगन्ध पवन चल रही है।"

फिर राजा ने सेनापति से कहा—"आप में तो यों ही साहस और उत्साह की अग्नि प्रज्वलित रहा करती है, आज इस समय दोपहर की गरमी में तो न जाने क्या दशा होगी ? आपको तो अन्तरंग और बाह्य दोनों हर प्रकार की अग्नि से मुठ भेड़ करनी पड़ती होगी ?" सेनापति सोचने लगा कि क्या उत्तर दूँ ? अच्छा जो पंचों की राय वही मेरी राय। कहने लगा—"जगत्पति सत्य वचन। स्नान कर डालिये, शरीर पर चंदन लगवाइये, ठंडक आ

जायेगी।"

फिर राजा ने कोषाध्यक्ष की ओर देखकर कहा—"कहिये सेठ जी! आप में तो दौलत की गरमी है। भीतर-बाहर गरमी-ही गरमी है, क्या उपाय सोचा जाये?" कोषाध्यक्ष ने विचार किया कि जब तीन आदमी राजा की राय से सहमत हैं तो मैं क्यों नक्कू बनूं। हाथ बाँधकर बोला—"महाराज! सत्य वचन। सचमुच ऐसी गरमी कि, गरमी से पनाह माँग रही है।"

राजा ने सबकी सुन ली और उनकी ओर देख कर बोला—"जरा बाहर जाकर देखो तो सही, दोपहर का सूरज लाल अंगारे की तरह दहक रहा है।" चारों बाहर गए और उन्होंने चमकते हुए चाँद को देखा। चारों उल्टे-पाँव वापिस आए और निर्लज्जता से कहने लगे—"अन्नदाता, सत्य वचन। आप भला कहीं झूठ बोल सकते हैं? वास्तव में सूरज बहुत गरम है।"

यह सुनते ही राजा की आँखों से टप-टप आंसू की बूंदें गिर पड़ीं। रानी ने देखा, वाल्मीकि ऋषि ने सच कहा है कि—"विनाश काले विपरीत बुद्धि" जब बुरा समय आता है तो मनुष्य की बुद्धि जाती रहती है। राजा ने डब-डबाई आँखों से रानी को देख कर कहा—"प्रिये, इस दोपहर की गरमी से तुम्हारा क्या हाल है?"

रानी—"प्राणनाथ! आपका कहना ही सत्य निकला। आपके वचनों में बाल बराबर भी फर्क नहीं था। ये खुशामदी चापलूस हां-में-हां मिलाने के सिवाय और कुछ नहीं जानते। न यह समय को देखते हैं और न बात को समझते हैं, इन मूर्खों को इतनी भी समझ न आई कि राजा ने आधी-रात के समय क्या इन्हें हाँ-में-हाँ मिलाने के लिये बुलाया है। जो लोग इतनी भी समझ नहीं रखते, उनके हाथों में प्रजा के जीवन और धन की बागडोर देना भूल है। मैं क्या कहूं? मैं नहीं जानती थी कि मनुष्य में इतना

मिथ्याचार होता है। मैंने बड़ी भूल की, ये लोग क्या धूल न्याय करेंगे ? मेरी बुद्धि काम नहीं करती। मैं अब तक समझती थी कि सेवक अपने स्वामी का शुभचिंतक होता है, परन्तु यह लोग तो परले दरजे के मूर्ख और स्वार्थी हैं। यह केवल अपना उल्लू सीधा करना जानते हैं इन पर विश्वास करना मूर्खता है। बुद्धिमानों ने सच कहा है,'बुद्धिमान शत्रु से मूर्ख मित्र अच्छा होता है।' ये लोग तो पागलखाने में रखने के योग्य हैं। मुंह देखी करते हैं और मुंह देखी कहते हैं।"

राजा ने एक ठंडी सांस ली। मंत्रियों का माथा ठिनका। वे अब जाकर समझे कि हमसे कोई भूल हुई है। उस समय का दृश्य अपूर्व था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। न कोई किसी से बोलता था और न किसी को एक दूसरे से कुछ कहने का साहस होता था। राजा ने हाथ उठाया और उच्च स्वर में गाने लगा—

लीला तेरी न्यारी, प्रभुजी ! लीला तेरी न्यारी।
ब्रह्मा विष्णु भेद नहीं पावें, नहीं जाने त्रिपुरारी॥
माया वश सब रहें भुलाने, भटक भटक भटकारी।
लीला तेरी न्यारी॥
कर्म लाज और काल चक्र में, निशि दिन जीव दुखारी।
सब हां नचावत नाच अनोखा, राजा रंक भिखारी॥
लीला तेरी न्यारी॥

रानी—"महाराज ! अब क्या होगा ?"

राजा—"होना क्या है, जो होना था सो हो गया। १२ वर्ष के लिये तुम्हें देश निकाला होगा। यही शर्त थी, यही वचन थे, परीक्षा हो चुकी। तुमने उसका फल देख लिया। अब तुम्हारा यही कर्तव्य है कि अपनी शर्त पूरी करो।"

रानी—"क्या आप ऐसे कठोर हो जायेंगे कि मुझ अबला को थोड़े से अपराध पर देश निकाले का दण्ड देंगे ?"

राजा—"अवश्य। रघुकुल रीति सदा चलि आई,
प्राण जायें, पर वचन न जाई।"

रानी—"महाराज की आज्ञा सिर-आंखों पर !"

राजाने तुरन्त दरबान को बुला कर हुकुम दिया कि जाओ, काले घोड़ोंका रथ तैयार करो और रानी को उसमें बिठाकर जंगल में छोड़ आओ।"

इधर दरबान राजा की आज्ञा पाकर रथ तैयार करने के लिये बाहर गया, उधर रानी ने हाहाकार मचाना शुरू किया। वह बिलख-बिलख कर कहने लगी—"प्राणनाथ ! मैं गर्भ के भार से दबी हुई हूं। आप के राज्य का उत्तराधिकारी मेरे गर्भ में है। कहीं भयानक जंगलमें सिंहादि जंगली जानवरोंके भयसे वह नष्ट न हो जाए ? उस दशा में आपको अपने वचनों पर शोक और पश्चाताप करना होगा। मेरी केवल इतनी ही विनय है कि रात्रि के समय घर से बाहर न निकालिये, प्रातःकाल होने दें। मैं आप ही खुशी से बन का रास्ता लूँगी।"

राजा—"क्या करूँ, लाचार हूं। अपने शब्दोंको वापिस नहीं ले सकता ! तेरी बातें इस समय तीरकी तरह कलेजेके पार हो रही हैं। यदि शक्ति होती तो दिल खोलकर तुझे दिखाता। मेरे भीतर-ही-भीतर आग की चिंगारियां जल रही हैं, जो ऊपर उड़ कर भाप का रूप धारण कर रही हैं और आंसू बनकर आँखोंसे बाहर निकलना चाहती हैं। परंतु मैं उनको बाहर नहीं आने देता। तू जानती है मैं मनुष्य हूं, पशु नहीं हूं। इतने दिनों तक तू मेरे साथ रह चुकी है, मेरे प्रेम की अनेक बार परीक्षा हो चुकी है।"

रानी—"सत्य बचन महाराज ! आपकी इच्छा पूर्ण हो। मैं भी जीते-जी आपके वचन निभाऊँगी। आप जानते हैं मैं एक अबला स्त्री हूँ और मेरे पेट में बच्चा है। केवल बच्चे की ममता के कारण इतने बहाने तलाश करती थी। इसमें न आपका अपराध है

और न इन खुशामदी चापलूसों का अपराध है, मेरे अशुभ कर्मों का फल है कि मैंने आपसे बैठे-बिठाए व्यर्थ में शर्त बांध ली।"

राजाने चाहा कि अपने हृदय को पाषाण बना ले, परन्तु वह मोमकी तरह पिघलकर आंखोंसे निकलने लगा। उसने रूमाल से आंसू पोंछे और चारों चापलूसों से बोला—"देखो यह तुम्हारीचापलूसीका परिणाम है। न तुम मेरी हां-में-हां मिलाते, न आज यह दिन देखना नसीब होता? रानी ने कहा था कि मंत्री गण बड़े आदमी होते हैं, वे सच-झूठ में भेद समझते हैं। खुशामद से हांजी, हाँजी नहीं करते। इसी बात पर मेरी उसकी शर्त हो गई। उसी के कारण अब वह जंगल में जा रही है। मूर्खो! तुम्हारी खुशामद के कारण ही मेरा बसा-बसाया घर उजड़ गया।"

यह सुनकर चारों मंत्री एक स्वर से बोले—"भगवन् हमने भूल की। केवल आपके प्रसन्न करनेके लिए ही हां-में-हां मिलाया किये।"

दरबान ने आकर खबर दी कि रथ तैयार है। राजाने कहा—'ले सुन्दरी! अब तैयार हो जा, देर मत कर। मुझे अत्यन्त दुःख है कि मेरी प्राण प्यारी इस प्रकार मुझसे पृथक हो रही है।

प्रिये तू वन को जाती है, मेरा मन भी अपने साथ लेती जा। यह शरीर अब १२ वर्ष तक तेरा साथ नहीं दे सकता। याद रख, तू उस कुल की स्त्री है जिसमें हरिश्चन्द्र से महान् सत्यवादी ने सत्य के लिए अपनी स्त्री को बेच दिया था। तू उस वंश से है जिसमें रघुकुलतिलक महाराज रामचन्द्रजी ने सती सीता को बनवास दे दिया था और उस बेचारी ने एक शब्द भी मुख से नहीं निकाला था। तू उन क्षत्रियोंकी संतान है जिन्होंने अपने आपको धर्मके नाम पर अर्पण कर दिया और अपने शरीर को आरों से चिरवा दिया। प्रिये, जा! यदि रघुकुल में पहले जैसे लोग होते रहे, तो तू इस बात को सिद्ध कर दे, कि अब भी उस खान से

ऐसे ही रत्न निकल सकते हैं।"

चारों मंत्री कहने लगे—"महाराज! बुरा हुआ। पाप करें हम और दण्ड पाए एक अबला स्त्री? कृपानाथ, क्षमा करो। इस गर्भवती स्त्रीपर दया करो। इसके बदले हमें देश निकाला देदो।"

राजा—"तुम्हारे बोलनेकी कोई आवश्यकता नहीं, तुम अपने-अपने घर जाओ। भावी बलवान होती है! उसके सामने किसी की नहीं चलती।' यह कहकर राजाने मंत्रियोंकी ओर से मुँह फेर लिया और रानी से बोला—"प्रिये! तारामतीकी तरह संतोष कर, ईश्वर तेरी रक्षा करेगा। जा तू जंगल में अकेली तड़पती रह, मैं यहाँ महल में तड़पता रहूंगा। यह कदापि न समझना कि मैं तेरे पीछे महल में रंग रलियां मनाऊँगा! यदि १२ वर्ष बीतने पर तू जीती रही तो मिलूँगा, नहीं तो सदा के लिए राम-राम है।"

रानी—"नाथ, धैर्य धरो। मन को दुःखी न करो। सोचो, उस समय मेरा क्या हाल होगा, जिस समय मैं वन में सोचूंगी कि मुझ अभागिनी के कारण आपके हृदय को दुःख हो रहा है। हां एक प्रार्थना करती हूँ, यदि आप की कृपा हो तो अपने हाथ की अंगूठी मुझे दे दीजिये। यदि ईश्वर की कृपा से पुत्र पैदा हुआ तो वह उसकी बांह में बंधी रहेगी और इस निशानी से आप उसको पहचान सकेंगे।"

राजा—"बहुत अच्छा। लो, यह अंगूठी तुम अपने हाथ में पहन लो।"

रानी ने काले कपड़े पहन लिए और राजा उसको रथ पर बिठाने के लिए बाहर आया! जब वह रथ में बैठ गई तो हाथ जोड़ कर डबडबाई आंखों से कहने लगी—"मैं तो आपके नाम के सहारे जीऊँगी या मरूंगी, परन्तु आप मुझे भुलानेका उद्योग करना। मैं दुखी हूँ, इसकी कोई परवाह नहीं, परन्तु आप सुखी रहें। मैं मर भी जाऊँ तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु आपको ईश्वर

सुरक्षित रखे।"

उधर रथ वन को चला, इधर राजा महल में जा पलंग पर लेट गये। उनकी दशा शब्दों में प्रगट नहीं की जा सकती।

———

## ३

# रानी बन में

"जल थल, स्थल बन उपवन में, तेरा एक सहारा है।
मात-पिता भाई-सुत बनिता, तू सम्बन्धी प्यारा है॥"

महल छूटा, पति छूटा, सखी-सहेलियां छूटीं। रथ जंगल की तरफ जा रहा है। विधता! कौन जाने कहां दम-के-दम में क्या हो जाये? किसी बात का ठिकाना नहीं। आदमी किस बात पर भरोसा करे, किसका सहारा ढूंढे? आंख झपकने में यहाँ बना-बनाया खेल बिगड़ जाता है। रानी उदास है। सारथी का भीतर-ही-भीर मन मसोस रहा है। न कुछ कहता है और न कहने का कुछ साहस होता है। हृदय में चिन्ता लग रही है। सहानुभूति की लहरें उसमें से उठ रही हैं, परन्तु बात करने का अवसर नहीं। इस समय बात करना घाव पर नमक छिड़कना है।

जंगल नगरी से कोई मील भर की दूरी पर था। बीच जंगल में आकर सारथी ने रथ को थाम दिया और आंखों में आँसू भर कर हाथ जोड़ कर बोला—"माताजी मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं सेवक हूं, पराधीन हूँ। हाय? यदि मैं सेवक न होता तो आज ऐसा बुरा काम करके क्यों पछताना पड़ता?"

रानी—"भाई, इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं है। तूने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया है। बस, तेरा इतना ही काम था। वह पूरा हो गया, अब जा।"

सारथी—"माता, अभी रात्रि है। जंगल सुनसान और भयानक है। मनुष्य दिन-दोपहर यहाँ आता डरता है, रात का तो कहना ही क्या? हाय! मैं ही इस निन्दनीय कार्य के लिये नियुक्त किया गया। मेरे जीवन को धिक्कार है। पापी पेट यह सब तेरे कारण है। यदि तू न होता तो आज मैं क्यों ऐसा काम करता?"

रानी—"तेरा शोक करना व्यर्थ है। जो भाग्य में बदा है वह सदा होकर रहता है। कर्म बलवान है। रघुवंशी अपने बचन के लिये सब कुछ कर डालते हैं। यदि हरिश्चन्द्र और रामचन्द्र ने ऐसा कार्य किया है तो जोधपुर नरेश जोधानाथ भी क्यों न करें?"

सारथी—"माता! मैं अज्ञानी हूं, आपकी गूढ़ बातों को नहीं समझता। मुझ में इतनी बुद्धि नहीं है। मैं केवल इतना जानता हूं कि जंगल में इस प्रकार आपको छोड़ जाना महापाप है। आप कहां रहेंगी, यहां से कहां जायेंगी? यह प्रश्न मेरे हृदय को रह रहकर व्यथितकर रहा है।"

रानी—"जहां अन्न-जल होगा वहां जाऊँगी। भाग्य में जो बदा है, वह होकर रहेगा, जा अब तू लौट जा, नहीं तो महाराज तुझ पर क्रुद्ध होंगे?"

सारथी—"जी तो नहीं चाहता कि आप को अकेले छोड़ कर चला जाऊं, परन्तु लाचार हूँ, क्या करूं? अच्छा तो माता जी, प्रणाम! मैं जाता हूं ईश्वर आपको कुशल रक्खे।"

रानी—"अच्छा जा, महाराज से मेरा प्रणाम कहना।"

सारथी तो लौट गया परन्तु रानी इधर-उधर देखने लगी। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह भय खाती थी, परन्तु गर्भस्थ बालक उसको देख-भाल कर और फूंक-फूंक कर पैर रखने के

लिये विवश कर रहा था। चन्द्रमा का प्रकाश फैल रहा था, तारे भी स्थान-स्थान पर निकले हुए थे। परन्तु इनका प्रकाश कहीं कहीं पर, जहाँ बस्ती और आबादी नहीं होती, रात को और भी अधिक भयानक बना देता। और जब कभी ऐसे समय में कोई स्त्री या पुरुष दुःख से व्याकुल होकर बाहर चांदनी में टहल कर अपने दुःख दूर करने लगता है, तो लोग उसको भूत-प्रेत समझ लेते हैं।

जिसने कभी मखमल के गद्दों से नीचे पैर भी नहीं उतारा था, आज वही नंगे पैर जंगल की कंटकमय पग डंडियों पर चल रही है। पैर में कांटे और कंकर चुभते हैं। हाय! समय की बलिहारी है। जो कोमलाँगी सुकुमारी महारानी कभी महल से बाहर नहीं निकलती थी, आज वही निर्जन बन में भटकती फिर रही है। वह जोधपुर की रानी है या गाँव की रहने वाली कोई गवांरिन है। यों तो नित्य संसार में परिवर्तन हुआ ही करते हैं, ऊंचे से नीचे गिरना और नीचे से ऊंचे चढ़ना प्रायः देखने में आता है, परन्तु एक हरे-भरे बाग में अकस्मात बिजली का गिरना और क्षण भर में उसको उजाड़ देना, अत्यन्त आश्चर्य जनक है। यह तो वही बात हुई कि किसी स्थान पर विशाल भवन खड़े हुए हैं, भूकम्प आया और वे जमीन में धँस गये। न उनका नाम है, न निशान। रात्रि के समय उस असहाय अबला को देखकर कौन कहेगा, कि वह महाराज जोधानाथ की स्त्री और जोधपुर की महारानी है।'

दो-चार मिनट तो वह इधर-उधर घूमी फिरी। उसे भ्रम हुआ चांदनी अवश्य खिली है? परन्तु यह नहीं ज्ञात होता कि पूरब किधर है और पश्चिम किधर है? ऐसा न हो कि भ्रम और धोके में आकर वह फिर जोधपुर ही की तरफ चल पड़े। लाचार एक वृक्ष के तले मन मार कर बैठ गई। मनै-ही-मन सोचती, हे ईश्वर। मैंने क्या अपराध किया है? जान बूझकर तो मैंने कभी चींटी तक को

भी कष्ट नहीं दिया, फिर मुझ पर यह विपत्ति कैसे आई। लोग कहते है कि अशुभ कर्मों का अशुभ परिणाम होता है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं किस अशुभ कर्म के कारण इस दंड की भागी हुई ? इसके अतिरिक्त इस बेचारे बालक ने जिसने अभी तक दुनिया भी नहीं देखी, क्या बुराई की जो इसको गर्भ में ही इतना कष्ट सहन करना पड़ा ? हे दीनबन्धु ! तू अबलाओं का सहायक और दीनों का रक्षक है, मेरी भी रक्षा कर। हे दयासिन्धु तेरी दया अपार है, मुझ पर अनुग्रह कर।"

रानी के नेत्रों से अश्रु धारा वह रही है। हिचकियाँ बंध रही हैं. केवल प्राण नहीं निकलते। इसी प्रकार रोते-चिल्लाते सवेरा हो गया। सूर्य देव उदय हुए। सारे जंगल में प्रकाश फैल गया। पक्षी गण बोलने लगे। रानी भी उठ खड़ी हुई और एक ओर को चल दी। उसको आशा थी कि जंगल में कोई-न-कोई उसे सहायक मिल जायेगा और उससे ज्ञात हो जायेगा कि वह कहां जाकर रहे और क्या करे ? ८ बजे, १० बजे. १२ बज गये. सूरज सिर पर आ गया, परन्तु कोई नहीं मिला। रानी को बड़े जोर की भूक लगी। परन्तु वहां क्या धरा था, उस निर्जन बन में मनुष्य का कोसों पता नहीं था। प्यास अलग सता रही थी. चलते-चलते पैर थक गये, पर आगे बढ़े चले जा रहे हैं। अवश्य कोई-न-कोई ऐसी शक्ति है जो रानी को आगे की तरफ ढकेल रही है। चलते-चलते दो बज गए। एक बड़ा वट-वृक्ष दिखलाई दिया। रानी ने जल्दी से पैर बढ़ाया। डूबने वाले को तिनके का सहारा बहुत होता है। वह धूप की गरमी की मारी थी, पेड़ के तले कुछ देर बैठकर दम लेने को जी चाहा। पेड़ पर भाँति-भाँति की चिड़ियां चहक रही थीं। बन्दर एक डाल से उछल कर दूसरी डाल पर कूद जाते थे। उनकी छलांगों से पेड़ के फल नीचे गिरते थे। चिड़ियाँ चहक रही थीं, मानो रानी का स्वागत कर रही

हों। वह पेड़ के तले आई। दो चार ..... चुप-चाप बैठी रही. फिर फलों को चुन-चुन कर खाने लगी। समय क्या नहीं करा लेता ? परमात्मा किसी को बुरा दिन न दिखाये। पर भूख कुछ नहीं देखती। उस समय यही फल रानी के लिये सेव और अंगूर बन रहे थे। पेट भर खा लिए। ऊपर से पास के एक गढ़े से दो चुल्लू पानी भी पी लिया। जी-में-जी आया. आँखें खुलीं। दिल ने कहा—यह जगह ठहरने के योग्य नहीं है, कौन जाने क्या हो ? सम्भव है आगे कुछ दूरी पर कोई ठहरने की जगह ही मिल जाये और कोई ऐसा आदमी भी मिल जाये जो यहां रहने के उपाय बता सके ?

वह उठ खड़ी हुई और बराबर अढाई घंटे तक चलती रही। परन्तु कोई आदमी नहीं मिला और न कोई गाँव ही दिखलाई दिया। अब तो उस अबला के होश उड़ गये। समझी, मेरा भाग्य ही हेटा है। हाय ! न कोई बात करने वाला है और न कोई साथ देने वाला है। हे ईश्वर ! क्या करूं, क्या न करूं ? इसी विचार में वह निराश होकर फिर एक स्थान पर बैठ गई और सोचने लगी कि मुझ को अपने मरने का तो भय नहीं है, यदि कोई भय है तो यह है कि कहीं मेरे पेट का बालक न जाता रहे। थोड़ी देर तक वह इसी का विचार करती रही। जब देखा कि दिन ढल चुका है और सूर्य अस्त होने को है, तब उसकी विलक्षण दशा हो गई। स्त्री ही तो थी, साहस जाता रहा। अब तो वह बहुत घबराई और सिर नीचा कर चिंतित हो शोक सागर में डुबकियाँ लगाने लगी।

जिस समय रानी की यह दशा हो रही थी, दैवयोग से उसी समय सामने से एक सच्चा साधू धीरे-धीरे उधर ही आ रहा था। यह सच्चे लोग सचमुच ईश्वर के अवतार होते हैं। जहाँ कहीं किसी असहाय अबला को दुखावस्था में देखते हैं, वहाँ ये उदार

चित्त और विशाल हृदय वाली आत्माएं अपना दया का हाथ बढ़ा कर उसकी रक्षा करती हैं। जब-जब किसी अबला पर विपत्ति आई, इन्होंने बीच में पड़कर उसकी रक्षा की है।

सुख देवें दुखको हरें, करें दूर अपराध।
कहें कबीर वे कब मिलें, परम सनेही साधु॥

रानी थकी हुई चुपचाप बैठी थी। साधू बोला—"हे पुत्री! तू कौन है? तुझ पर क्या विपत्ति आई है और इस भयानक बन में तेरे आने का क्या कारण है?" रानी ने सिर उठाकर देखा—कि एक वृद्ध साधू उसके सामने खड़ा हुआ है। उसकी आकृति से शान्ति टपकती है। मानो सचमुच ईश्वर का अवतार है। उसे देखते ही रानी की जान-में-जान आ गई। उठकर प्रणाम किया और उसके पैर छूकर कहने लगी—"पिताजी! मैं एक अबला स्त्री हूं। कल मैं जोधपुरकी रानी और राजा जोधपुर की स्त्री थी। आज कर्म ने मेरी यह गति की। महल से निकाला, इस निर्जन वन में डाला। भविष्य में क्या होने वाला है, इसको या तो विधाता जानते हैं या आप जैसे धर्मात्मा पुरुष जानते होंगे। रानी रोती जाती थी और अपनी व्यथा सुनाती जाती थी।

साधू ने उसके सर पर दया का हाथ रक्खा और बोला—"अभय हो, कोई चिन्ता न कर। दुनिया में दुःख-सुख नित्य आते-जाते रहते हैं।"

साधू की बातों में बिजली का सा असर था। वह साक्षात् प्रेम का स्वरूप था। रानी का कुम्हलाया हुआ दिल थोड़ी देर के लिए खिल गया। सिर उठाकर साधू को देखने लगी। साधू ने उसके नेत्र देखे, नेत्रों के मार्ग से उसके हृदय में उसने प्रवेश किया और उसके परदों को उठाकर उसकी निष्पाप आत्मा का सौंदर्य देखा तथा प्रसन्न होकर बोला—"पुत्री, चिन्ता न कर! संसार में दुख-सुख आते-जाते रहते हैं।"

रानी—"कृपासिन्धु ! आपके दर्शन दुःख भंजन करने वाले हैं। आपके दर्शन करके मेरा दुख जाता रहा। आप मनुष्य नहीं, ईश्वर स्वरूप हैं।"

चाह गई चिन्ता मिटी, मन में रही न रेख।
मन बच करम से मान्या, साहब साधु एक॥

साधू—"तू निरापराध है, निर्दोष है। आश्चर्य है कि तू इस जंगल में किस कारण आई ?"

रानी—"महाराज, निस्संदेह मैं निरापराध हूं। आपका कहना सत्य है। केवल एक मूर्खता कर बैठी, उसी का यह परिणाम है।"

साधू—"वह मूर्खता क्या थी ? यदि तुझे कुछ संकोच न हो तो मुझ को सुना।"

रानी ने आदि से अन्त तक सारी कथा कह सुनाई। साधू हंसकर कहने लगा—"कलि भगवान की सृष्टि में सब कुछ हो सकता है। पुत्री यहां से निकट ही मेरी कुटी है, वहाँ मेरे सिवाय और कोई नहीं रहता। केवल एक दो गाय-बैल हैं। यदि तेरी रुचि हो तो जिस प्रकार सीता जी ने बाल्मीकि जी के आश्रम में रहकर अपने दिन व्ययीत किये थे, उसी प्रकार तू भी बारह वर्ष की अवधि को पूरा कर सकती है। परन्तु स्मरण रहे कि वहाँ राज भवन के सुख नहीं मिल सकते ? तुझ को अधिकार है, यदि तू वहाँ रहना स्वीकार करे तो मैं तुझे अपनी पुत्री समझ कर अपने आश्रम में रख सकूंगा, नहीं तो तेरा जहाँ जाने का विचार हो वहाँ मैं साथ चलकर तुझको पहुँचा सकता हूं ?"

रानी—"महाराज ! आपने मुझ निराश्रिता को आश्रय देकर कृतकृत्य कर दिया। मैं आपके आश्रम में रहूँगी। आपकी सेवा और टहल करूंगी तथा आपके पवित्र चरणों के दर्शन करके अपने दुःख को भुलाऊंगी।"

साधू—"अच्छा, पुत्री उठ और मेरे साथ चल।"

रानी साधू के साथ आश्रम में आई। वहां सुख पूर्वक रहने लगी। उसका जीवन वहां किस प्रकार व्यतीत होता था, इसके लिखने की हमें आवश्यकता नहीं है। हर कोई समझ सकता है कि तपस्वी के आश्रम में किस प्रकार का जीवन व्यतीत किया जाता है। दो महीने के बाद रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ। साधू ने उसकी जन्म कुण्डली बनाई। उसका नाम अमरकुमार रखा और रानी को विश्वास दिलाया कि प्रारम्भिक अवस्था में उसपर *बड़ी विपत्तियां आयेंगी, परन्तु अन्त में वह अपने पिता से मिलेगा और उसके राज्य का उत्तराधिकारी होगा।*

पुत्रोत्पत्ति से रानी को शोक और हर्ष दोनों हुए। हर्ष इस बात का कि राज्य का उत्तराधिकारी उत्पन्न हो गया, और शोक इस बात का कि यदि जोधपुर में यह घटना हुई होती तो उत्सव मनाया जाता, यज्ञ रचाये जाते, वधाई होती, नौकरों को इनाम दिये जाते। जंगल में किसी को मालूम तक नहीं हुआ कि क्या हुआ क्या नहीं हुआ तथापि रानी प्रसन्न थी। साधू का उस पर अनुग्रह था। वह घर का सारा काम-काज कर लेती थी और जब कभी उसे अपने राज-काज का ध्यान आता था, तो वह बालक का मुख देख कर उसके भुलाने का प्रयत्न करती थी। इस प्रकार उसके जीवन के कुछ दिन जंगल में व्यतीत हुए।

—:—:—

# ४

# मृत्यु

चलती चक्की देख कर, दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में, साबुत रहा न कोय ॥

साधू का घर कहने को फूंस का झोंपड़ा था, परन्तु जंगल-में मंगल का भवन और शान्ति का स्थान था। जिस प्रकार अथाह समुद्र में रात्रि के समय मार्ग च्युत नौकायें दीप-गृहों को देख कर नष्ट होने से बच जाती है, उसी प्रकार मारवाड़ के रेगिस्तान में भयभीत पथिकों को साधू की इस कुटी को देख कर ही सान्त्वना मिलती थी। हर भूले-भटके आदमी के लिए उसका द्वार खुला हुआ था। जो भूखा और दुःखित वहां आया- साधू ने उदारता से उसे एक-दो दिन के लिए अपना अतिथि बनाया। अतिथि की सेवा करने में रानी को बड़ी प्रसन्नता होती थी। वह साधू की कुटी में जाकर उदास नहीं थी, सवेरे से सन्ध्या तक किसी-न-किसी कार्य में लगी रहती थी। भोजन बनाना, साधू की सेवा-शुश्रूषा तथा नवजात बालक का पालन-पोषण करना, उसके कार्य थे। इनके कारण अकेले पन का उसे कभी दुःख नहीं होता था। रात्रि के समय साधू प्रायः कथा-वार्ता सुनाकर उसका मनोरंजन किया करता तथा धार्मिक शिक्षा देकर उसका ज्ञान भी बढ़ाता था।

इस प्रकार सहज में पांच वर्ष बीत गये। अमर कुमार शुक्ल पक्ष की द्वितीया चन्द्रमा की भांति दिन-दिन बढ़ता गया। जिस समय वह कुटी के सामने चकोर की चाल चलता हुआ खेलता, साधू और रानी उसे देखकर गद्‌गद हो जाते थे। साधू का यह अहो भाग्य था कि वृद्धावस्था में उसे बालक की संगति प्राप्त हुई। बालक स्वभावतः मृदुलता, सरलता और निर्मलता के मनोहारी चित्र होते हैं। उसका चित्त सदैव प्रफुल्लित रहता है। उनकी मीठी-मीठी बोली सुनकर उदास मनुष्य भी प्रसन्न हो जाता है।

जब राजकुमार पाँच वर्ष का हुआ तो साधू ने उसकाविद्यारंभ संस्कार कराया। अब वह साधारणतः नित्य पढ़ने लगा। प्रकृति ने उसके स्वभाव को सादा बनाया था। साधू की संगति ने 'सोने पर सुहागे' का काम किया। रानी अपने शोक को भूल गई और उसके लिए जंगल-में-मंगल का सामान एकत्र हो गया। परन्तु शोक! देश निकाले के नवें वर्ष में उसको एक और भयानक विपत्ति का सामना करना पड़ा, जिसने उसके साहस को बिल्कुल तोड़दिया। नवें वर्ष के समाप्त होते ही एक दिन रात्रि के समय साधू ने रानी को पुकारा। रानी ने दीपक जलाया और साधू के पास आई। साधू के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। वह बोला- "पुत्री! अब मैं तुझ से बिदा होने वाला हूँ।"

रानी-"महाराज! क्या कहीं तीर्थ यात्रा को जाने का विचार है? इस अवस्था में तीर्थ-यात्रा करने में बड़ा कष्ट होगा?"

साधू—"हां, मैं उस धाम को जाने वाला हूं जहाँ से कोई लौट कर फिर नहीं आता।"

रानी—"महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं?"

साधू—'हां बेटी, अब मेरा समय आ गया है। यह चल-चलाव का समय है। ईश्वर की यही इच्छा है कि अब तू अकेली रहे। जहां तक मैं देखता हूं और जहां तक मेरी अनुभव शक्ति

काम करती है, तुम को अब जोधपुर लौट कर जाने का अवसर नहीं मिलेगा। इस लिए हे पुत्री! तीन वर्ष, जो अभी देश निकाले के शेष हैं, उनको परमात्मा की भक्ति में व्यतीत करना, जिससे समय पर पछताना न पड़े।"

रानी—"पिता जी, आप को कैसे ज्ञात हो गया कि आप दुनिया से कूच करने वाले हैं?"

साधू—"मैं इस बात को लगभग छः मास से जानता हूं, परन्तु इस कारण से तुझको नहीं बतलाया कि व्यर्थ में दुःख होगा। प्रत्येक मनुष्य अपनी मृत्यु के समय को जान सकता है। यह कोई कठिन बात नहीं है। उस समय मन की एक विशेष अवस्था होती है। इन्द्रियों का भी कुछ सूक्ष्म रूप से परिवर्तन हो जाता है। जैसा मैंने तुझ को बहुधा योगाभ्यास की शिक्षा देते समय बताया है।"

रानी—"महाराज, और लोगों को तो मौत के नाम से भय हुआ करता है, पर मैं देखती हूं कि आप प्रसन्न हैं। आपकी दिव्य मूर्ति पूर्ण रूप से देदीप्यमान है। यदि ऐसा न होता तो मेरा दिल टूट जाता। कारण, कि अब संसार में मुझे आपके सिवाय और आश्रय देने वाला कोई नहीं है। आपके शाँतस्वरूपसे मुझे शांति मिल रही है। मैं अपने स्त्री स्वभाव तकको भूल गई हूं।"

साधू—"पुत्री!"

"जा-मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहों, कब पाइहों, पूरण परमानन्द।"

मुझको किस बात का दुख है। न कुछ किसी को देना है न कुछ किसी से लेना है। यह मैं पहले ही जानता हूं कि संसार अनित्य और क्षणभंगुर है। जो आया वह जायेगा, जो पैदा हुआ, वह मरेगा। जिसका आदि है उस का अन्त भी है, फिर मैं क्यो दुखी होऊं?"

पुत्री.

"राम नाम एक सांच है, झूठ सकल संसार।
सारा जगत असार है, राम नाम इकसार॥"

जो मनुष्य इस संसार से निःसार और क्षणिक पदार्थों से नाता जोड़ते हैं वे ओस की तरह ऊपर से आते हैं और दो-चार घंटे के बाद ऊपर ही को लौट जाते हैं। न घास की पत्तियों पर अपना निशान छोड़ जाते हैं न उनके असर को साथ ले जाते हैं। देख इस आश्रम में जिन बातों की तुझ को शिक्षा मिली है, उनको न भूलना।"

रानी--"कृपा सागर! यों तो मुझे आपकी शिक्षाओं से सदैव सान्त्वना मिलती रहेगी, फिर भी यदि हो सके तो इतना बताते जाइये कि भविष्य में किसका सहारा लूं?"

साधू—"सहारा तो एक ईश्वर का है। वह दीनानाथ, अशरण शरण और पतित पावन है। असहायों और अबलाओं का एक-मात्र वही रक्षक है। उसके अतिरिक्त किसी का आसरा नहीं। मनुष्य से किसी बात की आशा करना भूल हैं। वह आज है, कल नहीं है। रहा रहा, न रहा न रहा! संसार के क्षणभंगुर पदार्थों से नेह करना व्यर्थ है। केवल ईश्वर से ही नेह करना चाहिये।

सबका दाता राम है, सबका वह करतार।
स्वामी सबका राम है, सेवक सब संसार॥
एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास।
स्वांति सलिल गुरुचरण हैं, चातक तुलसीदास॥

रानी--"सत्य वचन, महाराज! आपका कथन अक्षरशः सत्य है। मनुष्य को मनुष्य की आशा पर नहीं रहना चाहिये। माता-पिता जन्म के साथी हैं, कर्म के साथी नहीं। भाई-बहिन सम्पत्ति के साथी हैं, निर्धनता के नहीं। पति-पत्नी भी सुख के साथी हैं, दुःख के साथी नहीं। कृपा सागर! सब कुछ खोकर

एक आपका सहारा मिला था, अब वह भी हाथ से निकला जा रहा है। दैव प्रबल होता है। दैव के आगे किसी का वश नहीं चलता।"

साधू—"शोक न करो। जिसने मां के उदर में तुमको आहार दिया था, उसकी गोद में दूध पिलाया था, ... ... ...ी संभाल करता रहा था और अन्त में जिसने तुझ को इस आश्रम में पहुँचाया था। वह स्वामी सोया हुआ नहीं है। जब उसने पहले तेरी रक्षा की है तो विश्वास रख अब भी वह तेरी रक्षा करेगा।"

रानी—'कृपानिधान! और जो कुछ मेरे योग्य सेवा हो सो बताइये।"

साधू—"क्या सेवा और क्या चाकरी। जब जीव शरीर से निकल गया, फिर शरीर के साथ चाहे जैसा सलूक करो।

आज काल के बीच में, जंगल होगा वास।<br>
ओरे ओरे हल फिरें, ढोर चरेंगे घास॥<br>
हाड़ जले ज्यों लाकड़ी, केश जलें ज्यों घास।<br>
सब जग जलता देखकर, भये कबीर उदास॥

पुत्री, आज एक घंटे में मैं तुम दोनों से विदा हो जाऊंगा। मेरे मृतक शरीर को अग्नि में भस्म करा देना, यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है और राम नाम की रट लगाते रहना, यही मेरी अन्तिम शिक्षा है। जब जी घबराए, कबीर साहब की वाणी का पाठ करना। इस आश्रम में आराम के सब सामान मौजूद हैं। तुमको कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं है और न किसी बात का भय है। सब तुमको साधू की बेटी और बृह्मचारिणी समझते हैं। तुम्हें कोई दुःख नहीं देगा। अच्छा जाओ कुमार को ले आओ, उसको भी एक बार देख लूं।"

रानी ने जाकर कुमार को जगाया। वह आंख मलते हुए उठा। माता उसका हाथ पकड़ कर साधू के पास लाई। कुमार

ने प्रणाम किया। साधू ने आशीर्वाद दिया। फिर कुछ समय तक दोनों बात-चीत करते रहे। समय कहते-सुनते बीत गया।

साधू ने कहा—"अब मेरे जाने का समय निकट है और वह दबे हुए स्वर से यह भजन गाने लगे—

हमारे प्रभु ! अवगुण चित्त न धरो। २
एक नदिया एक नार कहावत, मैलो नीर भरो।
दोऊ आय मिले गगा में, सुरसति नाम परो॥
सो हमारे प्रभु ! अवगुण चित्त ना धरो।
एक लोहा पूजा में राखत, एक घर बधिक परा॥
सो दुविधा पारस नहीं जाने, कंचन करत खरो।
हमारे प्रभु ! अवगुण चित्त न धरो॥
एक माया एक ब्रह्म कहावत, सूर श्याम झगरो।
कै याको निर्धार करो प्रभु, कै प्रण जात टरो॥
हमारे प्रभु ! अवगुण चित्त न धरो।

हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे; हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। यह कहकर साधू ने अंगडाई ली। आँख की पुतलियाँ नाचने लगीं, बदन अकड़ने लगा। उसके मुंह से राम कृष्ण निकला और शरीर छूट गया। जब साधू की अजर अमर आत्मा उसके नश्वर शरीर को त्याग कर सुरलोक को पधार गई तो रानी के सिर पर शोक का पहाड़ टूट पड़ा। उसके नेत्रों से अश्रु धारा बह निकली। ६ वर्ष का बालक भी यह जान गया कि अब साधू का हाथ हमारे सिर पर से उठ गया है। माँ-बेटे दोनों फूट-फूट कर रोने लगे। ईश्वर ने एक सहारा दिया था, वह भी हाथ से जाता रहा। दोनों ने आकाश की ओर हाथ उठाया और ईश्वर से प्रार्थना करने लगे। बेचारे क्या करते ? रो पीट कर सन्तोष किया। लाश को उठा कर बाहर ले गये। जंगल से लकड़ियाँ चुनकर ले आये और साधू का मृतक संस्कार किया।

रानी की इच्छा थी कि देश निकाले के शेष दिन आश्रम में व्यतीत करे, परन्तु अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि बिना किसी पुरुष के सहारे वहां रहना कठिन है। लाचार कुछ दिन के बाद उस स्थान को छोड़ दिया और घूमते-फिरते एक नगर के निकट पहुंचे। नगरी से थोड़ी ही दूरी पर एक छोटा सा झोपड़ा बनाकर उसी में रहने लगे। माँ जंगल से घास छील लाती थी और बेटा बाज़ार में ले जाकर बेच आता था। इस प्रकार उनके कितने ही दिन व्यतीत हो गये।

कुछ दिन बाद उस देश में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। आदमी और जानवर दोनों मरने लगे। इन बेचारों पर भी विपत्ति आई। माता का स्वास्थ बिगड़ने लगा और कुछ दिन बाद वह बालक को अनाथ छोड़कर संसार से चली गई। आह! रानी का महल से निकाला जाना, निराश्रित जीवन व्यतीत करना और इस प्रकार संसार से चल बसना, अत्यन्त आश्चर्य जनक और शोकप्रद घटनायें हैं। संसार में जो न हो जाए, सो थोड़ा है।

मरने से पहले रानी ने एक पत्र लिखा और उसके अन्दर पति की अंगूठी रखकर बेटे से बोली—"इस चिट्ठी को कपड़े में कढ़ा कर भुजा में बाँध लेना और जब अवसर आए तो उससे लाभ उठाना।"

लड़के ने चिट्ठी ले ली और उसको सम्भाल कर अपनी भुजा में बाँध लिया, परन्तु उसके पढ़ने का उसे अवसर ही नहीं मिला। उमर थोड़ी थी, ज्ञान भी साधारण था। उसे विचार भी नहीं हुआ कि देखूं चिट्ठी में क्या लिखा है।

मरने से एक दिन पहले रानी ने कुमार को शिक्षा दी कि किसी से दान न लेना और न किसी के आगे हाथ पसारना।

अपने बाहुबल से श्रम करके कमाना और ईमानदारी की रोटी खाना। जो लोग बेईमानी करते हैं उनका हृदय अशांत रहता है।

साहस और दृढ़ता आदि गुण जो मनुष्यों को संसार में सफलता प्राप्त कराते हैं उनमें पैदा नहीं होते। यदि तू श्रम करता रहेगा तो ईश्वर तेरी सहायता करेगा। मैं इस समय पति वियोग के दुःख से दुखित हूँ। इसके अतिरिक्त मुझे और कोई दुःख नहीं है। रानी को पुत्र से केवल इतनी ही बातें करने का अवसर मिला. इससे अधिक कहना उसने उचित नहीं समझा। वह जानती थी कि यदि ईश्वर को उसकी भलाई अभिष्ट है, तो किसी-न-किसी दिन उसके शुभ कर्मों का उदय होगा और वह उन्नति कर लेगा।

रानी मर गई। लड़के ने उसके मरने पर बहुत शोक किया—उसे यह चिन्ता हुई कि अब किस तरह से रहना चाहिये और पेट के लिये क्या काम करना चाहिए? सोचते-सोचते यह बात समझ में आई कि जङ्गल से लकड़ी लाकर नगर में बेचूं और जो कुछ मिले उससे निर्वाह करूं। लड़का परिश्रमी था, काम-काज से नहीं घबराता था। जङ्गल में गया और वहां उसने बहुत सी लकड़ियां काटीं।

———

५

# लकड़हारा और लोभी लाल

'काल कर्म अति प्रबल है, सिंहहु हुए शृगाल ।
काल कर्म के कारणे, सिंह खिंचाई खाल ॥'

जङ्गल से कटी हुई लकड़ियों का बोझा सिर पर लिये नया लकड़हारा शहर में आया। जिस जङ्गल में उसने लड़की काटी थी, उसमें कुछ पेड़ चन्दन के भी थे। चन्दन की लकड़ी मुश्किल से मिलती है। यह उसका सौभाग्य था जो उसका प्रवेश उस जङ्गल में हो गया। चन्दन और साधारण लकड़ी में पहिचान करने की उसमें योग्यता नहीं थी। पैरों के तले धन गड़ा है, अज्ञानी नहीं जानता। हाथ में हीरे-जवाहर हैं, वह उनको कंकर-पत्थर समझता है। दुनिया में भाग्य भी विलक्षण कार्य करता है। धन रहते हुए भी आदमी निर्धन रहता है और प्रबल होते हुए भी निर्बल रहता है।

लड़के ने जो लकड़ियों का बोझा बाँधा. उसमें दोनों तरह की लकड़ियाँ थीं। कुछ चन्दन की भी थीं। बोझे को लेकर शहर में आया। जिस गली में से निकला, उसमें एक बनिया रहता था। जिसका नाम लोभीलाल था। वह बड़ा निर्धन, दुखिया और कंगाल था। यद्यपि उसकी दुकान थी, परन्तु दुकान में कुछ माल

नहीं था। लकड़हारे के बोझे में से खुशबू आते हुए देखकर उसने पूछा—"इस बोझे का क्या लोगे ?"

लकड़हारे ने कहा—"लाला जी ! मैं गरीब हूँ, पेट के लिए यह काम करता हूँ जो समझो दे दो।"

लोभीलाल ने अपने जी में सोचा कि इस गट्ठे में एक दो लकड़ी चन्दन की भी हैं। इसे हाथ से नहीं खोना चाहिए, परन्तु किसी तरह ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे टकों में ही गट्ठा हाथ लग जाये। उसने मुंह बनाकर कहा—"इस लकड़ी को कौन पूछेगा, यह तो किसी भी काम की नहीं। ईंधन तक तो इसका अच्छा होता नहीं, पर जब तू ले आया है तो लिये लेता हूँ। क्या दाम दूं ?"

लकड़हारा—"लाला जी ! मैंने दिन भर परिश्रम करके यह लकड़ी काटी हैं। कम-से-कम दो आने तो दीजिये, जिससे मेरा पेट भर जाये।"

लोभीलाल—"भाई, दो आने तो बहुत ज्यादा हैं। मैं अधिक-से-अधिक चार पैसे दे सकता हूं।" लकड़हारे को भूख लगी हुई थी और यह उसका पहला ही दिन था। अतएव उसने चार पैसे में ही लकड़ियों का गट्ठा बेच दिया।

लोभीलाल कहने लगा—"कल से जरा अच्छी लकड़ी लाना, मैं रोज खरीद लिया करूंगा।"

लकड़हारा—"जी हां, मैं रोज लकड़ी लाया करूंगा और आप के ही हाथ बेचा करूंगा।"

लोभीलाल—"देख! भूल न जाना, लकड़ी ठोस और वजनदार हो ?"

लकड़हारा—"जी नहीं ! देखना ऐसी कड़ी लकड़ी लाऊं, जो कुल्हाड़े से भी न कटे। मुझे भला आपका सहारा तो मिल गया। डूबते हुए को तिनके का सहारा बहुत होता है।"

लोभीलाल—"जा, ज्यादा बातें न बना।"

लकड़हारा—"सेठ जी ! मुझे केवल रोटियों की ही फ़िक्र थी, सो आपने रोटियों का ठिकाना करा दिया, अब क्या चिन्ता है।"

लकड़हारे ने अपने घर का रास्ता लिया और दूसरे दिन नियत समय पर फिर लकड़ियों का गट्ठा लेकर लोभीलाल की दुकान पर पहुंचा। आज भी गट्ठे में एक-दो लकड़ी चन्दन की थीं। लोभीलाल ने समझा, अच्छा बेवकूफ फंसा। उन्होंने उससे कहा-अरे ! तेरे घर में कितने आदमी हैं ?

लकड़हारा—"सेठ जी ! मैं तो अकेला हूं। न मेरे मां है और न बाप, मैं तो अनाथ बालक हूं। लकड़ी बेचकर जो पैसे मिलते हैं उन्हीं से अपनी गुज़र करता हूं। मुझे रात-दिन रोटी की ही फ़िक्र रहती है।"

लोभीलाल-"लड़के ! मुझे तेरी दशा पर दया आती है तू बहुत ही छोटा है। रोटा वगैरह के बनाने में भी तुझे बड़ी तकलीफ होती होगी। मैं ही तुझे लकड़ियों के बदले रोटी दे दिया करूंगा, पेट भर खा लिया करना।"

लकड़हारा-"बहुत अच्छा ! मुझे क्या चाहिए ?" सेठ जी ने इसमें भी अपना कुछ-न-कुछ मतलब सोचा होगा। लकड़हारा नित्य लकड़ियों का बोझा लाता और रोटी खाकर चला जाता। थोड़े दिनों में चन्दन की लकड़ी की बदौलत लोभीलाल ने कुछ रुपया जमा कर लिया और उसका काम भी अच्छा चलने लगा। परन्तु किसी को इस बात का पता नहीं लगा कि उसके पास जो कुछ देखने में आता है वह गरीब लकड़हारे की बदौलत है, जिस को उसने रोटियों के लालच से ही अपने पंजे में कर रक्खा था। लकड़हारा बिलकुल नादान था। रोटी खाने को मिल जाती थीं, उसी को वह बहुत समझता था।

इसी तरह बहुत दिन बीत गए। दैवयोग से एक दिन लकड़-

हारे ने लोभीलाल से कहा--"सेठजी ! जाड़े का मौसम आगया है और आप देखते हैं कि मेरे पास कोई कपड़ा नहीं है। मुझे कुछ रुपये दीजिये कि जिससे मैं जाड़े के वास्ते एक दो कपड़ा बनवा लूं।"

लोभीलाल--"अरे मूर्ख ! रोटियों पर तुझको संतोष नहीं हुआ, नक़दी मांगने आया है। नक़दी किस बात की ? जा अपना काम कर। फिर कभी यदि नक़दी का नाम लिया तो मैं तुझ से लकड़ी लेना बन्द कर दूंगा।"

लकड़हारा—"अच्छा सेठ जी ! न दो, पर नाराज़ तो न हो। कोई चिन्ता नहीं, लकड़ियां तो मैं आप को ही देता रहूंगा।"

यह कहकर वह बेचारा निराश होकर अपनी झौपड़ी में चला गया। सेठ जी भी दुकान बन्द करके घर चले गये। रात-खुशी में सेठानी से कहने लगे—"आज लकड़हारा कपड़ों के लिए कुछ दाम माँगता था। बड़ी मुश्किल से जब मैंने उसे डराया, धमकाया, तब वह जाकर कहीं माना। जान पड़ता है कि उसे दुनिया की हवा लग गई है ?"

सेठानीजी-"प्राणनाथ ! जब वह बेचारा रुपयों का माल आप को रोटियों के बराबर देता है, तब यदि उसने कपड़ों के वास्ते कुछ माँग लिया तो क्या बेजा किया ? आप को तो स्वयं सोचना उचित था कि बिना मांगे उसे कुछ देते। अभी वह बेचारा ना समझ है, साधारण लकड़ी और चन्दन की लकड़ी में उसे कोई भेद नहीं मालूम होता। जिस दिन मालूम हो गया, उसी दिन वह आप से एक-एक लकड़ी का हिसाब लेगा और उस समय आपको लेने देने के पड़ जायेंगे। मेरी तो यही राय है कि उसे कुछ देते रहना चाहिये, जिस से वह खुश रहे।"

सेठ-"प्रिये ! तुम को संसार का ज्ञान नहीं। संसार में मायाचार से ही काम चलता है। समुद्र में बड़े जानवर छोटे

जानवरों को खाया करते हैं। इसी प्रकार बड़े आदमी छोटे आदमी का शिकार करते रहते हैं। सांप दूसरे के हाथ से पकड़वाया जाता है। बुद्धिमान पुरुष अपना हाथ बिल में नहीं डालते। राजा, महाराजा, अमीर, वज़ीर सब छोटे ही को सताया करते हैं। यदि मैंने ऐसा काम किया तो क्या बुरा किया? परमात्मा ने उस अभागे को मेरे ऐश्वर्य का कारण बनाया है, फिर मैं उस से क्यों न लाभ उठाऊं?"

सेठानी—"आप ठीक कहते हैं। प्रकृति का यह नियम है कि प्रत्येक कार्य का बदला मिलता है। देखना! सोच-विचार कर कार्य करना, मैं फिर वही सलाह दूंगी कि जब लकड़हारे से आप को इतना लाभ हुआ है तब आप कम-से-कम उसे नाराज तो न कीजिये।"

सेठ—"तू तो यों ही बक-बक करती है। तू घर में रहती है, तुझे दुनिया का क्या ज्ञान? कल जब लकड़हारा आयेगा तो दो-चार पैसे देकर खुश कर दूंगा, बस यही तेरा मतलब है ना या और कुछ?"

सेठानी—"आप जो चाहें सो करें। आप जानें आप का काम जाने, मेरी जो समझ में आया सो कह दिया।"

सेठ—"हां, एक बात तो मैंने तुझ से कही नहीं। यह लकड़हारा पढ़ा लिखा भी है। कुछ-कुछ तुक बन्दी भी करता है, परन्तु है मूर्ख।"

सेठानी—"देखिये संभल कर रहियेगा। न जाने किस तरह वह आप के झांसे में आ गया है? ऐसा न हो कि आप पीछे से पछतायें।"

सेठ—"अरे चुप रह, क्यों बावली हुई है? मैंने उसे अच्छी तरह जान लिया है। वह कभी मेरे पंजेसे नहीं निकल सकता। उस का खुश करना कौन मुश्किल है।"

सेठानी चुप हो गई और दोनों सो रहे। सवेरा हुआ तो सेठ जी नहा-धो कर दुकान पर पहुँचे। लकड़हारा भी लकड़ियों का गट्ठा लेकर नियत समय पर आया। सेठ जी उसे देखते ही कहने लगे—अरे भाई कल मैं तुमको कुछ न दे सका। यह कुछ पैसे लो और यह कपड़ा भी तुम्हारे वास्ते मैंने निकाला है। इसे पहिनो और खुशी से रहो, पर अपना काम सावधानी से करते रहो।

लकड़हारा—"सेठजी! आप का कल्याण हो, अन्नदाता हो, धनी हो, परमेश्वर आपको बनाए रक्खे।"

सेठ—"भाई लकड़हारे मैंने तुमको कभी-कभी अपनी तरंग में गाते हुए भी सुना है, आज एक-दो गीत हमको भी सुनाओ।"

लकड़हारे ने कहा—"बहुत अच्छा।" उसने ऐसे अच्छे गीत गाये कि सेठ सुनकर चकित हो गया और अपने मन-ही-मन सोचने लगा कि यह तो कोई बड़ा चतुर मालूम होता है। ऐसा न हो कि कहीं मेरे पंजे से निकल जाये। 'चोर की दाढ़ी में तिनका।' कहने लगा कि—"वाह! लड़के वाह! शाबास, अच्छे गीत सुनाये। जान पड़ता है तू तो कवि भी है?"

लकड़हारा—"मैं भला कविता क्या जानूँ? झौंपड़े में बैठा हुआ तुकबन्दी किया करता हूँ।"

अब सेठ जी को और भी भय हुआ कि हो-न-हो यह कुछ समझता है। कहीं ऐसा न हो कि कभी दांव खेल जाये। अतएव सेठ जी बात बदलकर कहने लगे—"तू तो राज समाज में रहने योग्य है?"

लकड़हारा—"अरे महाराज। कहां मैं और कहां राज सभा? मैं तो एक निधेन हूं, रोटियों तक का ठिकाना नहीं। किसी तरह आपकी बदौलत खाता-पीता हूँ और अपने दिन पूरे करता हूँ। देखिये कब तक मेरी यह दशा रहती है। न जाने कब मेरा भाग्य उदय होगा?"

सेठ—"क्या तुझ को रुपये-पैसे की लालसा है ? मैं तो समझता था तुझको अपनी अवस्था पर सन्तोष है ?"

लकड़हारा—"यह आपने कैसे जान लिया कि मैं लोभी हूँ। मुझ में वास्तव में लोभ और लालच नहीं है। जो कुछ मिल जाता है उसी पर संतोष कर लेता हूं और उसका कारण यह है कि मैं एक साधू का लड़का हूं। जो कुछ उसने मुझे बाल्यावस्था में शिक्षा दी थी उसी के अनुसार मेरा व्यवहार है। पर यह जानता हूं कि मैं किसी और अवस्था के लिये बनाया गया हूं। वह अवस्था कब आयेगी, इसकी मुझे खबर नहीं ?"

अब तो सेठ जी बड़े घबराये और पूछने लगे—"तू कहाँ का रहने वाला है ? किसका लड़का है और किस कारण तूने अपनी यह हालत बना रक्खी है ?"

लकड़हारा खिल-खिला कर हंस पड़ा और कहने लगा—"वाह, सेठजी वाह ! तुम को बहुत दूर की सूझी। क्या तुम्हें मेरी बातों से संतोष नहीं हुआ ? मैंने अभी-अभी कहा है कि मैं एक साधू का लड़का हूं, पर इससे यह न समझिये कि साधू मेरा पिता था। उसने केवल मेरा पालन पोषण किया था। मैं नहीं जानता मेरा असली बाप कौन था ? मेरी मां मर गई, वह भी मेरी तरह साधू को पिता जी कहा करती थी। अगर वह जीवित होती तो मैं उससे पूछता, परन्तु वह नहीं है। इसलिए मैं इस पहेली को हल नहीं कर सकता ! मैं स्वयं महीनों अपने मन में यह सोचा करता हूं कि मैं कौन हूं, क्यों पैदा किया गया हूं ? पर किससे पूछूँ—किससे पता लगाऊँ ?"

सेठ लकड़हारे की बातों को सुन कर आश्चर्य में डूब गया था। अब उसने अधिक बातचीत करना उचित न जानकर लकड़हारे को खाना खिलाकर रवाना कर दिया।

———

# ६

# सत्संग

कथा कीर्तन कलि विषै, भवसागर की नाव।
कहैं कबीर भव तरन की, नाहीं और उपाय॥
कथा कीरतन रात-दिन, जाके उद्यम ऐह।
कहैं कबीर ता दास से, निश्चय कीजै नेह॥

लकड़हारा पैसे लेकर घर आया। कुछ समय तक पुस्तक देखता रहा। उसके पास यही पुस्तकें थीं जो साधू छोड़ गया था। वे उसे प्राणों से भी अधिक प्यारी थी और नित्य उनका पाठ किया करता था। बाल्यावस्था में जैसे संस्कार पड़ जाते हैं वे कदापि नहीं छूटते। साधू की कुटी में उसका पालन-पोषण हुआ था, इस कारण भक्ति के संस्कार उसमें पाए जाते थे और वास्तव में वह अपने स्वामी का सच्चा भक्त था। यही कारण है कि अब तक माया का उस पर रंग नहीं चढ़ा था। आज जो मिल गया सो खा लिया, कल की चिन्ता नहीं। इस प्रकार पाँच वर्ष बीत गये।

उस की झौंपड़ी के पास ही एक कुम्हार का घर था। यद्यपि वह निर्धन और नीच जाति का मनुष्य था, परन्तु ईश्वर भक्ति

में लवलीन रहता था। सन्ध्या को जब काम-काज से छुट्टी पाता तो साथियों समेत भजन गाने लग जाता था। कभी-कभी उसके घर साधू भी आ जाया करते थे। जिस समय की यह कथा है, उस समय वास्तव में एक साधू आया था। रहता तो वह किसी मंदिर में था, परन्तु कुम्हार की भक्ति देख कर सन्ध्या होते ही वह उसके घर आ जाया करता था और सब लोग मिलकर भजन गाते थे। भक्ति रस भी विलक्षण रस होता है। भक्तिरस में जो मनुष्य लीन हो जाता है, उसकी आत्मा उन्नति करती जाती है। संसार असार प्रतीत होने लगता है और मानसिक शक्तियां एकत्र होकर एक केन्द्र की ओर अपना लक्ष्य बना लेती हैं। इसी का नाम वास्तविक जीवन है।

सन्ध्या का समय आया, सूर्यास्त हुआ। लकड़हारे ने अपने मन में कहा—चलो अब कुम्हार के घर सत्संग में चलें। वह भक्त था, लोग उसकी बाट देखकर प्रसन्न हो गये। यद्यपि कुम्हार के यहाँ वह नित्य प्रति जाया करता था, परन्तु कोई उससे परिचित नहीं था। न किसी ने उससे पूछा कि तू कौन है और न उसने बताया कि मैं कौन हूं। बस इतना ही जानना काफ़ी था कि वह भक्त है और भगवत का प्यारा है। लोभीलाल के यहां जाकर वह कुछ बात-चीत भी करता था, परन्तु सत्संग में चुप-चाप बैठा रहता था। गाने से उसे स्वाभावतः प्रेम था। जब वह कुम्हार के घर पहुँचा तो लोगों ने कहा—"आइये भगतजी, अब कथा आरम्भ होनी चाहिये। सब के सब एक स्वर से यह भजन गाने लगे :—

सरजन हारा, पालन हारा, राखन हारा, श्रुति सारा।
जानन हारा, धारनहारा, मारनहारा, रखवारा॥
महिमा विमल अनुपम तेरी, सबमें रमा, सबसे न्यारा।
ऋषि मुनि कोई भेद न पावें, वेद कहे अपरम्पारा॥

कारण कारज कर्म विधाता, हर्ता-धर्ता करतारा ।
राता माता अपनी दशा में, परम तत्वका भण्डारा ॥
तेरे बिना नहीं को रक्षक, सब का तू है आधारा ।
प्रीतम प्यारा, भगत सहारा, जनकी आंखों का तारा ॥
भूले भटके से, भरम मोह से, प्रभु दे सब को छुटकारा ।
जग की आशा त्याग करुणामय, पहुंचा दे भवजल पारा ॥
घटघट वासी, सकल प्रकाशी, अविनाशी हित सुत दारा ।
अन्तर्यामी, सब का स्वामी, धन यश सम्पत्ति परवारा ॥
भक्ति दान दे, शक्ति दान दे, बुद्धि दान दे हे दाता ।
चरण कमल में, शीश नवाकर, रहूं बसूं चरणन लागा ॥

बन्दना करने के पश्चात सब एक स्वर होकर लकड़हारे से बोले—"अब आप गाइये ।"

लकड़हारा—"बहुत अच्छा, जो आज्ञा ।" उसने दुतारा उठा लिया और टन-टन करते हुए तारों को मिलाया और फिर भक्ति रस में लीन होकर गाने लगा—

भजता क्यों नाहीं सत्नाम—टेक
जाकी पूंजी सांस है, नित आवे नित जाय ।
ताको ऐसा चाहिये, रहे नाम लौ लाय ॥ भजता क्यों० ॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल ।
कबीर पीना कठिन है, मांगे शीश कलाल ॥भजता क्यों० ॥
राता जाता नाम का, पिया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का, मांगे मुक्ति बुलाय ॥ भजता क्यों०
राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट ।
फिर पाछे पछताओगे, जब तन जै हैं छूट ॥ भजता क्यों०
नाम जपत कन्या भली, साकित भला न पूत ।
छेरी के गल गल्थना, जा में दूध ना मूत । भजता क्यों०
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रत्ती हजार ।

एक रत्ती घट संचरे, करे जार सब छार ॥ भजता क्यों० ॥
सुरत समानी नाम में, जग ते रहा उदास ।
कहैं कबीर गुरुचरण में, दृढ़ राखे विश्वास ॥ भजत क्यों०
तीरथ गये तो एक फल, सन्त मिले फल चार ।
सत्गुरु मिले अनेक फल, कहै कबीर विचार ॥ भजता क्यों०
जाकी पूँजी नाम है, ताके हैं सब ऋद्धि ।
कर जोड़े ठाड़ी सभी, आठ सिद्ध नव निद्धि ॥ भजता क्यों०

लकड़हारा गाते-गाते भक्ति में लीन हो रहा था। सन्नाटा छाया हुआ था। सब आनन्द में मग्न थे। लकड़हारा सचमुच प्रेमी था। जो बात उसके मुहं से निकलती थी वह अन्तरंग से निकलती थी और सब के दिलों पर असर करती थी। रोना-गाना कौन नहीं जानता, सभी गुनगुनाया करते हैं। परन्तु प्रेमी का गाना कुछ और ही बात होती है।

सबने कहां "वाह भगत जी, वाह ! इस समय तो आपने अमृत की वर्षा की है।"

लकड़हारा—"यह आप की कृपा है जो आप इतनी प्रशंसा करते हैं। असल बात यह है कि मैं गाना वाना कुछ नहीं जानता, यूं ही ऊट-पटाँग गा दिया। सुर, ताल तक की तो मुझे खबर नहीं। अच्छा महाराज ! अब तो साधू जी कुछ सुनाएं। उनके गाने में विशेष रस आता है।"

साधू—"भगतजी, निस्सन्देह आप बड़ा अच्छा गाते हैं। जो कुछ आप के मुहं से निकलता है दिल पर असर करता है। यदि आप को मेरा ही गाना सुनने की इच्छा है, तो लीजिये, बीबी कमाली का एक भजन मैं भी सुनाये देता हूं।"

हंसा निकल गया, मैना लडी सी ।
पाँच सहेली मैली कुचैली, मैं पांचों से न्यारी खड़ी सी ॥
हँसा निकल गया, मैना लड़ी सी ।

नौ दरवाजे बन्द कर लीने, दसवीं खुली मेरी खिड़की पड़ी सी ।।
हंसा मैं निकल गया, मैंना लड़ी सी ।
ना बोली ना मैं चाली, ओढ़े दुपट्टा किनारे खड़ी सी ।।
हंसा निकल गया, मैना लड़ी सी ।
कहत कमाली कबीर की, बालकी ब्याह से, मैं कुंवारी भली सी ।।
हंसा निकल गया, मैंना लड़ी सी ।

सबके मुंह से वाह-वाह के शब्द निकल पड़े और कहने लगे "महाराज ! आप सचमुच सत्संग के राजा हैं और भगत जी प्रधान हैं ।"

साधू ने कुम्हार की ओर देख कर कहा—"अब आप की बारी है, आप भी कुछ गाईये !"

कुम्हार—"महाराज, मैं क्या गाऊं ? सूर्य को दीपक दिखलाना अच्छा नहीं मालूम होता । जहाँ आप जैसे रतन विराजमान हैं वहां मुझ जैसे आदमी की क्या बिसात है ?"

साधू—"भई यह सत्संग है, यहाँ छुटाई-बड़ाई का कोई विचार नहीं है । हम सब ईश्वर के प्यारे हैं, किसी को संकोच नहीं करना चाहिये । जो मन में आवे प्रेम से उसे सुना देना चाहिये ।"

कुम्हार ने कहा—"सत्य वचन महाराज ! जो आप की आज्ञा है तो सुनाता हूँ—

देखो जग बौराना साधो, देखो जग बौराना ।
साँच कहूं तो मारन धावे, झूठे जग पतियाना,
साधो, देखो जग बौराना ।।
नेमी देखो, धर्मी देखो, प्रातः करे असनाना ।
आतम मार, पखानहिं पूजे, तिनमें कछु न ज्ञाना,
साधो देखो जग बौराना ।।
आसनमार देह धर बैठे, मन में बहुत गुमाना ।
पाथर पौडर पूजन माने, तीरथ बरत भुलाना ।।

साधो, देखो जग बौराना ॥
माला पहिरे टोपी पहिरे, तिलक छाप अनुमाना ।
साखी शब्द हैं, गोविंद भूले, आतम खबर न जाना ॥
साधो, देखो जग बौराना ॥
हिन्दू कहत हैं. राम प्यारा. तुरक कहै रहमाना ।
आपस में दोन्हू लड़े मरत हैं, काहू भरम न जाना ॥
साधो, देखो जग बौराना ॥
घर-घर मंत्र देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना ।
सत्गुरु चरन प्रीति नहीं गाढ़ी, अन्तकाल पछिताना ॥
साधो देखो जग बौराना ॥
ज्ञानी-ध्यानी, जोगी-भोगी, पंडित शेख दिवाना ।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, यह सब भरम भुलाना ॥
साधो देखो जग बौराना ॥

साधू–"कबीर साहब की बानी अमृत की घूंट है। जो बात कहते हैं, सब सच्ची हैं। दुनिया माने या न माने, यह दूसरी बात है। अच्छा अब समय बहुत हो गया है. सब मिलकर आरती कर लो, फिर सत्संग समाप्त हो।"

सब आरती करने लगे—

बार बार कर जोड़ कर, शिव सों करूं पुकार ।
साधू संग मोहि नित दीजियो, परम गुरु अवतार ॥
कृपा सिन्धु समरथ पुरुष, आदि अनादि अपार ।
राधा स्वामी परम पितु, हो तुम सदा आधार ॥
दया करो मोरे साईयाँ, दिओ प्रेम की घात ।
दुःख-सुख कुछ व्यापे नहीं, छूटे सब उत्पात ॥

आरती हो चुकने पर सत्संग समाप्त हो गया। सब एक दूसरे को नमस्कार करके अपने-अपने घर चले गये।

———

## ७

# लाड-प्यार का परिणाम

लोभीलाल लकड़हारे को विदा करके नाना प्रकार के मनमोदक के भोग में मन प्रसन्न करने लगा। उन्हें उसकी ओर से शंका सी उत्पन्न हो गई थी। पहले उसको काठ का उल्लू समझ रहा था, परन्तु जब उसके मुख से कुछ पते की बातें सुनीं तो कान खड़े हो गये। सोचा—यह तो फंसने वाली चिड़िया नहीं थी, मेरे जाल में कैसे आ गई? इसमें कुछ-न-कुछ भेद है। परन्तु नहीं, मुझको इसमें शंका करने की आवश्यकता नहीं, मेरे भाग्य ने मुझे धनवान बनाने के लिये भेजा है। वह भाग्य फिर भी मेरी सहायता करेगा और यह सयाना मूर्ख इसी प्रकार मेरे जाल में फंसा रहेगा। जाने दो क्यों वृथा मैं इस दुर्भावना के चक्र में पड़ा हूं। इससे होता ही क्या है? नगर वासियों को आश्चर्य है कि यह धन मुझ को कहां से प्राप्त हुआ है? कोई पूछता है तो मैं कह देता हूं, देश-देशान्तर में मेरी कोठियाँ हैं। लोग राजा के पास तक मेरी चर्चा करने लग गये हैं। परमेश्वर न करे, यदि राज दर्बारियों ने कोई बात मेरे विरुद्ध राजा को जाकर कह दी, तो उस समय मैं उनका सन्देह कैसे दूर करूंगा। कानों-कान तो यह बात होने लगी है, परन्तु अभी तक लोगों को यह पता नहीं है कि मुझे किस धनी ने धनवान बनाया है, अच्छा यह भी देख

लिया जावेगा, वृथा क्यों मन को कष्ट दूं ?"

वह इसी सोच-विचार में था कि उसका लाड़ला पुत्र दौड़ता और हांपता हुआ आया।

लोभीलाल—"अरे तू इतना घबराया हुआ क्यों है ?"

बालक—"चुप, बाबा चुप ! पण्डित मुझे पकड़ने को आ रहा है, यदि वह पकड़ लेगा तो मारेगा ?"

लोभीलाल—"मारेगा क्यों ? तूने उसका कुछ बिगाड़ा है ?"

बालक—"बिगाड़ा तो कुछ नहीं। मैं पाठशाला नहीं जाता था, एक विद्यार्थी मुझे बुलाने आया। मैंने उसको पत्थर उठाकर मारा, उसने जाकर पण्डित से चुगली खाई। पण्डित स्वयं आ रहा है। मुझको बचाओ नहीं तो मैं मारा जाऊंगा ?"

लोभीलाल—"अच्छा-अच्छा जा कोठड़ी में छिप जा, पण्डित आ रहा है तो मैं उससे स्वयं निपट लूंगा।"

बालक का मनोरथ सिद्ध हुआ। वह कोठड़ी में जा छिपा। इतने में पण्डित भी हाथ में छड़ी लिये हुए आ पहुंचा।

पण्डित—"सेठ जी राम राम।"

लोभीलाल—"राम राम पण्डित जी ! राम राम, कहो कैसे पधारे ?"

पण्डित—"क्या कहूं आप के पुत्र ने तो हमें बहुत दुखी कर दिया है, न आप पढ़ता है और न औरों को पढ़ने देता है। जब देखो तब पाठशाला से अनुपस्थित। आज उसने एक बालक को निरापराध मारा है। उसको चोट लगी, रुधिर बह रहा है। मैं स्वयं उसको पकड़ने आया हूँ।"

लोभीलाल—"पण्डितजी ! बालक तो ऐसे ही लड़ते-झगड़ते रहते हैं। उनका क्या है, घड़ी में मित्र, घड़ी में शत्रु। आप ऐसे भद्र पुरुषों को इन झगड़ों से क्या लाभ, जाने भी दीजिये ?"

पण्डित—"यदि मैं इन बालकों को सुधार न करूंगा तो और

कौन करेगा ? जब तक डाट-डपट से काम नहीं लिया जाता, तब तक ये सीधे नहीं होते।"

लोभी—"तो क्या आप मेरे लड़के को मारेंगे ?"

पण्डित—"और नहीं तो क्या करूंगा ! बालकों की कचहरी तो मैं ही हूं, और नहीं तो क्या मैं उनको पोलस के हाथ दे सकता हूँ।"

लोभी—"अरे बाप रे बाप ! मेरा पुत्र और मार खाए ? पंडित जी ! आप क्या कह रहे हैं, मैंने बड़े लाड-प्यार से उसे पाला है। मुझसे कैसे देखा जाएगा और फिर उसकी माता क्या कहेगी ?"

पण्डित—"यदि बालक को पढ़ाना लिखाना है तो फिर इन बातों की ओर ध्यान न दीजिए।"

लोभीलाल—"यदि यही बात है तो बालक को आपके पास भेजने में मुझे भय लगता है।"

पण्डितजी—"फिर आप क्या करेंगे ? पढ़ायेंगे नहीं तो कार्य कैसे चलेगा, आपकी इतनी कोठियाँ हैं उनका क्या होगा ?"

लोभी—"न पढ़ेगा तो उसकी क्या हानि होगी ? पढ़े-लिखे मनुष्य तो दस-दस रुपये में मारे-मारे फिरते हैं। जितने चाहो, ले लें।"

पण्डित—"बात तो सत्य है। आज समय ऐसा ही है। परन्तु फिर भी विद्या अमूल्य धन है।"

लोभी—"मैं तुम्हारा भी तो मूल्य देख रहा हूं। तुमको कितने मासिक मिलते हैं ? न पेट को रोटी जुड़ती है, न तन को वस्त्र। क्यों क्या मैं भी तुम्हारे समान अपने पुत्र को प्रतिष्ठा-हीन दरिद्री और कंगाल बनाऊंगा ? वह अपनी कोठी पर बैठेगा, उसके गुमास्ते होंगे, मुनीम होंगे अन्य व्यक्ति सब कार्य करेंगे, पुत्र ने नहीं पढ़ा-लिखा तो न सही।"

पण्डित—"सेठ जी ! धन सम्पत्ति तो नाश हो जाती है,

विद्या के धन का कभी नाश नहीं होता ? न उसको चोर चुरा सकता है। लक्ष्मी व्यापार में बसती है, यह सत्य है। मुझ पर न जाइये और न मेरे उदाहरण को लीजिये, कौन जाने मैं किस भाव से यह काम कर रहा हूं।"

लोभीलाल—'अच्छा ! जाओ अपना काम देखो, [मैं गौ के बछड़े को कसाई के हाथ नहीं दूंगा ? तुम्हारे जैसे भिखमंगे मेरे यहां बहुत आया करते हैं और आयेंगे।"

पण्डित चुप था बेचारे पर वज्र गिरा। उसने बहुत विनती की, प्रार्थना की, परन्तु लोभीलाल ने एक न सुनी। कहने लगा—"जा, जा, अधिक बातें न बना, तेरे जैसे बहुत बढ़े-लिखे मेरे द्वार पर भटकते फिरते हैं। तू लाख कहेगा, मैं एक न सुनूंगा। मेरा प्यारा पुत्र मार खाये, यह मुझसे न देखा जायेगा।"

पण्डित अपमानित होकर चला गया। उसके जाते ही बालक कोठड़ी के बाहर ऐंठता-अकड़ता हुआ चला आया और साथ ही आनन्द से गाता भी जाता था।

ठुमक चलत, रामचन्द्र, बाजत पैजनियां।
ठुमक चलत, रामचन्द्र, बाजत पैजनियां॥

बालक—"वाह, बाबा वाह ! पण्डित को अच्छी खरी-खरी सुनाई। अच्छा किया, दुष्ट प्रति-दिन मुझे मारा करता था।"

लोभीलाल—"हाय ! प्रति दिन मारा करता था, तूने मुझ से पहले क्यों न कहा ? मैं उसकी खाल खिंचवा लेता।"

बालक—"हां, बाबा हां ! वाह, बाबा वाह !"

लोभी—"मेरा लाडला, मेरे नयनों का तारा, मैं कैसे सहन कर सकता हूं कि कोई तुझे मारे।"

बालक—"हाँ, बाबा हाँ, वाह बाबा वाह।"

लोभी०—"यही एक पण्डित क्या, सौ पण्डित आ जायेंगे, आ सकते हैं।"

बालक–"ना, बाबा ना ! एक पण्डित से तो राम-राम करके छूटा हूं, सौ पण्डित से कैसे छुटकारा होगा ?"

लोभी-'गंवार है, तू नहीं समझता यह तो कहने की बात है।'

बालक––"ना, बाबा ना, बात ही सब कुछ है, जो तुम सौ पण्डित को बुलाते हो तो मुझे उसी एक के पास भेज दो। एक अच्छा कि सौ अच्छे ?"

लोभी०–"अरे मेरा अभिप्राय यह नहीं है, मैं कहता हूँ वैसे सौ मिल सकते हैं।"

बालक—"क्यों बाबा ! क्या सौ पंडित बुलवा कर पाठशाला खोलोगे ! वे सब बालकों को मारेंगे और तुम को पाप होगा। बालक तुमको हत्यारा कहेंगे और मैं भी हत्यारा कहूंगा।"

लोभी०–"मेरे भोले-भाले बेटे! पाठशाला न खोलूंगा, आ तुझे गोद में ले लूं।"

आ मेरे प्यारे गोद में आ, फिर मैं लेऊं तुझे बिठा।

बालक पिता के गले से चिपट गया "मुझ को ना पढ़ाओ, मैं न पढ़ूंगा।"

लोभी०–"कुछ-न-कुछ लेखा-पत्रा तो सीखना ही होगा, नहीं तो दुकान का काम कैसे कर सकेगा ?"

बालक—"दुकान का काम करने से क्या होगा ?"

लोभी०—"धन-सम्पत्ति मिलेगी।"

बालक—"फिर क्या होगा ?"

लोभी०—"तेरा विवाह करूंगा, नाच रंग, तमाशे, सब कुछ होंगे। छोटी सी बहू घर में आयेगी।"

"हाँ, बाबा हाँ ! यह बात अच्छी लगती है,मेरा विबाह शीघ्र कर दो। बाबा ! विवाह मे क्या होगा ?"

लोभी०– 'बहुत धूमधाम होगी, तू घोड़े पर चढ़ेगा, तेरी बहू पालकी में बैठेगी, बड़ी सुन्दर बरात चढ़ेगी, आतिशबाज़ी छूटेगी,

रंडियाँ नाचेंगी, बहुत सा धन लगाऊंगा, सबको खिलाऊंगा, पिलाऊंगा। तेरे सास-ससुर भी देखेंगे कि लोभीलाल भी बड़े हौंसले वाला है।"

बालक—"हाँ, बाबा! बात तो बड़ी अच्छी है, फिर मेरा विवाह कब होगा?"

लोभी०—"जब तू ग्यारह वर्ष का हो जायेगा।"

बालक—"ग्यारह वर्ष का मैं कब हूँगा?"

लोभी०—"जब ग्यारहवाँ वर्ष आयेगा।"

बालक—"ग्यारहवाँ वर्ष कब आयेगा?"

लोभी०—"हट दूर हो, ठुंठ कहीं का। बात करता है ना बात की जड़, मैं तुझको क्या उत्तर दूं।"

बालक—"अच्छा बाबा! कल बड़ी भोर में तुमको कहूँगा कि ग्यारहवां वर्ष आ गया, मेरा विवाह करो। तब तुम मेरा विवाह करोगे या नहीं?"

लोभी०—"नहीं, जब तेरी माता मुझ से कहेगी, कि बालक ग्यारह वर्ष का हो गया, तब विवाह करूंगा।"

बालक—"बस, यह कौन सी बड़ी बात है। मैं अभी जाता हूं और माता से यह बात कहलाता हूँ, नहीं तो मेरा नाम न लेना।"

लोभी०—"अच्छा जा अब घर चला जा, कुछ काम भी करने दे।"

बालक—"नहीं बाबा, तुम तो बनो घोड़ा और मैं तुम पर चढ़ बैठूं, समझ लो विवाह करने जाता हूं।"

लोभी लाल आतुर हो गया। बालक था हठी, रोने लगा। विवश होकर उसने अपनी पीठ झुका दी। कहा—"अच्छा घोड़े पर चढ़ जा।" फिर क्या था, बालक कूद कर चढ़ बैठा और कहने लगा—"टिक-टिक टिक, घोड़े टिक मेरा घोड़ा खाता बिल्ली, जाता है दिल्ली। मेरा घोड़ा खाता है फावर, और जाता है पेशा-

वर। मेरा घोड़ा खाता है चना, और जाता है पन्ना। मेरा घोड़ा खाता है खीर, और जाता है कश्मीर। मेरा घोड़ा खाता है घास, और हो जाए उसका सत्यानास। यह कहकर मुख पर दोहत्थड़ जमा दिये। चल-चल-चल, उछल कर चल, इतना न मचल, जाना है विन्ध्याचल।"

लोभी०—"अरे! तू मुझको मारता है?"

बालक—"और क्या करूं, घोड़े को सभी मारते हैं। चाबुक नहीं है, नहीं तो इतने जोर से मारता कि तुम सरपट भागने लगते। अभी से सीख रखूं, नहीं तो विवाह के समय घोड़े पर चढ़ न सकूंगा।"

लोभी०—"अच्छा, अब उतर! बहुत लाड-प्यार हो चुका, घर जा, कुछ काम-काज करने दे। बालक उतर पड़ा! कहने लगा-एक बात हो गई, एक बात रह गई, बाबा! मैं बनूं वर और तुम बनो बहू। लाला दुकान से धोती और वस्त्र निकालो, बन-ठन के चलो। मां से कहूं कि नई बहू विवाह कर लाया हूँ।"

सेठ को क्रोध चढ़ा तो बालक को डाँट बताई "दुष्ट! तू इतना बुरा होता जाता है। पंडित सत्य कहता था, लाड-प्यार से बालक बिगड़ जाते हैं। आज मैंने तुझे छुड़वाया और आज ही तूने मेरी दुर्गति बनाई। ईश्वर जाने बड़ा होकर क्या करेगा?"

लोभी का आँखें दिखाना था कि बालक ढाढ़ें मार कर रोने लगा और रोता-रोता सेठानी के पास चला गया। सेठानी मारे क्रोध के दुकान पर आ गई, फिर तो स्त्री और पुरुष में वह-वह बातें हुईं कि उनका कथन नहीं हो सकता। एक की चोटी, एक का हाथ, एक की मूंछें और एक का पुरुचा। तब गुत्थम-गुत्था तक नौबतपहुंची। स्त्री-पुरुष की लड़ाई झगड़े को क्या प्रगट करें, पाठक स्वयं समझ लें। बालकों के अधिक लाड-प्यारका यह नतीजा होता है और सुख के बदले घर नर्क बन जाता है।

८

# राजा कुम्हार के घर

कुम्हार के घर में दरवाजा नहीं था। बेचारा गरीब कुम्हार किवाड़ कहां से लाता। रोज कुआँ खोदता, रोज पानी पीता। जो कुछ महनत मजदूरी से मिलता, उसी पर निर्वाह करता था। अगर कुछ बच जाता, तो उसे सत्संग में खर्च कर देता और सुख की नींद सोता। एक रात जब कुम्हार सुख की नींद सो रहा था तो दैव योग से उस नगरी का राज जो प्रायः रात को भेष बदल कर अपनी प्रजा को देखने के लिये अकेला निकला करता था, कुम्हार के घर की तरफ जा निकला। रात चांदनी थी। राजा की दृष्टि कुम्हार पर पड़ी और वह अपने मन में सोचने लगा कि देखो यह तो निर्धन है, परन्तु कैसी सुख कीनींद सो रहा है। मैं राजा हूं, परन्तु मुझे यह सुख प्राप्त नहीं है। सच है दुनियां में जो जितना बड़ा है वह उतना ही अधिक दुखी है और जो जितना छोटा है वह उतना ही सुखी है। सुख सन्तोष में है, दुःख लोभ और लालच में। राज-काज का बोझ दुःख और चिंता का कारण है। प्रजा को तो केवल अपनी चिंता रहती हैं, परन्तु राजा को राज्य भर की चिन्ता रहती है। अपना बोझ तो हर कोई उठा सकता है, परन्तु सब का बोझ वह

अकेले कैसे उठाए? संसार में दुःख-ही-दुःख है। साधारण मनुष्य भी कैसे सुख की नींद सोते हैं और मुझे राजा होकर भी नींद नहीं आती। कुम्हार तू मुझसे कहीं अधिक सुखी है। तुझसे आज मुझे बहुत सी शिक्षाएं मिली हैं। राजा वहां से चल पड़ा, परन्तु उसका ध्यान कुम्हार की तरफ ही लगा रहा। यद्यपि मार्ग में उसे कितने ही दृश्य दिखाई दिये, परन्तु कोई उसके चित्त को कुम्हार की तरफ से हटा न सका। वह बराबर यही सोचता रहा कि कुम्हार मुझ से कितना अधिक सुखी है। इसी सोच-विचार में जब आधी रात बीत गई तो यह सोचकर कि चलो, अब सो रहें, कल फिर राज-काज का काम करना है, महल की ओर चल दिया। महल के सामने ही बाग था। जब उसकी दृष्टि बाग के बंगले पर पड़ी, उसने सोचा कि ये सब महल और मकान, बाग और बगीचे, इतने सुन्दर और शोभायमान होने पर भी मुझ को वैसी नींद नहीं सोने देते, जैसी कुम्हार को अपनी झौंपड़ी में नसीब है। आओ, इस बंगले की दीवार पर कुछ लिख दें, जिससे कभी कभी इस घटना का स्मरण होता रहे। और उसने तुरन्त अपनी जेब से पैंसिल निकाल यह लिख दिया—मुझ से कुम्हार अधिक सुखी है। जिस आनन्द की नींद वह सोता है, मुझे कदापि प्राप्त नहीं है। मेरे पास इतना धन-दौलत है, फिर भी मैं दुःखी हूं—उसके पास धन का नाम नहीं; फिर भी वह इतना सुखी है।

धन्य कुम्हार, धन्य तेरी लीला, सुख आनन्द का भंडार तू।
पात्रों से चाक, चाक गधे से, दिया दुःख को खांडा तू॥

यह लिखकर महल के भीतर चला गया और बिस्तर पर लेट गया।

———

## ६

# राजकुमारी

गुरु पशु, नर पशु, तृया पशु, वेद पशु संसार ।
मानुष सोई जानिये, जाहि विवेक विचार ॥

प्रभात का समय है। महल के बाग़ में राजकुमारी बीना अपनी सखी गुलाब को लिये हुए आई। चहुँ ओर फूल खिले हुए थे और उन पर भौंरे गूंज रहे थे।

गुलाब—"बीना बहिन, संसार में सौंदर्य भी क्या वस्तु है! देखो, लिखे हुए फूलों पर भौंरा किस प्रकार गूंज रहा है?"

भौंरा लोभी फूल का, कली-कली रस लेय।
कांटा लागा प्रेम का, तड़प-तड़प जिय देय॥

बीना—"बहिन, तू सच कहती है। परन्तु बात तो तब है जब ये बाह्य सौंदर्य के साथ अन्तर सौंदर्य भी हो। रूप-रंग अच्छा हुआ तो क्या, मनुष्य में गुण भी अच्छे होने चाहियें। तू समझती है कि भौंरा फूल की सुन्दरता पर मोहित है, वह रूप पर नहीं रीझता। किन्तु सुगन्धि से उसे प्रेम है। जिस फूल में सुगन्धि नहीं होती, उन पर वह नहीं जाता। देख चम्पा का फूल कितना सुन्दर और कितने अच्छे रंग का होता है, परन्तु भौंरा उसके पास भी नहीं फटकता। मैं तो यही समझती हूँ कि मनुष्य की सुन्दरता उसके गुणों से ही है।"

गुलाब—"मैं कैसे कहूं कि सुन्दरता तुच्छ वस्तु है।"

बीना—"मैंने कब कहा कि वह अच्छी वस्तु नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य तो यह था कि मनुष्य में गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है।"

गुलाब—"तूने अभी-अभी यह कहा है कि भौंरा सुगन्धि का प्रेमी है। देख चम्पा में कितनी सुगंधि होती है, परंतु भौंरा भूल कर भी उसके पास नहीं जाता। क्या तूने नहीं सुना है?"

चम्पा तुझ में तीन गुण, रूप रंग और बास।
औगुण तुझ में एक है, भंवर न बैठे पास॥

बीना—"बात कहने का फेर है, बावली तू अक्षर-अक्षर को सच जान लेती है। सृष्टि में एक बात और है, जो जैसा होता है, वैसी ही वस्तु से मिलता है। जब तक दो वस्तुयें एक अवस्था की न हों, तब तक उनका मिलना कठिन है। स्थूल-स्थूल से मिलती है, सूक्ष्म-सूक्ष्म से मिलती है।"

माटी से माटी मिले, मिले कीच से कीच।
उत्तम से उत्तम मिले, मिले नीच से नीच॥

गुलाब—"(हंसकर) वाहरी, बलिहारी जाऊं तेरी बुद्धि पर। राजकुमारी, तू बड़ी भोली है। कहाँ कोयले के रङ्ग सा काला कलूटा भौंरा, कहाँ गुलाबकी कोमल पंखड़ियाँ। क्या ये दोनों एक से हैं। चम्पा के पास भौंरा के न जाने का कोई और कारण होगा।"

बीना—"हां सखी मैं भोली-भाली हूँ, परन्तु तू भी तो बाह्य रूप रङ्ग पर ही मरती है, भीतर का हाल नहीं जानती। भौंरे को तू काला-कलूटा कहती है, पर अन्तरङ्ग तो उसका सुन्दर है। तभी वह गुलाब पर मोहितहै। अच्छा हो, यदि तेरा विवाह किसी काले-कलूटे के साथ हो। कारण, कि तेरा नाम गुलाब है और उसका नाम भौंरा हो?"

गुलाब–"तू भी तो नाम पर गई। तेरा नाम बीना है। किसी संपेरे के साथ तेरा विवाह हो तो खूब निपटे, क्यों पते की कही ना ?"

बीना—"देख, इतना ना इतरा। मैंने तेरे चिढ़ाने को कुछ नहीं कहा है, तूने मेरी बात नहीं समझी। प्रत्यक्ष में दो स्त्री-पुरुष चाहे कैसे हों हों, पर यदि उनके मन और अन्तरङ्ग एक से हों तो वे एक दूसरे के सच्चे प्रेमी होंगे। यदि यह नहीं है तो उनमें प्रेम का होना असम्भव है। इसी प्रकार सृष्टि की वस्तुओं में भी समानता होती है। जिसको मनुष्य नहीं समझ सकते। चम्पा की सुगन्धि बड़ी कड़ी होती है, गुलाब की भीनी होती है। जो आनंद भीनी-भीनी सुगन्ध में होता है, वह कड़ी सुगंध में नहीं होता। भौंरा मन का बहुत मुलायम होता है, इस लिये वह गुलाब की सुगंधि पर मोहित रहता है।"

इस प्रकार दोनों वार्तालाप कर रही थीं कि इतने में भौंरा मंडलाता हुआ गुलाब के पास आया। गुलाब ने अंचल झटक दिया और भौंरा उड़ गया। परन्तु क्षण-भर में फिर वह उसके सिर पर आकर बैठ गया। गुलाब भौंरे को हटाना चाहती थी, पर वह हटता ही नहीं, बड़ा हठीला है।

गुलाब–"बीना बहिन! इसने तो मेरे नाक में दम कर दिया। कितना हटाती हूँ, हटता ही नहीं।"

बीना—"क्यों, मैंने नहीं कहा था कि भौंरा गुलाब पर बैठता है। देख अभी मेरी बात सच्ची और सही हो रही है!" यह कह कर उसने अपने हाथ का चंवर हिलाया।

गुलाब—"तुझको तो हंसी दिल्लगी का अच्छा अवसर मिला है। मुंह तेरा है, जो चाहे कह ले, मैं भी किसी दिन इसका बदला लूंगी। आज तेरा पिता रायसिंह रानी से कह रहा था कि बीना स्यानी हो गई है उसका विवाह कर देना चाहिये। रानी कहती

थी कि साथ ही मेरी छोटी लड़की बेली का विवाह भी अभी होना चाहिये।"

बीना—"हां! और क्या बात हुई?"

गुलाब—"रानी कहती थी कि बीना को जहां चाहो व्याह दो, मैं कुछ न कहूंगी। परन्तु बेली का व्याह किसी बड़े राजा के घर होना चाहिए।"

बीना—"देख सखी, अगर मेरी मां जीती होती तो क्या यह मेरे लिये ऐसी बात चीत करती? माँ की ममता होती और है। मैं रानी की सौतेली बेटी हूं इससे मुझको सदा बुरी दृष्टि से देखा करती है और अपनी लड़की बेली को लाड-प्यार करती है।"

गुलाब—"दुनिया में सौतेली माताएं ऐसा ही करती हैं, यह कोई नई बात तो है नहीं। पर बहिन बीना! बुरा न मानना, तू मुझको भौंरे के साथ व्याहती है, अगर कहीं रानी ने चिढ़ कर तुझको ही किसी सपेरे से व्याह दिया तब मैं तुझसे पूछूंगी कि बहिन अब बता क्या हाल है, मेरी बात सच्ची हुई या नहीं?"

बीना—"चल हट! तुझको तो दिल्लगी सूझी है। मुझे तो शादी-विवाह की लालसा भी नहीं है, पर इतना कहती हूं कि चाहे राजा रानी मुझे बुरे-से-बुरे आदमी के साथ भी व्याह दें तो भी मैं उसको एक बड़ा आदमी बना कर छोड़ूंगी। बहिन गुलाब, स्त्री अच्छी हो तो निकम्मे से निकम्मा पुरुष भी काम का बन जाता है। परन्तु इसके प्रतिकूल स्त्री खराब हो तो वह राजा को भी रंक बना देती है।"

गुलाब—"मैं भी सुनती तो यही आई हूं, परन्तु न जाने यह बात सच्ची है या झूठी? दुनिया में लोग बात बनाया करते हैं, उन में से कुछ सच्ची होती हैं और कुछ झूठी।"

बीना—"हां, तेरा कहना सही है। परन्तु उच्च विचार वाली स्त्रियां सब कुछ कर सकती हैं।"

गुलाब—"अच्छा बहिन ! मैं भी देखूंगी, जब तू संपेरे को पा कर उसे राजा बना देगी। अब जाने दे, छेड़-छाड़ की बातें ज्यादह ठीक नहीं। बाग़ में दिल बहलाने आई हैं न कि जली-कटी सुनने आई हैं। देखो फूल कैसे खिल रहे हैं ? आम के वृक्ष पर बैठी कोयल कूक रही है। निस्सन्देह यह बड़ी सुखी होगी। यदि कुछ कमी है तो केवल यही है कि इसका जोड़ा साथ नहीं है, नहीं तो इसके आनन्द का कोई पारावार न होता।"

वीना—"बहिन सुख-दुख तो मन का भाव है। सच्ची बात तो यह है कि संसार में सच्चा सुख केवल संतोष में है। सन्तोष से बढ़ कर और कोई सुख नहीं है। दुनिया में चाहे आदमी धनवान हो, चाहे निर्धन। यदि उन में सन्तोष नहीं तो दोनों ही बराबर हैं। रूखा-सूखा खाकर सन्तोषी मनुष्य ही सुखी रहता है और चिकनी-चुपड़ी खाने वाला धनवान सदा दुःखी रहता है। सुख न खाने में है न पीने में है। इस जगत में जहां देखो, दुःख ही-दुःख है—

तनधर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहत हो, सब का कहां विवेका हो॥
घाटे-बाढ़े सब जग दुखिया, कहा गृही वैरागी हो।
सुकदेव मुनि दुःख के भव से, गर्भ माया त्यागी हो॥
साँच कहौं तो कोई न पतीजे, झूठा कहा न जाई हो।
ब्रह्मा, विष्णु, महादेव दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो।
राजा दुखिया, प्रजा दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो॥
कहै कबीर सकल जग दुखिया, सन्त सुखी मन जीतो हो॥

बहिन, यह दुख क्यों है ? केवल इस कारण से कि सन्तोष नहीं है। देख मेरी माता चाहे मुझे कितना ही दुःख दे, पर मैं दुःख नहीं मानती, सदा प्रसन्न रहने का ही प्रयत्न करती हूं। 'आपा भला तो जग भला'

गुलाब—"सत्य वचन बहिन। संसार में सन्तोष से बढ़ कर किसी वस्तु में सुख नहीं है। देख तेरी छोटी बहिन बेली आ रही है। इतराती, अठखेलियां करती आती है। उसे अपने सौंदर्य का बड़ा अभिमान है। दिन-रात शृंगार में लगी रहती है। घर में जब देखो, दर्पण मुहं के सामने रक्खा रहता है।"

बीना—"माता के लाड-प्यार ने उसको बिगाड़ दिया है, उस बेचारी का क्या अपराध है? सन्तान के बिगाड़ने वाले माता-पिता ही होते हैं। यदि वे उनको शिक्षा देकर सत्मार्ग पर लगावें ता वे क्यों बिगड़ें। परन्तु वे ऐसा नहीं करते। माता-पिता अपने बच्चों को आवश्यकता से अधिक लाड-प्यार करते हैं, पर पत्थर पड़े ऐसी समझ पर। अन्त में उनको पछताना पड़ता है। माता-पिता तो समय पाकर चलते बनते हैं, कष्ट उठाना पड़ता है सन्तान को।"

इतने में बेली राजकुमारी भी वहां आ पहुंची।

बेली—"क्यों प्यारी बीना, न घर में मिलती है न बाहर। मैं तुझे ढूंढ़ती २ थक गई। घर में जब देखो तब तू आँखों के सामने किताब लगाए बैठी रहती है। यहाँ भी मैं समझती हूं कि ज्ञान-ध्यान की ही बातें हो रही होंगी। क्यों सच है ना? मुझको पता लगा कि तू बाग़ में है, मैं तुझे ढूंढती-ढूंढती यहाँ आ निकली।"

बीना—"मेरी भोली-भाली बहिन! पुस्तकों में बड़ा आनंद आता है। उनसे बड़ी-बड़ी शिक्षाएं मिलती हैं।"

बेली—"ठीक है, तुझे तो पंडित होना है ना। मेरा बस चले तो तेरी पुस्तकें उठाकर चूल्हे में झोंक दूं! मनुष्य को चाहिए कि मिले जुले, औरों की सुने, अपनी कहे। पुस्तकों में क्या धरा है?"

बीना—"तू क्या जाने। आज-कल मैं रामायण पढ़ रही हूं। सीता, अनुसूइया स्त्रियों के चरित्र से मनोरंजन करती हूं। मेरी दृष्टि के सामने सदैव प्राचीन स्त्री-पुरुषों के वृतांत रहते हैं।

बहिन विद्या बड़ी चीज है। विद्या ही तो स्त्री-पुरुष का सच्चा आभूषण है। विद्या न हो तो मनुष्य पशु के तुल्य है।"

बेली—"वाह! स्त्रियों को विद्या से क्या लेना? विद्या पढ़ें पुरुष, जिनको उसकी बदौलत माँगना-खाना है। स्त्रियों को तो घर में रहना है, घर का काम-काज करना है, उन्हें विद्या की कोई आवश्यकता नहीं। देख, मेरी माता ने कल मुझ को यह जड़ाऊ कंकण दिया है। बता यह अच्छा है या तेरी रामायण की पुस्तक अच्छी है?"

बीना—"मेरी रामायण की पुस्तक अच्छी है।"

बेली—"झूठ, बिल्कुल झूठ। रामायण से क्या किसी की सुन्दरता बढ़ती है?"

बीना—"हाँ, अवश्य सुंदरता बढ़ती है!"

बेली—"झूठ, बिल्कुल झूठ।"

बीना—"बेली, अभी तेरी उमर कम है, तूने दुनिया नहीं देखी, तू इन बातों को नहीं समझ सकती।"

बेली—"तूने बड़ी दुनिया देखी है। यहीं पैदा हुई, यहीं रही, यहां से पैर भी बाहर नहीं रक्खा। अब बातें करती है, तमाम दुनिया की?"

बीना—"मुझे पुस्तकों ने बड़ी दुनिया दिखा दी है। मैं समझती हूं दुनिया में स्त्री जाति की क्या अवस्था है?"

बेली—"जरा मैं भी तो सुनूं।"

बीना—"सुन, जगत् में स्त्री ही बल देने वाली, बुद्धि देने वाली और अन्न देने वाली है। वह अपनी सन्तान को शिक्षा देती है, पति की सेवा करती है और योग्य सम्मति देती है, सब को नियम में चलाती है। यदि उस में विद्या नहीं है तो उसकी संतान मूर्ख और अशिक्षित होगी। उस का पति सदैव दुःख में ग्रसित रहेगा। सास-सुसर अलग

झींकते रहेंगे। साराँश यह कि सारे सामाजिक बंधन टूट जाएंगे और वह घर सुख धाम के स्थान पर दुःख, दारिद्रय, कलह और अशांति का आवास बन जायेगा।"

बेली—"तुझको बड़ी बातें आती हैं। मैं बातोंमें तुझ से कभी न जीत सकूंगी। डरती हूं, कि कहीं वाद-विवाद में और हंसी-हंसी में बिगाड़ न खड़ा हो जाये। ले तू जीती और मैं हारी। तेरा कहना सच, मेरा कहना झूठ।"

बीना-'नहीं, नहीं। मैं हारी तू जीती, अबतो तू प्रसन्न है?"

बेली—"मैं तुझ से कैसे जीत सकती हूं ? तेरी जिह्वा तो कैंची की तरह चलती रहती है। मैं क्या, महल की यदि सारी स्त्रियां भी तेरे सामने आवें तो तू अपनी ज़बान से सब को हरा दे। भला चलती हुई कतरनी का कौन सामना कर सकता है ?"

बीना—"बहिन, तेरे मेरे बीच में झगड़ा ही कौन सा है, चल इन बातों को जाने दें। आओ बाग की सैर करें और बातें करें।"

तीनों कुमारियां बाग़ में टहते-टहते उस जगह पहुंच गईं जहां बंगले की दीवार पर राजा रायसिंह ने कुम्हार की सुखावस्था के छन्द लिख दिये थे।

बीना—"पढ़ो, क्या लिखा है ?"

बेली—'मुझ से तो नहीं पढ़ा जाता, गुलाब तू पढ़। गुलाब ने पढ़ा और बोली—बहिन इस में तो यह लिखा है कि मुझ से यह कुम्हार कहीं अधिक सुखी है, कैसे मजे की नींद सो रहा है, मुझे तो क्षण भर के लिए भी चैन नहीं मिलता।"

बीना—"यह तो किसी मूर्ख का लिखा हुआ मालूम होता है। जान पड़ता है कि इसका लिखने वाला कोई कुम्हार है, तभी तो वह कुम्हार की नींद की प्रशंसा करता है।"

बेली—"बहिन तू पढ़ी-लिखी है, तुझ से हो सके तो इस का उत्तर लिख दे ?"

बीना—"क्या जाने किसने लिखा है ? मुझे तो इसका उत्तर देते हुए संकोच होता है।"

बेली—"नहीं बहिन, संकोच न कर। मैं यदि लिखना-पढ़ना जानती तो कभी न चूकती।"

बीना—"अच्छा तेरी यही इच्छा है तो मैं इसका उत्तर लिखे देती हूं" और यह लिख दिया—

तू कुम्हार है, तू अनजान है, तू अन समझ निपट प्राणी।
सुख तो रहे नेक भामिनी के, बात नहीं यह तूने जानी॥

वास्तव में तू कुम्हार है। जभी तुझ को नींद न आने की इतनी शिकायत है। जिस घर में सुन्दर सच्चरित्र और प्रिय बादनी स्त्री होती है, उसमें पुरुष आनन्द से शयन करता है। उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती।

बेली—"अरी, तूने लिखने वाले को कुम्हार बना दिया।"

बीना—'मैं क्या करूं। यदि वह कुम्हार न होता तो कुम्हार की प्रशंसा कैसे करता ?"

बेली—"अच्छा अब देर हो रही है चलो घर चलें। यहां देर तक ठहरने से माता जी रुष्ट होंगी।"

सब महल की ओर चल दीं। अभी वे थोड़ी ही दूर गई थीं कि बेली की सखी, शांता कांपती हुई आई। सब ने पूछा—अरे तुझे क्या हुआ, जो इस तरह घबराई हुई आई है ? शान्ता ने कहा—एक स्त्री आई थी और वह एक चिट्ठी मुझको दे गई है। कि यह चिट्ठी तेरे नाम की है। इसे किसी को नहीं दिखाना, पढ़ कर रख लेना, जब मैं आऊंगी जवाब ले जाऊंगी। मैं पढ़ना नहीं जानती, मुझे राजकुमारी बेली की तलाश थी ! मैं जानना चाहती हूं कि इसमें क्या लिखा है और इसे किसने लिखा है ?"

बेली—"अरी बावली मैं तो पढ़ना नहीं जानती, तेरी चिट्ठी कैसे पढ़ूँ ! बीना बहिन को दे, वह पढ़ कर सुना देगी।"

शांता घबराई, लजाई और कहने लगी—"कि जब बेली रानी से मेरा कुछ परदा नहीं है तो बीना देवी से भी मैं क्यों छिपाऊं। लो बीबी मेरा पत्र पढ़ दो। बीना हाथ में पत्र लेकर पढ़ने लगी।

"चन्द्रमुखी चित्त चोर भामिनी, मैं चकोर सेवक तेरा।
तुझ बिन व्याकुल घबराता हूं, चित्त नहीं स्थिर मेरा॥
चटक-मटक तेरी भाई मन को, केश में तेरे मन लटका।
करुणा कर, कृपा कर मुझ पर, मत दे दुःखिये को झटका॥
रूपवती सुन्दर अति सुन्दर, कोमल चित्त कोमल नयना।
चरण कमल का भौंरा करले, सुन, सुन, सुन मेरे बयना॥
मन मन्दिर में मुझे बिठाले, घबराता हूं मैं निशिदिन।
सुधि ले मेरी, मेरी रानी, कैसे काटूं दिन गिन-गिन॥"

तेरा प्रेमी दर्शनाभिलाषी—
धमलू माली।

चिट्ठी का पढ़ना था कि सब खिल खिला कर हंस पड़ीं। कहने लगीं—"वाहरी शान्ता बाह! तू खेलती शिकार है टट्टी की आड़ में, चूहा कोई छिपा हुआ है इस पहाड़ में।"

शांता न लज्जा के मारे सिर नीचा कर लिया, काग़ज को फाड़ कर फैंक दिया और बोली—"मुए को शर्म नहीं आती? कैसा पत्र लिखता है। मेरा वश चले तो उसकी आँखें निकाल लूं" राजकुमारियाँ कुछ कहने को ही थीं, कि इतने में किसी के आने की आहट हुई। सब संभल गईं। दृष्टि उठा कर देखती हैं कि राजा-रानी के साथ बंगले की तरफ जा रहे हैं।

———

१०

# सौतेली माता

सौतेली माता बुरी, ताका नहीं विश्वास ।
मात मरी, सुत खेद अति, गल गए पंजर माँस ॥

राजा रानी की दृष्टि बेली पर पड़ी । वह उन्हें देखकर वहां ठहर गई थी । परन्तु बीना सखियों समेत महल की ओर चली गई थी ।

रानी—"बेली तू यहां अकेली क्या कर रही है ? तुझ को अकेले बाग में नहीं आना चाहिये था ? यदि तुझे मेरा कुछ डर नहीं है तो क्या तू राजा से भी नहीं डरती है ?"

बेली—"नहीं माता, नहीं ! मैं अकेली नहीं आई थी । मेरे साथ बीना बहन और दो सखियां भी थीं ।"

रानी—"बीना किधर चली गई ?"

बेली—"उसने आप दोनों को आते देखा तो पहले ठिठकी, कुछ सोचने लगी, फिर जल्दी-जल्दी पैर उठाकर महल की ओर चली गई । मैंने भागना उचित नही समझा, माता-पिता से कौन भागता है ? मैं आपसे मिलने के लिये इधर चली आई ।"

रानी—"(राजा की ओर देख कर) क्यों जी ! कुछ सुना, अब तो तुम्हारी बेटी तुम को देख कर भागती है ?"

राजा—"रानी, तुम्हें क्या हो गया है। जब देखो तुम बीना की ही शिकायत करती रहती हो। उठते-बैठते, चलते-फिरते उसी का दुखड़ा रोती रहती हो। वह अनाथ है, उसके माता नहीं है। तुम को बेली और बीना दोनों को एक दृष्टि से देखना चाहिये। तुम्हीं उसकी माता हो, तुम्हीं इस प्रकार रात-दिन छेड़-छाड़ करती रहोगी, तब तो उसका जीना कठिन है। मैंने लाखों बार तुम्हें समझाया कि छेड़ छाड़ छोड़ दो, पर तुम क्या मानती थोड़ा ही हो?"

रानी—"महाराज जी, मैं खोटे मन से तो कोई बात कहती नहीं हूँ। मैं तो सुधार की बात कहती हूँ (बेली की तरफ देखकर) क्यों बेली आज कुछ बीना कहती थी?"

बेली—"वह और तो कुछ नहीं कहती थी, हाँ यह अवश्य कहती थी कि बेली तुम लिखा-पढ़ा करो। विद्या स्त्रियों का भूषण है। झूठे आभूषणों पर मोहित मत होओ। लिखने-पढ़ने से बुद्धि आती है, चंचल लड़की अच्छी नहीं होती, इत्यादि।"

राजा—"देखो रानी, बीना कितनी अच्छी लड़की है? तुम झूठ-मूठ उसके पीछे पड़ी रहती हो।"

रानी—"असल बात यह है कि आप का मन मेरी तरफ से बिगड़ गया है। आप समझते हैं कि मैं उससे द्वेष रखती हूँ, इसी लिए हर समय मेरी बातों को आप उल्टी समझते रहते हैं। अच्छा आज से कुछ न कहूंगी।"

राजा—"अस्तु। जाने भी दो। इस समय मुझे एक और बात याद आ गई कि विजयसिंह, तेजसिंह, मानसिंह आदि ठाकुरों के यहां से बेली के विवाह का संदेश आया है।"

रानी—"आपने क्या उत्तर दिया?"

राजा—"मैंने गोल मोल उत्तर दे दिया।"

रानी—"नहीं, आप को स्पष्ट रूप से कहना चाहिये था कि

बेली का सम्बन्ध किसी बड़े राजकुमार से होगा।"

राजा—"कौतुकपुर का ठाकुर जालिमसिंह भी आया हुआ था; वह विवाह के लिये बहुत जोर देता था। उसने किसी से सुन लिया है कि बेली बड़ी सुन्दर है। बस, उसके मन में उस से विवाह करने की धुन समा गई है। ज़ालिमसिंह बड़ा चतुर; बांका और मन चला ठाकुर है।"

रानी—"यह सब ठीक है; मगर मैं किसी ऐसे-वैसे ठाकुर के साथ सम्बन्ध न होने दूंगी।"

राजा—"ज़ालिमसिंह का पुरोहित आया था। उसने भी बड़ी देर तक खुशामद की; परन्तु मैं बराबर इन्कार करता रहा।"

रानी—"ज़ालिमसिंह तो कुल का भी ऊंचा नहीं है। कन्या को अपने से नीचे कुल में कभी न देना चाहिए। कम-से-कम जाति का तो ऊंचा हो। ऐसे-वैसे के साथ सम्बन्ध करने से तो यह अच्छा है कि लड़की का गला घोंटकर उसे कुएँ में डाल दिया जाये।"

राजा—"बड़े आश्चर्य की बात है कि मैंने अपने पुरोहित को वर की तलाश में कितनी ही जगह भेजा; परन्तु वह योंही फिर-फिरा कर चला आया। कहीं उसको योग्य वर नहीं मिला। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं इन स्यानी कन्याओं के लिये क्या करूँ; कब तक इन्हें घर में बिठाए रक्खूं?"

रानी—"पुरोहित को फिर तलाश करने के लिए भेजो, जल्दी काहे की है। जब तक कोई अच्छे घर का राजकुमार न मिले तब तक सम्बन्ध नहीं करना चाहिये। ज़ालिमसिंह का विचार छोड़ दीजिये; उसको कहला भेजिये कि हम कई कारणों से सम्बन्ध नहीं कर सकते, चलो छुट्टी हुई। यदि वह भला मानस है तो फिर आप से आग्रह न करेगा।"

दोनों इस प्रकार बात-चीत करते जाते थे। टहलते-टहलते वे उसी दीवार के पास पहुंच गये जहाँ बीना ने लिख रक्खा था।

दैव योग से रानी की दृष्टि दीवार पर पड़ गई । देखते ही वह बोलीं—"अरे देखो, दीवार पर यह किसने क्या लिख दिया है। ऐसा तो मैंने पहले कभी नहीं देखा था ?"

राजा—"लिखने वाला मैं हूँ। कल रात को मैं नगर देखने गया था। एक कुम्हार को निद्रा में बेसुध देखकर मैंने उसके सुख का अनुभव किया और लौटते समय इस घटना को दीवार पर लिख दिया, कि जिससे जब कभी मैं इधर से निकलूं और इस दीवार पर मेरी दृष्टि पड़े, तो मुझे उस घटना की स्मृति हो जाये।"

रानी—"यह ठीक है परन्तु इसके नीचे क्या लिखा है तनिक देखिये तो सही। इसमें लिखा है कि लेखक निरा कुम्हार है।"

राजा—"रानी मैं नहीं कह सकता कि नीचे यह किसने लिखा है। यह मेरा लिखा हुआ नहीं हैं। जान पड़ता है किसी ने मुझ को चिढ़ाने के लिए यह लिख दिया है। ऐसा कौन ढीठ है जो मुझको चिढ़ाने का साहस करता है। बेटी बेली क्या तू बता सकती है कि यह किसने लिखा

बेली—"हाँ पिता जी ! मैं जानती हूं । इसे बहिन बीना ने लिखा है।"

राजा—"अच्छा ! यदि बीना ने लिखा है तो भूल से लिखा है। उस बेचारी को मालूम नहीं होगा।"

रानी—"मैं कुछ कहना नहीं चाहती थी, पर क्या करूं समय पर बोलना ही पड़ता है ? आप बीना के दोष को दबाते रहते हैं। जब देखो हमारी बीना, हमारी बीना करते रहते हैं। महाराज ! इतना लाड-प्यार भी अच्छा नहीं होता। अति हर-एक बात की बुरी होती है। यदि आज किसी अन्य व्यक्ति ने मेरे प्राण पति, आपको कुम्हार कहा होता तो मैं उसकी जीभ निकलवा लेती। परन्तु वह तुम्हारी बीना है, मुझ में दम मारने की शक्ति नहीं

है। महाराज, इस लाड़-प्यार का यह परिणाम होगा कि आज तो उसने आपको कुम्हार बनाया है, कल गंधार और परसों चमार बनायेगी। अच्छा बनो जो कुछ तुम को बनना हो।"

राजा की आकृति एक दम क्रोध में बदल गई। आंखें लाल हो गईं। वह बोला—"बच्चों के अधिक लाड़-प्यार का यही परिणाम होता है रानी, तू सच कहती है।"

रानी—"तुम सदा बीना के मुंह की ओर दृष्टि लगाये रहते हो, परन्तु वह तुमको कुछ भी नहीं समझती। उस के मन में आप के प्रति तनिक भी आदर-भाव नहीं। बात-बात में वह अपनी सखियों में आप को मूर्ख कहा करती थी, आज कुम्हार बना दिया। कहां राजा और कहाँ कुम्हार ? राजा हाथी पर चढ़ता है, कुम्हार गधे पर। राजा राजचक्र का स्वामी है, कुम्हार बर्तन बनाने के चाक का स्वामी है। अच्छी तुलना की। वाह री बीना ! तू मेरी लड़की न हुई, नहीं तो जो कर डालती सो थोड़ा था।"

बेली—"पिता जी ! यह आप को कुम्हार कहने वाली कौन है ? राम राम उसने तो जिह्वा खिंचाने का काम किया है।"

राजा—"अच्छा बीना है कहाँ ? मैं जरा उसे देखूं तो।"

बेली—"वह आपको देखते ही छू मन्तर हो गई। मैंने उस से कहा भी कि पिता जी आ रहे हैं। फिर उसने कहा, आने भी दो, मैं तो घर में रामायण पढ़ूंगी। मुझे किसी से मिलकर क्या लेना है ?"

राजा—"ठीक है, चोर की दाढ़ी में तिनका। तभी तो वह इस तरह जल्दी से महल भाग गई। राजा का क्रोध बढ़ता जाता था, रानी और बेली दोनों उसको उकसाती जाती थीं। बीना के विरुद्ध राजा के मन में भांति-भांति के विचार उत्पन्न होने लगे।

---

## ११

# धमलू माली

तिनका कबहुं न निन्दिये, जो पांवों तल होय।
उड़ कर आंखन में पड़े, पीर घनेरी होय॥

रायसिंह ने जालिम सिंह की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। उस मूर्ख की प्रार्थना को अस्वीकार करते समय रायसिंह ने यह भी कहा कि बेली का सम्बन्ध किसी राजकुमार के साथ किया जायेगा। नीच कुल में उसका सम्बन्ध करना हमें इष्ट नहीं है। जालिमसिंह को ये बातें बुरी लगीं और वह अपने गांव में आकर यह सोचने लगा कि किस प्रकार अभिमानी रायसिंह से बदला लिया जाए और उसका घमंड चूर किया जाये? दो-चार दिन विचार में लग गये। एक दिन बात उसकी समझ में आगई। वह कहने लगा, यदि मैं कौतुकपुर का ठाकुर हूं और मेरा नाम जालिमसिंह है, तो मैं इस अभिमानी और स्त्री के दास को ऐसा नांच नचाऊंगा कि वह जीते जी याद रक्खेगा। जिस बेली के विषय में वह यह कहता है कि किसी राजा के यहां ही उसका सम्बन्ध कराऊंगा, उस बेली का मैं किसी नीच-से-नीच आदमी के साथ विवाह करूंगा। अगर ऐसा न करूं तो मेरा नाम जालिमसिंह नहीं।

विजयसिंह उसका मित्र था। उसने उसको बुला कर कहा—"तुमने सुना है कि रायसिंह को बेली का विवाह किसी राजा यहाँ करने की सूझी है?"

विजयसिंह—"फिर?"

जालिमसिंह—"वह कहता है कि मैं नीच कुल में कन्या का विवाह न करूंगा।"

विजयसिंह—"फिर?"

जालिमसिंह—"इस से तो यही सिद्ध हुआ कि मैं नीच कुल का हूं।"

विजयसिंह—"फिर?"

जालिमसिंह—"तू भी बावला है फिर-फिर कर रहा है।"

विजयसिंह—"फिर?"

जालिमसिंह—"फिर तेरा सिर और रायसिंह की टिर।"

विजयसिंह—"कुछ मतलब की बात करो, यह तो मैं ने सब सुन लिया।"

जालिमसिंह—"मतलब की बात यह है कि अब इस राजा को नीचा दिखाना है। जिस तरह हो सके इसके घमंड को तोड़ दूं, तभी बात है।"

विजयसिंह—"वाह यार! तूने तो यह मेरे मन की बात कही है। मैं भी यही चाहता हूँ कि किसी प्रकार इसे नीचा दिखाया जाये। पर तू अकेला है, अकेली तो लकड़ी भी बन में नहीं जलती। एक से दो भले होते हैं। अतएव मैं तेरा साथी हूँ और जहां तक हो सकेगा मैं तेरी मदद करूंगा।"

जालिमसिंह—"क्या करना चाहिये?"

विजयसिंह—"पहले चलो, जरा ज्योतिषी से राय ले लें कि हमारा कारज सिद्ध होगा कि नहीं?"

जालिमसिंह—"बहुत ठीक।"

दोनों पंडित उजागर मल ज्योतिषी के यहां पहुँचे !

ज्योतिषी—"कहो, कैसे आये ?"

जालिमसिंह—"पंडित जी एक प्रश्न पूछने आये हैं। बताइये हमारा कारज सिद्ध होगा कि नहीं ?"

ज्योतिषी—"एक टका इस हाथ में, और एक टका उस हाथ में लो और तब प्रश्न करो, वैसे प्रश्न ठीक नहीं होता। दक्षिणा पहले और प्रश्न पीछे।"

जालिमसिंह—"लो महाराज टके हाजिर हैं।"

ज्योतिषी—"इसमें मीन मेख जरूर है। राहु-केतु आड़े पड़े हैं परन्तु चन्द्रमा बली है। शनीचर सहायक है मंगल दायें और सूरज बाऐं हैं। काम तुम्हारा फतह होगा, परन्तु कारज सिद्ध होने पर पांच ब्राह्मण जरूर जिमा देना।"

जालिमसिंह—"अजी पांच नहीं दस।"

ज्योतिषी—"प्रश्न कहता है कि किसी स्त्री से तुम्हारी आंख लड़ गई है। उसी का दांव-पेच खेलना चाहते हो ?"

जालिमसिंह—"सत्य बचन महाराज ! आपने ठीक कहा, पते की बात सुनाई।"

ज्योतिषी—"महाराज ! यदि ज्योतिष सच न होती तो लोग क्यों हमारे पास आते ? कोई यों ही अपने टके नहीं दे जाता। जान जाये पर टका न जाये। फिर आप के प्रश्न से यह भी विदित है कि स्त्री कोई ऊंचे घराने की है।"

जालिमसिंह—"निस्सन्देह।"

ज्योतिषी—"बीच में कुछ विघ्न पड़ गया' तुम्हारा अपमान भी हुआ। तुम उस अपमान का बदला लेना चाहते हो ?"

जालमिसिंह—"सत्य बचन, परन्तु यह तो बताइये कि ये सब बातें आप को कैसे मालूम हो जाती हैं ?"

ज्योतिषी—'जाओ जिजमान इन बातों को पूछकर क्या लोगे।

तुम्हारी जय होगी और तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे। फिर हमारी भी कुछ सुधि लेना।"

जालिमसिंह—"हां महाराज! यह तो बता दीजिये कि कारज की सिद्धि में क्या यत्न किया जाए?"

ज्योतिषी—"मेख, मीन, मिथुन, कन्या, कर्क, तुला। ठाकुर विद्या तो यह कहती है कि अनाड़ी के द्वारा यह कारजसिद्ध होगा। आप सहायक रहें और अनाड़ी से काम लें। ज्योतिष का सिद्धान्त है कि सांप के बिल में हाथ न डालना चाहिये, किसी अनाड़ी के हाथ से उसको पकड़वाना चाहिये। बस, अब जिजमान जाईये?"

विजयसिंह और ज़ालिमसिंह ने ब्राह्मण को प्रणाम किया, उसने आशीर्वाद दिया। दोनों वहाँ से चलते हुए मार्ग में विचार करते जाते हैं कि ज्योतिषी ने बात तो ठीक-ठीक कही है। अब काम अवश्य होना चाहिये और वह होकर रहेगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। बच्चा रायसिंह, ऐसा खेल खिलाऊं कि जीते जी याद रक्खे।"

दोनों हंसते-कूदते हुए चले आ रहे थे। रास्ते में देखते क्या हैं कि एक मूख आदमी बड़बड़ाता हुआ चला आ रहा है। दोनों उसे देख कर हंस पड़े और कहने लगे—"कि अरे पागल तू कौन है?"

धमलू-"तुम नहीं जानते मैं कोन हूं? मैं धमलू हूं और जाति का माली हूं। मेरा जी चाहता है कि राजकुमारी बेली के साथ व्याह करूं परन्तु कोई उपाय सूझ नहीं पड़ता। रानी की एक सहेली है जिसका नाम शान्ता है, उससे मैंने अपने मन की बात कही। वह जानती है कि मैं उस पर रीझ गया हूं। अहा, हा हा। धमलू पर स्त्रियाँ जान देती हैं, पर धमलू कब किसी की सुनने वाला है। वह तो बेली पर मोहित है, बेली ही उस की

जान है। देखूं कैसे हाथ आती है ? या तो जीऊंगा या उसको ले मरूंगा। अहा. हा हा।"

ज़ालिमसिंह और विजयसिंह दोनों मुस्कराये और अपने मन में कहने लगे कि यह आदमी तो अच्छा मालूम होता है, कौन जाने हमारे काम का हो ? उन्होंने धमलू से पूछा कि "तू सच्चा है या झूठा ?"

धमलू—"सच्चा।"

ज़ालिमसिंह—" मर्द है या नामर्द ?"

धमलू–"मर्द।"

ज़ालिमसिंह–"फिर तो विवाह बेली से हो जायेगा।"

धमलू—"हाँ, हाँ बताओ किस तरह ?"

ज़ालिमसिंह—"अजी काम करने के हजारों ढंग हैं, एक-दो तो नहीं। एक-दो हों तो तुझे बताऊं भी।"

धमलू—"बताओ, बताओ, जल्दी करो। जो कुछ बताओगे वही करूंगा। किसी तरह बेली मुझ को मिल जाये। अहा हा, हा।"

जालिमसिंह–"सुन, उतावला सो बावला। कहीं जल्दी में कोई काम हुआ है कि तेरा भी हो जायेगा ? हां, यदि तू हमारी माने और हमारी सुने, तो हम एक-दो नहीं सैकड़ों उपाय बतलायेंगे। तेरा काम कराकर छोड़ेंगे।"

धमलू—"मैं भी यही चाहता हूँ, पर इतना खटका है कि मैं जाति का माली हूं। माली अधम जाति है। कौन जाने राजकुमारी मुझे देखकर नाक भौं न सिकोड़ने लगे ?"

ज़ालिमसिंह–'ऐसा नहीं हो सकता, मैं बड़े-बड़े उपाय जानता हूँ। जल्दी आम का फल नहीं पकता, सब काम में देर लगती है। यदि तू हमारी माने तो तेरा काम करा देंगे।"

धमलू—"वही तो कहता हूं कि बताइये। कहो चूल्हे में सिर

दे दूं, जो कुछ कहो सब करने को तैयार हूँ, पर आप बताइये तो सही ?"

ज़ालिमसिंह–"सुन किसी से कहना नहीं। कहने की बात नहीं है। हमारे साथ चल, हम तुझे खूब खिलायेंगे। जब तू मोटा-ताजा हो जायेगा, तो हम तुझे अच्छे-अच्छे कपड़े और ज़ेवर पहिना कर जोधपुर का राजकुमार प्रसिद्ध करेंगे और लाव लश्कर साथ रहेगा। हम सब लोग तेरी अर्दली में चलेंगे। जब बेली का बाप रायसिंह सुनेगा तो वह तुझ से मिलने आयेगा, उसी समय व्याह की बात-चीत हो जायेगी। पर तू किसी से कुछ बोलना नहीं। जो कुछ हम कहें उतना ही कहना, नहीं तो तेरी बात-चीत सुनकर अगर राजा भाँप गये तो फिर सारी कलई खुल जायेगी। किया-कराया सब एक तरफ धरा रह जायेगा। तुझे हमारी राय पर चलना होगा। बता तुझे स्वीकार है या नहीं ?"

धमलू—"हां साहब, स्वीकार। लाख बार स्वीकार है। बेली को व्याहूंगा, अपना भाग्य सराहूंगा। तुम्हारा यश-मनाऊंगा, दिन-प्रति-दिन गुन गाऊंगा। मैं राजा, चलिये मैं आपके साथ हूँ। मेरा काम होगा, आप का नाम होगा। पर कहीं वह मुझे पहिचान न लें ?'

जालिमसिंह—"इसका प्रबन्ध हम कर लेंगे, परन्तु तू हमें यह बता दे कि क्या वह तुझे पहिचानती है या नहीं ?"

धमलू—"हां कुछ कुछ तो पहिचानती है, परन्तु इसकी कोई परवाह नहीं। मैं उससे निपट लूंगा, आप घबराएं नहीं।"

इस बात-चीत के बाद जालिमसिंह और विजयसिंह धमलू को कौतुकपुर ले गए और वहां पहुँच कर उसका बनाव शृंगार करने लगे।

———

# १२

# पिता-पुत्री

क्रोध न कीजिये साधुवा, क्रोध भरम की आग ,
क्रोध अग्नि तनमें लगी, जाले पुन्य और भाग ॥

रायसिंह घर में आया तो क्रोध से भरा हुआ था। उसके होंठ कांप रहे थे, हाथ-पांव थर्थराते थे। इसी दशा में उसने बीना को बुलवाया।

राजा–"बीना बंगले की दीवार पर मैंने कुछ लिखा था, तू जानती है कि उसका उत्तर किसने दिया है ?"

बीना–"महाराज ! वह तो मैंने लिखा था।"

राजा–"तू ने क्या लिखा था ?"

बीना-"आप तो उसको पढ़ ही चुके हैं मुझसे क्या पूछते हैं ?"

राजा–"फिर भी मैं तेरे मुंह से सुनना चाहता हूं।"

बीना–"उस में लिखा हुआ था कि कुम्हार की नींद सुख की नींद है, उस की नींद की प्रशंसा की गई थी।"

राजा—"फिर?"

बीना—"मैंने उसके नीचे यह लिख दिया कि जिस के घर में सुशीला और पतिव्रता स्त्री होती है उसको सुख की नींद आती है।"

राजा-"क्या तेरी समझमें कुम्हार सुख की नींद नहीं सोता ?'

बीना—"निःसंदेह, जो मनुष्य सवेरे से उठ कर मिट्टी खोदता है। उसको गूंदता है, बर्तन बनाता है, पजावा लगाता है, बर्तन बना कर नगर में बेचता है, लोग उसको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उसको भला सुख क्या मिलेगा और वह क्या सुख की नींद सोयेगा ?"

राजा—"पर उसको राज-काज की तो कोई चिन्ता नहीं। साधारण काम काज किया और खा-पी कर शांति के साथ सो रहा।"

बीना-"चिन्ता क्यों नहीं है। सवेरे से लेकर शाम तक वह गदहे की तरह दुःखों के भार से लदा रहता है। स्थूल काम करता है। बर्तनों के बेचने की चिंता रहती है। यदि बर्तन न बिकें तो चिंता, टूट-फूट जायें तो चिंता, अच्छी तरह न पकें तो चिंता, अच्छे दाम न उठें तो चिंता। चिंता-ही-चिंता है। मैं नहीं समझ सकती कि ऐसे मनुष्य को क्या सुख मिल सकता है ?"

राजा-"तेरी समझ में कौन सुखी है ?"

बीना-"एक तो सुखी मूर्ख ! अज्ञानी, जिसको लोकपरलोक की चिंता नहीं है। दूसरा सुखी है बालक, जिसको लेने-देने की चिंतना नहीं है और सुख-दुःख का ज्ञान नहीं है। तीसरे सुखी हैं ज्ञानी, जो संसार को असार और नाशवान समझता है। चौथे सुखी है वह मनुष्य, जिसके घर में सुशीला और पति-व्रता स्त्री है।"

रानी-"क्यों बेटी ! हम सब स्त्रियां मूर्खा और फूहड़ हैं ?"

बीना-"माताजी ! मैं आप को कुछ नहीं कहती। यह एक साधारण सी बात है। जो स्त्रियाँ अच्छी हैं वे घर को स्वर्गधाम बनाए रखती है। उन से पति को संसार में बैकुंठ का सुख मिलता है। जो अच्छी नहीं हैं वे उसके लिए संसार को नरक का सागर बना देती हैं।"

राजा—"मूर्ख लड़की ! तू अपने को बड़ा योग्य समझती है। तेरी योग्यता तो इसी से प्रगट है कि तू अपने पिता को कुम्हार बनाती है।"

बीना—"पिताजी ! क्षमा कीजियेगा। यदि मुझे यह ज्ञात होता कि इसके लिखने वाले आप हैं तो मैं कदापि न लिखती। लिखे हुए को पढ़ कर जो मेरे मन में आया, मैंने स्वतन्त्रता से उस पर लिख दिया। इस से आपको प्रसन्न होना चाहिये, न कि रुष्ट।"

रानी—(राजा की ओर देखकर) "सुनते हो जी ! देखो तुम को कुम्हार बना दिया। यह तुम्हारी प्यारी लड़की है और कुम्हार बना कर तुम से कहती है कि तुम को प्रसन्न होना चाहिये। क्या तुम कुम्हार बनकर प्रसन्न होंगे ? मैंने तो ऐसी बात न कानों सुनी है और न आंखों देखी है ? यदि कोई दूसरा राजा को कुम्हार बनाता तो मैं उसकी जीभ निकलवा लेती।"

बीना—"दूसरा लिखे या तीसरा, इसमें रुष्ट होने की बात नहीं है। न्याय करना चाहिए, बात सच्ची है। सच्ची बात उन्हें बुरी लगती है जो न्याय प्रिय नहीं हैं।"

राजा—"तू इसको सच्ची बात कहती है ?"

बीना—"हां, मैं इसको सच्ची बात कहती हूं।"

राजा—"तो क्या मैं सचमुच कुम्हार ही हूं ?"

बीना—"मेरा यह अभिप्राय नहीं है।"

राजा—"अभागी लड़की तू जानती है, मैं कौन हूं ?"

बीना—"हाँ महाराज ! मैं जानती हूँ, आप अपनी प्रजा के राजा हैं, मेरे पिता और पूज्य हैं ?"

राजा—"क्या तुझको इतनी समझ है ?"

बीना—"हाँ ! मैं समझती हूं।"

राजा—"क्या तुझको मालूम है कि इस समय मैं जो चाहूँ

तेरे साथ कर सकता हूँ ?"

बीना—"मेरा सिर आपके चरणों पर है जो मन में आये सो कीजिये, मुझे कोई आशंका नहीं ! जो मेरे भाग्य में बदा है वह अमिट है, होकर रहेगा। इसीलिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है। मेरे भाग्य का तो उसी समय निर्णय हो गया था जब मेरी माता मर गई थी। इस पर भी मैं जानती हूं कि दुःख-सुख कोई वस्तु नहीं है। जब अभिमानी रावण की लंका राख हो गई, दुर्योधन योद्धा ने भारत का नाश कर दिया, बड़े-बड़े प्रतापी राजा, महाराजा और ऋषि-मुनि तक दुःख से मुक्त नहीं हुए, तो फिर भला मैं क्या हूं और आप जैसे राजा इस सृष्टि में क्या हैं ? कभी मिट्टी धूल बनकर आकाश पर चढ़ती है, कभी बादल के पानी के बोझ से नीचे गिरकर लोगों के पांव से रौंदी जाती है। पिताजी ! मेरी भूल को क्षमा कीजिये और यदि क्षमा नहीं कर सकते तो मन में आवे सो दण्ड दीजिये। जो सच्ची बात थी वह मैंने निवेदन कर दी।"

राजा—"अभागी लड़की ! मुझे आशा नहीं थी कि तू ऐसी निर्लज्ज होकर मुझ से बात करेगी। मैं तेरे ऊपर दया करता था, तुझको प्यार करता था, उसका बदला तूने यह दिया। तूने मेरी कृपाओं का तनिक भी आभार नहीं माना।"

बीना—"मैं आपकी कृपा का हृदय से आभार मानती हूं, परन्तु आप भूले हुए हैं। मनुष्य उस समय मनुष्य पर कृपा करता है जब ईश्वर उस पर कृपा करता है। यदि ईश्वर की कृपा नहीं है तो दुनिया की कभी कृपा नहीं होती। प्राणी अपने कर्म से उत्पन्न होते हैं, अपना कर्म साथ लाते हैं, अपना कर्म भोगते हैं। माता-पिता ईश्वर की ओर से यन्त्र स्वरूप काम करते हैं। देखिये माता ने मुझ को जन्म दिया, अब वह छोड़ गई। जन्म की साथी थी, कर्म की साथी नहीं थी। बनाने, बिगाड़ने वाला

केवल ईश्वर है।"

रानी—"लो जी सुनो, तुम्हारी कृपा कुछ नहीं हैं। मैंने तो यह समझा था कि मैं निर्धन के घर से आई थी। आपकी कृपा से इस पदवी को पहुंची। परन्तु अब जाकर पता लगा कि क्या बात है ?"

बीना—"यह आप का प्रारब्ध था जो आप को इस घर में लाया।"

राजा—"अभागिनी ! मन्द-भागिनी ! यदि मैं रायसिंह हूं तो तुझको टुकड़े-टुकड़े की भिखारिन बनाकर छोड़ूँगा। तेरा भाग्य मेरे हाथ में है।"

बीना—"पिताजी मैं आप से क्या निवेदन करूँ ? संसार में रोटी देने वाला कोई और ही है। वह पत्थर के अन्दर रहने वाले कीड़ों को भी आहार देता है। थैली के अन्दर रेशम के कीड़े को चारा देता है। उसने चींटियों को अनाज इकट्ठा करने की बुद्धि दी है। उसी ने मधुमक्खियों को चूस-चूस कर रस इकट्ठा करने की समझ दी है। सबका भाग्य सबके साथ है। न कोई किसी का दाता है और न कोई किसी का विधाता है। दुनिया में कोई किसी के आश्रय नहीं बनाया गया।"

बेली—"दुनिया में दो राजा हैं। एक भूपति, दूसरा इन्द्र।"

रायसिंह—"बीना, तूने सुना ! बेली क्या कहती है ?"

बीना—"हां महाराज ! सुनती हूँ। उसकी बातों में छल-कपट छिपा हुआ है।"

बेली—"नहीं, नहीं। हमारा कल्याण तो राजा के हाथ में है। राजा चाहे तो हमें जीवित रक्खे और चाहे तो मार दे। यह हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि उससे आंख बन्द करना मूर्खता है।"

रानी—"जब किसी निर्धन के साथ विवाह किया जायेगा तब लड़कियों को पता लगेगा कि कौन सी बात सच्ची है।"

बीना—"सब व्यर्थ की बातें हैं। ईश्वर जो चाहता है करता है। ईश्वर के काम में किसी को हस्ताक्षेप करने का अधिकार नहीं है।"

रानी—"चल, चल, तुझे देख लिया। जब तू अपने पिता को कुम्हार बनाती है तब और तुझ से क्या आशा की जाए। देख, मेरी बेली कैसी मीठी बातें करती है, जिनको सुनकर चित्त प्रसन्न हो जाता है।लड़कियों को ऐसी मुंह फट नहीं होना चाहिये। तेरी बात मेरे हृदय में तीर की भांति चुभती है।"

राजा—"अभागिनी! मैं चुप हूं, तू क्यों इतना बांसों चढ़ी जा रही है?"

बीना—"पिता जी! इस समय आप मेरी नहीं सुनेंगे। इस समय आपको मेरी माता ने चंग पर चढ़ा रक्खा है। आप उसके कहने में हैं। यदि मैं सच भी कहूँगी तो भी आप उसको झूठ समझेंगे।"

रानी—'बीना! मुझको क्यों तू व्यर्थ में दोष देती है?"

बीना—"माता जी! बात केवल इतनी है कि मैंने कहा था जिसके घर अच्छा स्त्री होती है वह सुख से शयन करता है, इस में मेरी क्या भूल है। आप लोगों ने तो बात का बतंगड़ बना दिया और मुझ अबला कन्या को ही दोष देने लगे। हाय! संसार से न्याय की आशा करना भूल है।"

राजा—"अच्छा बीना! तेरा विवाह एक कंगाल के साथ करूंगा! देखूं तो तू कैसे उसको सुख की नींद सोने वाला बनाती है?"

बीना—"पिता जी! कंगाल तो कंगाल। यदि मेरे भाग्य में मूर्ख, रोगी, कोढ़ी पति भी मिलना बदा है तो अवश्य मिलेगा और उसको अपना सिरताज बनाऊंगी। और उसकी सेवा शुश्रूषा करूंगी। जो विधाता ने ललाट में लिख दिया है, वह

अवश्य होकर रहेगा ?"

जिस समय राजा, रानी और राजकुमारियां इस वाद-विवाद में लगी हुई थीं, उसी समय राज मन्त्री ने अपने आने की सूचना दी। राजा ने उसको भीतर बुला लिया और पूछा क्या बात है ?

मंत्री—"महाराज ! आपके राज्य में जोधपुर का राजकुमार घर से रुष्ट होकर आया है। जालिम सिंह और विजय सिंह उसके साथ हैं। मैं केवल सूचना देने के लिए आपके पास आया हूँ।"

राजा—"यदि जोधपुर का राजकुमार हमारे राज्य में आया है तो उसका आना शुभ हो, तुम उसे बाहर के बगीचे में उतारो और पूरे तौर से उसकी आवभगत करो। देखो किसी प्रकार का उसे कष्ट न होने पावे, मैं अभी रानी को साथ लेकर उससे मिलने आऊंगा।" इतना कह कर राजा चला गया।

रानी—"प्राणनाथ ! जोधपुर का राजकुमार घर से रुष्ट होकर क्यों आया है ?"

राजा"राज काज के विषय में इस प्रकार की बातें होती ही रहती हैं यह कोई नई बात नहीं है। यह तुम्हारा सौभाग्य है कि घर बैठे गंगा आ गई। अगर कहीं बेली के साथ उसका विवाह हो जाए तो फिर क्या कहना है। अभी मैं बीना को दिखा दूं कि किस प्रकार मैं लड़की को सुखी कर सकता हूं। (बीना की ओर देख कर) बीना मेरा बिचार है कि बेली जोधपुर के राजकुमार के साथ ब्याही जावे और सुख भोगे, तेरी क्या इच्छा है ?"

बीना—"पिता जी मेरी इच्छा को आप क्या पूछते हैं, मैंने तो पहले ही आप से निवेदन कर दिया है कि जो कुछ मेरे भाग्य में बदा है वही होगा। मेरी इच्छा करने से क्या होता है ? जो कुछ मेरे कर्मों का फल है वह मुझे मिले, मैं इसी में सन्तुष्ट हूं। ईश्वर की इच्छा पूर्ण हो। मैं समझती हूँ कि न कोई मेरा बनाने

वाला है और न कोई बिगाड़ने वाला है।"

राजा—"दुष्ट लड़की ! तेरा भाग्य ही ये बातें तेरे मुख से निकलवा रहा है। मैं भी चाहता हूँ कि तू दुखी रहे और संसार से रोती हुई हीं विदा हो। जो तो चाहता है कि खड्ग से तेरा सिर काट कर अलग रख दूं। इस प्रकार किसी ने भी मेरे सामने आज तक ढिठाई नहीं की थी।"

बीना—"महाराज ! मेरा सिर मौजूद है, मेरे मारने से यदि आपको प्रसन्नता होती है तो अभी मुझको मार दीजिए। मैं क्या करूं, जब आप मुझसे कोई प्रश्न करते हैं तो मैं उत्तर देती हूँ, इस पर आप रुष्ट होते हैं। यदि चुप रहती हूँ तो भी आप की क्रोधाग्नि के प्रज्वलित होने का भय है। मुझको झूठी प्रशंसा करनी नहीं आती और न मुझको झूठ बोलने की आदत ही है। आप का जो जी चाहे सो कीजिए।"

राजा—"ठीक है, तेरा विवाह किसी कंगाल से किए देता हूं। महल में सुखी थी, सुख से रहती थी, इसकी तेरे मन में कुछ भी कदर नहीं है। अब जब बुरे दिन आयेंगे तब तुझे पता लगेगा।"

बीना—"पिता जी ! आप राजा हैं, कुछ ईश्वर का भी भय जानिये। सुख-दुख देने वाला केवल परमात्मा है, आप व्यर्थ में ये बातें कर के अपयश ले रहे हैं। अभिमान करना अच्छा नहीं होता।"

राजा—"ठीक है। अच्छा, समय आने पर इन सब बातों का अनुभव हो जायेगा।"

यह कह कर राजा रानी बेली को साथ लेकर जोधपुर के कुमार से मिलने चले गये। दुखित अबला बीना भी पश्चाताप करती हुई अपने कमरे में चली गई और एकान्त में बैठकर इन बातों पर विचार करने लगी।

# १३

# बनावटी राजकुमार

कर्म चाल अति प्रबल है, सके न कोई टार।
अपनी सी सब कर रहे, दुख पावे संसार॥

नगरी के बाहर डेरा पड़ा हुआ है। उसके अन्दर बहुमूल्य फर्श बिछा हुआ है और उस पर सोने चांदी की कुर्सियाँ बिछी हुई हैं। सबसे ऊंची कुर्सी पर जोधपुर का बनावटी राजकुमार बैठा हुआ है। दाएं-बाएं जालिमसिंह और विजयसिंह खड़े हैं। किसी को अन्दर आने का हुक्म नहीं है। राजकुमार बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहने हुए है। उसके हाथ में एक सुन्दर तलवार है। जालिमसिंह और बिजयसिंह बारी-बारी से उसको समझा रहे हैं।

जालिमसिंह—"देख धमलू। कहीं पागलपने की बातें न करना, भारी-भरकम बने बैठे रहना। बातें जितनी हों, जंची तुली हों। अधिक बातें करेगा तो भांडा फूट जायेगा और लेने के देने पड़ जायेंगे। हमारे पास लड़ने-भिड़ने के लिए काफी सेना भी नहीं हैं।"

धमलू—"ठाकुरो! आप किसी बात की चिंता न करो। देखते रहो मैं किस तरह काम करता हूं। जरा राजा-रानी को आ जाने दो, फिर मेरी योग्यता देखना। आप दोनों आदमी इसी प्रकार

मेरे दाएं-बाएं खड़े रहना। यदि मुझसे भूल चूक हो जाया करे तो इशारा कर दिया करो, मैं समझ जाया करूंगा।"

जालिमसिंह—"रानी बेली को साथ लिये हुए आवेगी और उनके पीछे राजा होंगे।"

धमलू—"आने दो, कोई चिंता नहीं।"

इतने में एक नौकर ने आकर खबर दी कि राजा साहब अकेले आते हैं, रानी और राजकुमारी अभी महल से बाहर नहीं निकलीं। इतने में रायसिंह आ पहुंचे। उनके लिए राजकुमार के सामने कुर्सी रखवा दी गई। राजा ने नियमानुसार राजकुमार को प्रणाम किया और कुशल क्षेम पूछी।

राजकुमार—"आपकी कृपा से सब प्रकार से कुशल है।"

राजा—"धन्य हूं मैं, जो कि आप मेरे राज्य में पधारे।"

राजकुमार—"धन्य हूं मैं भी, जो इस प्रकार मुझे आपके राज्य में आने का अवसर मिला।"

राजा—मैंने सुना है कि आप में और आपके पिता जी में कुछ अनबन हो गई है ?"

राजकुमार—"यह बात ठीक है परन्तु इस प्रकार की बातें दुनिया में होती ही रहती हैं। मुझे जोधपुर से निकले हुए बहुत दिन हो गये हैं, अब तक मैं यों ही इधर-उधर घूमता-फिरता रहा। मैंने सुना है कि मेरे पिता महाराजा जोधानाथ को मेरे चले आने का बड़ा दुःख है। उन्होंने कितनी ही बार मुझे लौट आने के लिए लिखा, अब मेरा विचार है कि इधर-उधर सैर करके फिर जोधपुर चला जाऊंगा।"

जालिमसिंह—"कृपानाथ ! राजकुमार तो कभी के जोधपुर चले गये होते, मैंने और ठाकुर विजयसिंह ने ही जबरदस्ती इन्हें रोक रखा है। आपने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है और एक सप्ताह तक ठहरने का बचन दिया है। हमारा अहो

भाग्य है कि हमें जोधपुर के राजकुमार की सेवा और संगति का अवसर मिला।"

राजा—"ठाकुरो! मैं आपका हृदय से आभारी हूँ कि आप लोगों की कृपा से मुझको भी राजकुमार के दर्शन मिल गये।"

जालिमसिंह—"मैंने सुना कि राजकुमार मेरी रियासत में से होकर निकले हैं। मैंने तत्काल सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम किया। राजकुमार ने मुझ पर कृपा की कि मेरा अतिथि होना स्वीकार किया और मेरे सम्मान को बढ़ाया। मेरा भी विचार राजकुमार के साथ जोधपुर जाने का है।"

राजा—"अब आप कम से कम एक सप्ताह तक तो मेरे गृह को सुशोभित कीजिये?"

राजकुमार—"राजा साहब, मैंने जालिमसिंह को केवल एक सप्ताह का वचन दिया था, उस में भी दो-एक दिन बीत चुके हैं। अच्छा, जब आप की यही इच्छा है तो मुझे कोई इन्कार नहीं है।"

राजा—"मैं तन मन से आप का आभार मानता हूं। मुझ से जो कुछ भी हो सकेगा आप का सत्कार करूंगा। भला राजकुमार यह तो बताइये कि जोधपुर में कितनी सेना है, कितने बन्दूकची हैं, कितने सवार और कितने पियादे हैं? मैंने सुना है कि महाराजा जोधानाथ आजकल अपनी सेना के ठीक करने में लगे हुए हैं?"

राजकुमार—"राजा साहब! मैं राजकुमार न हुआ बनिये का लड़का हुआ, जो सेना की संख्या और आय-व्यय का हिसाब अपने पास रखूं। आप बड़े हैं, क्षमा कीजियेगा। यद्यपि मैं रुष्ट होकर घर से निकला हूं, पर राज द्रोही तो हूँ नहीं, कि उसके गुप्त भेदों को दूसरों पर प्रकट करूं।"

जालिमसिंह—"वास्तव में राजा साहब हिसाब तो हिसाब

वालों के पास रहता है, राजकुमार को इन सब बातों से क्या मतलब है ?"

राजा—"ठाकुर साहब ! मुझको ही सीधे राजकुमार से बातें करने दीजिये।" राजा ने सोचा कि जोधपुर बहुत बड़ा राज्य है, वास्तव में उसकी सेना का क्या पता है ?

राजा—"ठाकुर जालिमसिंह जी ! मैं इस समय किसी कार्य-वश महलों में जा रहा हूं। मेरे प्रधान यहां मौजूद हैं, जो कुछ काम हो उनसे कह दीजियेगा।"

जालिमसिंह—"बहुत अच्छा कृपानाथ ! यदि प्रधान जी यहां न भी होते तो मैं तो था ?"

राजा—"मैं बहुत जल्दी आऊँगा।"

राजा महल में चला गया। डेरे के चारों तरफ पहरा बैठा दिया गया कि कोई बिना आज्ञा के अन्दर न आने पावे। जब अच्छी तरह से चौकसी हो गई तो यार लोग हँसने लगे। खूब उल्लू को सीधा किया, बच्चू को खबर भी न हुई कि यह असली राजकुमार है या बनावटी। राजा बड़ा मूर्ख है। उसे इतनी भी खबर नहीं कि जोधानाथ के कोई लड़का ही नहीं है।"

धमलू—"क्यों ठाकुरो ! कैसा रौब गाँठा।"

विजयसिंह—"धन्य है तेरी चतुराई को, परन्तु यह राजा तो मूर्ख है। इसकी रानी और राजकुमारी और हैं, इसी तरह उन से भी निपट लो, तब काम बने।"

धमलू—"कोई चिंता नहीं, देखो कैसे भर्रे देता हूं कि बच्चू के होश ठिकाने आ जायें।"

जालिमसिंह—"अरे यार ! अधिक बातें मत बना, रानी बड़ी चतुर है। यदि उस पर तेरा जादू चल जाये तब बात है ?"

धमलू—"देखो उस को भी कैसा चंग पर चढ़ाता हूं। उसकी आँखों में भी धूल न डाल दूँ तो मैं धमलू माली नहीं।"

इतने में दरबान ने आ कर समाचार दिया कि रानी आ रही है और उसके साथ राजकुमारी भी है।

जालिमसिंह—"देख धमलू! जरा संभल कर रहना। अगर कहीं काम बिगड़ा तो बच्चा ऐसे पिटोगे कि छटी का दूध याद आ जाएगा।'

धमलू—"कोई चिंता मत करो।"

इतने में रानी राजकुमारी के साथ हँसती और मुस्कराती हुई डेरे में आई। राजकुमार उसके स्वागत के लिये खड़ा हो गया और कुशल क्षेम के बाद जब रानी और राजकुमारी कुर्सियों पर बैठ गईं, तब राजकुमार भी अपनी जगह पर बैठ गया।

रानी ने मुस्कराकर कहा—"राजकुमार आप के आने से हम को और हमारी प्रजा को बड़ा आनन्द हुआ है। आपने अपने चरण कमल से इस भूमि को पवित्र किया है।" और बनावटी राजकुमार ने सोचा कि यह स्त्री वास्तव में बड़ी चतुर है, राजा तो मूर्ख था। उस ने आते ही जोधपुर का हिसाब-किताब माँगना शुरू किया था, परन्तु यह बड़ी योग्यता से बात-चीत कर रही है। वह बोला—"रानी साहिबा! जितनी आप देखने में सुन्दर हैं, उतना ही आप का मन भी सुन्दर है। आप के दर्शन कर के मैं पवित्र हो गया, मेरा मन पवित्र हो गया, मेरे नेत्र पवित्र हो गये, साथ ही आप के साथ बात-चीत करने से मेरी जिह्वा भी पवित्र हो गई।"

रानी मन में बड़ी प्रसन्न हुई।

बेली—"राजकुमार आप सूर्य वंश के सूर्य हैं। जिस प्रकार आकाश में सूर्य प्रकाशमान होता है वैसे ही आप संसार में प्रकाशमान हैं।"

राजकुमार—"राजकुमारी! हमारे पूर्वजोंने बड़े बाग़ बनवाए परन्तु तेरे जैसी चम्पा बदनी, कमल नयनी, कोकिल बयनी,

किसी ने भी न देखी, जैसी कि मैं आज अपने नेत्रों से देख रहा हूं।"

जालिमसिंह डरा कि कहीं बाग़ के सम्बन्ध में यह अपने मालीपन को प्रकट न कर दे और भाँडा फूट जाए। उस ने आँखों से इशारा किया, धमलू भी समझ गया और सम्भल कर बैठ गया।

राजकुमार—"रानी साहिबा! खेद है कि आप जोधपुर कभी नहीं गईं, यदि आप वहाँ का शाही बाग़ देखती तो बड़ी प्रसन्न होतीं।"

रानी—"आपकी बातोंसे ही उसकी शोभा का पता लगता है।"

राजकुमार—"यदि आप वहाँ होतीं तो मैं अच्छे-अच्छे मोतियों के हार और बेला के गजरे आपकी भेंट करता। खेद है कि यहाँ कुछ नहीं है केवल यह मोतियों का हार·····।"

जालिमसिंह ने धमलू को हाथ से इशारा किया। रानी समझ गई कि जालिमसिंह का हृदय संकीर्ण है। उसको हार नहीं देने देता, हार बहुमूल्य है।

रानी—(हंसकर) "राजकुमार मैं आप से बहुत प्रसन्न हुई, आप चित्त के बड़े उदार हैं।"

राजकुमार हंसने लगा और बोला—"रानी साहिबा! सच बात यह है कि ठाकुरजी अच्छे हैं, नहीं तो आपका जितना सम्मान किया जाए थोड़ा है। आप जब बोलती हैं तो मुंह से फूल झड़ते हैं। जिस समय आपके होंठ खुलते हैं, तो जान पड़ता है कि कलियाँ चटक रही हैं। मुंह से मोगरे की सुगन्धि आती है।"

मधुर मनोहर बैन, लागें पुष्प समान।
हिय जिय को तृप्ति करैं, जैसे अमृत पान॥

बेली—'यह दोहा बहुत अच्छा है। मेरे यहां एक माली का

छोकरा आता था, उसका नाम धमलू था। मेरी सहेली शांता उसका बड़ा बखान किया करती थी। यह दोहा उसकी ही जिह्वा पर रहा करता था।"

राजकुमार—"कौन धमलू माली ? यदि कोई चतुर मनुष्य हो तो मैं उसे अपने साथ जोध पुर ले जाऊं ?"

जालिमसिंह मन में डरता था कि कहीं बात-बात में यह खुल न पड़े। वैसे आंखों के इशारे से डांटता भी रहता था। इतने में दरबान ने आकर खबर दी कि राजा साहब आ रहे हैं।

राजकुमार—"आने दो, उनके लिये दूसरी कुर्सी लाओ।"

राजा आया और आकर बैठ गया। रानी "(राजा को सम्बोधित कर के) प्राणनाथ "राजकुमार बड़े चतुर और उदार-चित हैं।"

राजा—"क्यों न हो, सिंह के बच्चे सिंह ही होते हैं। बांस की कोठी में बांस ही पैदा होते हैं। उदारचित होने के अतिरिक्त आप बड़े वीर और साहसी भी हैं।"

राजकुमार—"वाह राजा साहब. वाह ! आपने बड़े पते की कही। निःसंदेह आप ठीक अनुमान करते हैं।"

राजा—"क्यों ठाकुर जालिमसिंह, । मेरी इच्छा होती है कि मैं अपनी कन्या बेली का राजकुमार के साथ सम्बन्ध कर दूं?"

जालिमसिंह—"बात तो अच्छी है। आप का पहले भी ऐसा ही विचार था कि राजकुमारी का विवाह किसी ऊंचे घराने में करना चाहिये; जोधपुर से बड़ा घराना कौन होगा। मगर मैं नहीं कह सकता कि राजकुमार को यह सम्बन्ध पसन्द भी है या नहीं ?"

राजा—"बेटी ! तेरी बहिन बीना तुझको पूछ रही थी, यदि तू चाहे तो महल में जाकर उसको राजकुमार के आने की सूचना दे दे।"

बेली—"बहुत अच्छा महाराज। और उठ कर राजकुमार से

आज्ञा लेकर महल में चली गई।

राजा—"क्यों राजकुमार! आप को यह सम्बन्ध स्वीकार है ना?"

राजकुमार—"महाराज! यह ऐसा विषय है कि पिता जी की आज्ञा के बिना इस में मैं कोई राय नहीं दे सकता।"

राजा—"राजकुमारों को पिता की आज्ञा की आवश्यकता नहीं होती, यह तो आप की इच्छा पर निर्भर है।"

राजकुमार—"अच्छा ठाकुर जालिमसिंह से पूछिये, यह क्या कहते हैं?"

जालिमसिंह—"जो आप की राय सो मेरी राय है। यदि आप की इच्छा हो तो मुझे भी स्वीकार है।"

राजकुमार—"राजा साहब! एक शर्त पर शादी हो सकती है। मैं अपनी तलवार आप को देता हूं उसके साथ आप ब्याह कर दें?"

राजा—"नहीं, जब आप स्वयं यहां पधारे हैं तब फिर इस रस्म के अदा करने की क्या जरूरत है? आप के ही साथ फेरे क्यों न फेरे जायें?"

राजकुमार "राजा साहब! हमारे यहाँ तो सनातन से इसी प्रकार विवाह होते चले आए हैं।"

जालिमसिंह—"ठीक है महाराज!"

राजकुमार—"हमारे पूर्वजों का भी इसी प्रकार विवाह हुआ था।

जालिमसिंह—"निःसंदेह मुझे भी ज्ञात है।"

राजकुमार—"इस में एक बात यह भी है कि पिता जी से कहने सुनने का मौका रहेगा, कि मैंने खांडा भेज कर विवाह कराया है।"

जालिमसिंह—"राजा रायसिंह को आप की इस सलाह से कभी विरोध न होगा। वे सच्चे राजपूत हैं और राजपूताने के रीति रिवाजों से परिचित हैं।"

रायसिंह—"मुझे इस में कोई आपत्ति नहीं है। आप का इतना

ही अनुग्रह बहुत है कि आप ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मेरे सम्मान को बढ़ाया। मेरा अहो भाग्य है कि जोधपुर के राजघराने से मेरा सम्बन्ध हुआ।"

रानी—"प्राणनाथ! फिर देर किस बात की है? पुरोहितको बुलाइये और विवाह रचाइये।"

राजा ने आदमी दौड़ाया और वह पुरोहित के पास गया। जब पुरोहित ने यह बात सुनी तो उसके हर्ष का कोई परावार न रहा। अपने मन में कहा, लो अब तो पोबारह हैं। सारे दुःख दर्द जाते रहेंगे। इतना इनाम पाऊंगा कि कई पीढ़ियों तक के लिये काफी होगा। वह सिर के बल दौड़ता हुआ आया।

उसी समय से विवाह की तैयारियां होने लगी। इधर जब राजा और रानी चलने लगे तो यारों में हंसी-मजाक होने लगा। कहने लगे कि ऐसा उल्लू सीधा किया है कि जीते जी नहीं भूलेगा।

धमलू—"देखा ठाकुरो! कैसी चतुराई से मैंने काम किया है।"

जालिमसिंह—"भई मैं तो घबराता था कि कहीं भांडा न फूट जाये, और सारा मनसूबा धरा का धरा रह जाए।"

धमलू— 'जी नहीं, आप की सहायता चाहिये, ऐसा तीर मारूं कि ठीक निशाने पर जाकर लगे।" तीनों मिल कर देर तक हंसी-दिल्लगी करते रहें और खुश होकर गाने बजाने लगे।

———

१४

# बाग की बातें

होना था सो हो लिया, अब क्यों करे बिलाप।
कर्म गति अति प्रबल है, उपजे खेद और ताप॥

हर्ष का दिन है। आनन्द का समय है। बेली हर्ष के मारे फूले अंग नहीं समाती और अपने को सारे संसार से सौभाग्यवती समझती है। सखी-सहेलियों के साथ बगीचे में आनन्द में समय व्यतीत कर रही है।

एक सखी–"राजकुमारी देख! हमको कहीं भूल न जाना?"

बेली–"भला यह भी कहने की बात है, तुमको मैं कैसे भूल सकती हूं?"

दूसरी सखी–"बेली तू इतने बड़े राजा के महल में जारही है कि वहां नाना प्रकार के भोग विलास और हर्ष तथा आनन्द की सामग्री तुझे प्राप्त होगी। कैसे कहा जाये की हम जैसे दीन जनों की याद तेरे मन में बनी रहेगी?"

बेली—"भूलने वाली कोई और ही हुआ करती हैं।"

शांता–"दुनिया में सब को मुंह देखी की प्रीति होती है। जहां बेली ने राज भवन में पैर रक्खा, उसे ध्यान भी न रहेगा कि कौन-कौन लड़कियाँ उसके साथ खेला करती थीं और कौन

कहां रहती थीं ?"

बेली—"नहीं, मैं किसी को भी न भूलूंगी।"

शाँता—"अच्छा ये बातें तो होती रहेंगी. आओ आज सब लोग मिल कर खुशी में गा-बजा लें। अब यह दिन फिर कब मिलने वाला है ?"

जिस समय सखियां आनन्द में मंगल गीत गा रही थीं, बनावटी राजकुमार भी वहां आ पहुंचे। उसको देख कर कुमारियां शर्मा गईं और वहां से खिसकने लगीं।

बेली—"शांता प्यारी ! तू कहां जाती है ?"

शांता—"राजकुमारी तू दो-चार मिनट राजकुमार के साथ बात-चीत कर के अपने दिल को बहला ले, हम कहीं नहीं जाती हैं।"

बेली—"नहीं ! नहीं ! तू मत जा ?"

किन्तु शांता चली गई और उसके साथ दूसरी लड़कियां भी चली गईं।

बेली ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया। राजकुमार उस के पास आया और प्रेम के साथ उसका हाथ पकड़ कर कहने लगा—"सुन्दरी ! मेरे साथ रह कर भी तू अपने आप को अकेली समझती है ?"

बेली—"नहीं महाराज ! जहां आप विराजमान हों वहां मुझे किस बात का भय है ? आप की तो परछाईं देख कर भय कोसों दूर भागता है।"

राजकुमार—"मैं ने जब से तुमको देखा है जी-जान से तुम पर मोहित हूं।"

बेली—"(मुस्कराकर)महाराज ! यह तो कहने सुनने की बात है। मेरे जैसी तो आप के यहां सैंकड़ों हैं, किन्तु आप मेरे लिए एक हैं। आकाश-मंडल में एक ही सूर्य होता है, उसके चहुंओर

हजारों तारे मंडलाते हैं।"

राजकुमार–"आकाश मंडल में चन्द्रमा एक ही होता है जिस के सामने तारागण का प्रकाश मन्द पड़ जाता है।"

बेली—"महाराज मैं आप की दासी हूँ। आपके चन्द्रमुख को चकोर की भांति ताकती रहूंगी। आपको देख कर माता पिता के प्रेम को भूल जाऊंगी और हर समय आप के चरणों पर तन-मन न्योछावर करती रहूंगी।"

राजकुमार—"मैं भी तुम्हें प्रसन्न करने का निरन्तर प्रयत्न करता रहूंगा। एक विशाल भवन बनवाऊंगा और उसी में तुम्हारे साथ रहा करूंगा।"

बेली—"आप के और भी कोई महल है?"

राजकुमार—"हमारे बाप दादा ने भी कभी भूल कर एक से अधिक ब्याह नहीं किया।"

बेली—"मैंने सुना है कि जोधपुर के महल में बहुत सी रानियाँ हैं?"

राजकुमार—"तुमने ठीक नहीं सुना है। मेरे पिता ने केवल एक ब्याह किया है और हम जिस बंश के हैं उस में एक ही ब्याह करने का रिवाज है।"

बेली–"महाराज! मैं अपना सर्वस्व आप को अर्पण करती हूं, अब यह आप का धर्म है कि आप मेरी रक्षा करें।"

राजकुमार–"हां! हां! ऐसी रक्षा करूंगा कि जीवन पर्यन्त तुम उसे न भूलोगी।"

राजकुमार और राजकुमारी लगभग आध घंटे तक इसी प्रकार की प्रेम वार्ता करते रहे। इतने में शान्ता सखी आई और राजकुमार को झुक कर प्रणाम करने के बाद कहने लगी–'महाराज! ठाकुर साहब ने आप के मनोरंजन के लिये तान सेन खां को भेजा है। यदि आज्ञा हो तो वह सेवा में उपस्थित हों?

अच्छा गाने वाला है, उसका गाना सुन कर तबियत फड़क उठेगी।"

राजकुमार–"यह तानसेन कौन है ?"

बेली—"यह एक प्रसिद्ध गवैया है, दूर दूर तक इसका नाम है।"

राजकुमार—"अच्छा उस को अन्दर आने दो।"

शांता बाहर गई और तानसेन को अपने संग ले आई। तानसेन ने आते ही सविनय प्रणाम किया और आज्ञा पाकर फर्श पर एक किनारे बैठ गया।

राजकुमार–"क्यों जी! तुम्हारा नाम तानसेन खाँ है ?"

तानसेन—"जी हजूर! बन्दे को तानसेन ही कहते हैं।"

राजकुमार—"एक तानसेन तो ग्वालियर में रहता था, तुम वही तो नहीं हो ? वह तो अकबर बादशाह के नवरत्नों में से था, उसको मरे हुए तो मुद्दत हो गई, तुम कहां से आ गये ?"

तानसेन ने उस की सूरत को देखकर यह नतीजा निकाला कि यह राजकुमार नहीं है, कोई गंवार आदमी है। इसको तो बातचीत करने की भी तमीज नहीं है। कहने लगा—"हाँ जनाब, मैं वही तानसेन हूं, दूसरा नहीं हूं। मगर कहिये तो कुछ गाऊं ?"

राजकुमार—"हाँ, हाँ, कुछ गाओ।"

तानसेन—"क्या गाऊं, जो आप फरमावें सो गाऊं ?"

राजकुमार—"मैं क्या बताऊं जो आप को पसन्द हो सो गाओ।"

तानसेन ने अपना तमूरा उठाया और एक ध्रुपद राग छेड़ दिया।

राजकुमार–"यह क्या गाया ?"

तानसेन—"हजूर! यह ध्रुपद है।"

राजकुमार—"ध्रुपद क्या होता है ?"

तानसेन—"ध्रुपद गाने का सरदार और गन्धर्व विद्या का राजा है। बावन तोला पाव रत्ती !"

राजकुमार—"हाँ, हाँ समझा बावन तोला पाव रत्ती का गाना छोड़ दो, अब कोई पाव सेर वाला गाओ।"

तानसेन—"बहुत अच्छा ! सुनिये:—

चेत सवेरे चलना बाट,
मन माली तन बाग लगाया। देख मुसाफिर को भरमाया॥
मन के लड्डू ताहि खुआवे। भूल रहा विषयन की चाट॥
चेत सवेरे चलना बाट,

राजकुमार—"क्या कहा, मैं माली हूं ?"

तानसेन—"नहीं हजूर ! नहीं, यह भजन है।"

बेली—"वाह उस्ताद जी वाह ! तुम्हारा गाना बहुत अच्छा है। गला क्या है बाँसुरी है।"

तानसेन—"उमर खिसक गई, अब मैं बूढ़ा हो गया हूं। गला भी मेरा पड़ गया है, पहले बहुत अच्छा गाता था।"

राजकुमार—"तुम पाव रत्ती और पाव सेर गा चुके, अब जरा पाव मन का तो गाना सुनाओ ?"

तानसेन हंसा—"बहुत अच्छा हजूर :—

घन घन घन बदरा बरसे, मेरा जिया निशि दिन तरसे।
दामिनि दमके. मेघा गरजे, जाय कहां सखी हरसे।
रैन दिवस मोहि चैन न आवे, बिना तुम पद रज परसे।
दादुर चातक शोर मचावें, विरहा प्रति-दिन जिया तरसावे।
मेघा हिय विच आग जलावें, कहे कोई राधा वर से॥

राजकुमार—"पाव मन का गाना तो बहुत अच्छा है, बल्कि सब से अच्छा है।"

तानसेन—"हजूर . यह वजनदार है इसी लिये अच्छा है।"

राजकुमार–"मैं तुम से बहुत खुश हुआ. जी में आता है कि मैं तुमको अपने साथ जोधपुर ले चलूं।"

तानसेन–"यह श्रीमान की कृपा है। मुझे जोधपुर जाने का कई बार अवसर मिला है पर श्रीमान के वहाँ कभी दर्शन नहीं हुए! महाराजा जोधानाथ ने भी मुझ को बुलवाया था। वहां तो मैंने यही सुना था कि राजा के कोई पुत्र नहीं है, सम्भव है कि वह बात असत्य हो। किन्तु श्रीमान यहां विराजमान हैं।" राजकुमार के मुख की कान्ति जाती रही। बेली के मन में भी कुछ खटका हो गया। तानसेन ने दुनिया देखी थी, वह उनकी घबराहट का भाँप गया। पर धमलू माली भी अव्वल दर्जे का चालाक था। वह तुरन्त बोला, कि हमारे यहां ऐसा रिवाज है कि जब तक राजकुमारों की आयु १२ वर्ष की नहीं हो जाती, तब तक उनको महल के बाहर नहीं आने देते।"

तानसेन–"ऐसा ही होगा।"

राजकुमार–"अब गाना सुनने को जी नहीं चाहता, अब आप जाइये। बाहर ठाकुर साहब आपको इनाम देंगे। तानसेन प्रणाम करके बाहर आ गया। बेली और राजकुमार की बातें देर तक होती रहीं।

राजकुमार उठकर बाहर चला गया। बेली महल में गई और वहाँ अपनी सखियों के साथ हसी, दिल्लगी की बातें करने लगी। इतने में बीना सादे और सफेद वस्त्र पहिने हुए आई तथा बेली से इशारा करके कहने लगी, कि बहिन तुझ से मैं कुछ एकान्त में कहना चाहती हूं। बेली उस के साथ उठ कर दूसरे कमरे में चली गई और पूछा "क्या कहना चाहती हो?"

बीना–"मैं तेरे हित की बात कहने आई हूं।"

बेली–"वह क्या है?"

बीना–"इस समय राजा और रानी दोनों अंधे हो रहे हैं,

उनको कुछ सूझ नहीं पड़ता। यदि मैं कुछ कहूँगी तो वे मुझ पर रुष्ट होंगे।"

बेली—"कुछ कहो भी क्या कहती हो ?"

बीना—"मैं यह कहना चाहती हूं कि जिसको लोगों ने जोधपुर का राजकुमार समझ रक्खा है, वह कोई धूर्त, मायाधारी गुण्डा है।"

बेली—"देख ! अपनी जिह्वा को अपने वश में कर, उसके लिये निरादर के शब्द अपने मुंह से न निकाल। मैं जानती हूं कि तुम्हारे मन में द्वेष और ईर्षा है।"

बीना—"बहिन ! भूल कर रही है। पहिले मेरी बात सुन ले, पीछे जो जो में आये कहना और करना।"

बेली—"तूने कैसे जाना कि वह जोधपुर का राजकुमार नहीं है ?"

बीना—"पहली बात तो यह है कि प्रधान ने जोधपुर की भाषा में उससे बातचीत करनी चाही, पर वह उस देश की भाषा नहीं जानता। दूसरी बात यह है कि उस के आचार व्यवहार गंवारों जैसे हैं; मेरी समझ में वह किसी माली का लड़का है। जब देखो तब बाग की बातें ही किया करता है। जहां तक मुझ को पता लगा है, इस समय तक जोधानाथ के कोई पुत्र नहीं है। चौथे तानसेन ने जो बड़ा अनुभवी मनुष्य है, लोगों के कानों कान में बातें कही हैं, कि यह आदमी चाहे और जो कुछ हो, परन्तु जोधपुर का राजकुमार नहीं है। देख बहिन ! यह तेरे जीवन का प्रश्न है, देख-भाल कर काम करना चाहिये। ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े।"

बेली—"फिर क्या किया जाए ?"

बीना—"मेरी तो कोई सुनेगा नहीं, इस लिये इसमें मैं हस्तक्षेप करना नहीं चाहती। यदि तुझ से हो सके तो किसी आदमी

को जोधपुर भेज कर खबर मंगा ले। जब तक आदमी वहाँ से वापस न आए, तब तक ठहरना चाहिये, जल्दी करना ठीक नहीं।"

बेली—"पर अब समय कहाँ रहा है, विवाह तो कल ही होने वाला है। आदमी कैसे जल्दी जायेगा और कैसे आयेगा?"

बीना—"यहाँ से जोधपुर का रास्ता चार दिन का है। यदि कोई तेज सांडनी सवार जाए, तो चार दिन के भीतर ही लौट कर आ सकता है।"

बेली—"बहिन! बात यह है कि तेरे मन में ईर्षा है। तू देखती है कि मेरा विवाह राजकुमार के साथ हो रहा है और पिता जी तेरा सम्बन्ध किसी कंगाल के साथ करना चाहते हैं, इसी से तू घबरा कर ऐसी बातें करती है।"

बीना—"देख बहिन! जल्दी करने से हानि ही होती है। बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिये! रामायण में भी बार बार यही उपदेश आता है।"

बेली—"चूल्हे में डाल दे अपनी रामायण को, तू जो कुछ कह रही है वह डाह से कह रही है।"

बीना—"बहुत अच्छा! यदि तू ऐसा ही समझती है तो कोई चिंता नहीं, मैं जाती हूँ।"

बेली—"जा तू तो रंग में भंग करने वाली है।"

बीना को जाती हुई देखकर बेली ने अपनी सखी शांता से कहा—"देख इस अभागी को मेरा विवाह अच्छा नहीं लगता, इस को अपनी करनी का फल अवश्य मिलेगा।"

शाँता—"ठीक है! बुरे आदमियों को इसी जन्म में करनी का फल मिल जाता है। जब से इसने सुना है कि राजा किसी निर्धन के साथ इसका विवाह करेगा, तब से यह निराश और दुखी हो रही है। अच्छा चलो, समय व्यर्थ जा रहा है स्नान कर लो, फिर दर्शनों को भी चलना है।"

## १५

# बीना का विवाह

होनी तो होकर रहे, अनहोनी नहिं होय।
ईश आस सुन साधुवा, दुख सब गये विगोय॥

रानी ने बहका कर राजा का मन बीना की तरफ से फेर दिया। उस मूर्ख के मन में ठन गई थी कि चाहे दुनिया कुछ कहे, पर बीना का विवाह किसी निर्धन के साथ किया जाए। जिस से उसको अपनी करनी का फल मिले और उसका व्याह भी बेली के व्याह के साथ ही किया जाए।

सवेरे का समय है। राजाके सिपाही किसी निर्धन की तलाश में महल से चल पड़े हैं। वे दिन भर इधर-उधर ढूंढते रहे, परन्तु कोई निर्धन उन्हें नहीं मिला, दिन ढल गया। वे निराश होकर घर लौटने ही को थे, कि उन्हें अकस्मात् जंगल की तरफ से मैले कुचैले कपड़े पहिने हुए एक लकड़हारा आता दिखाई दिया।

सिपाही—"तू कौन है और तेरा घर कहाँ है?"

लकड़हारा—"मैं एक निर्धन और दुखिया लकड़हारा हूं तथा सारा संसार मेरा घर है।"

सिपाही—"अरे! रात को भी कहीं सोता है या नहीं?"

लकड़हारा—"मैं क्या बताऊं, मेरे तो घर है न द्वार है, जहां जगह मिली वहीं लेट रहा।"

सिपाही—"तेरा बाप कौन है ?"

लकड़हारा—"मैंने तो अपने बाप का मुंह तक नहीं देखा, मैं नहीं जानता कि मेरा बाप कौन है ?"

सिपाही—"अच्छा तेरी माँ कहां है ?"

लकड़हारा—"अजी वह तो रोटी को तरस २ कर मर गई।"

सिपाही—"तेरा कोई सगा सम्बन्धी है भी या नहीं ?"

लकड़हारा—"सारी दुनियां के लोग मेरे सम्बन्धी हैं।"

सिपाही ने उसे कस कर एक हन्टर मारा और कहा—"सूवर ! सीधे मुंह बात ही नहीं करता ?"

लकड़हारा—"मुझे क्यों मारते हो ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? भाई आज तक न मैंने किसी को गाली दी और न किसी को हानि पहुँचाई। जंगल से लकड़ी काटकर लाता हूँ, जो रूखी-सूखी मिलती है उसी पर सन्तोष करता हूं। न किसी की शिकायत से काम है और न किसी की तारीफ से।"

सिपाही—"अच्छा भाई ! हम तो यह चाहते हैं कि तू अपना साफ़ २ हाल हमें सुना दे।"

लकड़हारा—'ईश्वर के सिवा मेरा कोई भी सगा नहीं है। मेरी मां भूख के मारे मर गई, बाप को न मैंने देखा और न मैं उसका नाम जानता हूं।"

सिपाही—"अच्छा चल, तुझको राजा बुला रहा है।"

लकड़हारा—"भला राजा का मैंने क्या अपराध किया है ?"

सिपाही—"राजा को अधिकार है कि वह चाहे जिसको पकड़वा बुलाए।"

लकड़हारा—"मैं मन मौजी आदमी हूं। अपने मन का मैं आप राजा हूं।"

सिपाही—"(हंसकर) खूब ! तू मन का राजा है, तब तो तेरे पास धन दौलत, लाव लश्कर, सब कुछ ही होगा ?"

लकड़हारा—"मुझ को इनमें से किसी की भी आवश्यकता नहीं है। मैं संसार में मालिक का नाम लेकर जीता हूं । वह सब का दाता विधाता है। मैं ऐसा राजा हूँ कि जिस को किसी प्रकार का बन्धन नहीं है और न किसी प्रकार की चिंता है।"

सिपाही—"अरे ! अब तो तू ज्ञान छांटने लगा।"

लकड़हारा—"अजी साहब ! मुझ पर दया करो।"

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्राण॥

सिपाही—"फिर तो तू राजा बना हुआ है और एक मामूली सिपाही से आजिज़ी करता है।"

लकड़हारा—"राजा है मन आपना, नहीं लोभ नहीं मोह।
सुख दुख एक समान हैं, नहीं द्वेष नहीं छोह॥

सिपाही—"तुझ में तो कुछ बुद्धिमानी भी मालूम होती है, पर निर्धन क्यों बना हुआ है ? चल, राजा के पास तुझको चलना पड़ेगा, अब अधिक बातें न बना।"

लकड़हारा—"अच्छा चलो ! मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, कि राजा मुझको दण्ड देगा। न मैंने किसी की चोरी की है, जो राजा मुझ को कैद करेगा। और न मैंने किसी का खून किया है, जो राजा मुझे फाँसी की सज़ा देगा। फिर मुझे संसार में किस का डर है ?"

सिपाही ने लकड़हारे का हाथ पकड़ लिया और उसको राज महल की तरफ ले चला। वहां अनेक प्रकार की तैयारियां हो रही थीं। महफिल लगी हुई थी, नाच गाना हो रहा था, सब लोग यथास्थान विराजमान थे।

राजा—"(बीना की ओर देखकर) देख तेरी बहिन बेली की

शादी जोधपुर के राजकुमार के साथ होने वाली है, बता तेरी क्या इच्छा है ?"

बीना—"आप क्यों बार बार मुझ से पूछते हैं ? जो कुछ मुझ को कहना था मैं पहले ही कह चुकी, अब उसको क्या दोहराऊं ? जो होना है सो होगा। विधाता ने जो मेरे भाग्य में लिख दिया है, वह अमिट है। ब्रह्मा की रेख पर कोई मेख नहीं मार सकता।"

राजा—"अभागी ! क्या तू जान बूझ कर दुःख मोल लेना चाहती है ? मुझ को सुख का देने वाला क्यों नहीं मानती ? अब भी समझ जा और अपना घमण्ड छोड़ दे। देख मैं बेली को कैसे अच्छे घर में ब्याह रहा हूँ। क्या तेरा सुख भी मेरे हाथ में नहीं है ? मैं फिर कहता हूं कि तू मान जा, अपने हठ को छोड़ दे, अभी कुछ भी नहीं बिगड़ा है ?"

बीना—"पिताजी ! मैं कैसे झूठ कहूं, मैंने कभी आज तक झूठ नहीं बोला। यह परीक्षा का समय है इस समय मैं अपने आदर्श से गिरना नहीं चाहती। जो मेरे भाग्य में लिखा है वह अवश्य होकर रहेगा। आप कलंक का टीका अपने आप लगा रहे हैं, मैं आप को कभी सुख का देने वाला न कहूंगी। मेरा भाग्य आप के हाथ में नहीं है। आप चाहे मेरी जिह्वा काट डालिये, चाहे मेरा सिर धड़ से अलग कर दीजिये। यद्यपि यह भी कहने की बात है कि ईश्वर की आज्ञा के बिना कोई किसी का कुछ नहीं कर सकता ? मैंने इस पर अच्छी तरह से विचार कर लिया है। मुझे ज्ञात है कि किस तरह कर्म ने भर्तृहरि को राज्य से बे राज्य किया, गोपीचन्द से भीख मंगवाई, द्रौपदी को बन-बन फिराया, पांडवों को सौ तरह के नाच नचवाए, सीता हरण कराया, राम लक्ष्मण को बनवास दिलाया और रावण जैसे लंकेश के प्राण हरण कराये। पिताजी आप तो हैं

क्या, भस्मासुर जैसे अभिमानी भी पार्वती की आग्नेय दृष्टि से भस्म हो गया। हरिश्चन्द्र जैसे प्रतापी राजा क्षण भर में चाँडाल के हाथों बिक गया, तारामती जैसी सुन्दरी रानी से दासी बन गई, रोहित सा कोमल राजकुमार निष्ठुर ब्राह्मण के यहाँ घोर यातना सहता रहा, आपको मालूम है यह काम किस ने कराया? कर्म ने कराया। अतएव यदि मेरा कर्म बुरा है तो फिर आप मुझ को क्या सुख देंगे? जब बड़े-बड़े राजा-महाराजा और देव-दानव भी कर्म के फन्दे से नहीं बचे, तब फिर कर्म से मैं कैसे बच सकती हूँ! यदि मेरे कर्म में सुख बदा है तो उसके छीनने वाले आप कौन हैं? यदि दुःख बदा है तो आप उसके मेटने वाले कौन हैं? बस अधिक मुझ से न कहलाइये, आप मेरे पिता हैं इस लिये मैं आप से अधिक नहीं कहना चाहती।"

गाना-बजाना बन्द हो गया। सब लोग आश्चर्य से बीना को टकटकी बाँध कर देखने लगे। राजा के मन पर भी उस की बातों का असर हुआ। पर वह हठी था और रानी के वश में था, इस लिये उसने क्रुद्ध होकर कहा—"देख बीना! तेरे सुख दुःख का मैं विधाता हूं, इस बात को तू स्वीकार कर, नहीं तो बहुत पछताएगी और जन्म भर रोती झींकती रहेगी।"

बीना—"पिता जी! केला एक ही बार फल देता है, सिंहनी एक ही बार गर्भ धारण करती है। सच्चे स्त्री-पुरुष भी एक ही बार प्रतिज्ञा करते हैं! आप मुझ को क्या भय दिखाते हैं? मैं उस स्त्री की कोख से उत्पन्न हुई हूं, जिसमें क्षत्रियों का रक्त था? आप मेरा विवाह निर्धन के साथ कर दीजिये, चाहे रोगी और कोढ़ी के साथ ब्याह दीजिये। यदि मैं सच्ची स्त्री हूं और मुझ में सच्ची स्त्री होने का गुण हैं, तो मैं उस निर्धन को धनवान, रोगी को निरोगी और निर्बल को सबल बना लूंगी। आपने सुना होगा कि भर्तृहरि ने विक्रम को अनादर के साथ देश

निकाला दिया, परन्तु विक्रम राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। आप को स्मरण होगा कि राजा मुंज ने अपने भतीजे भोज को निरापराध मारना चाहा, और अपने ख्याल में मार भी डाला, परन्तु वह फिर अपने शुभ कर्मों के उदय से अपने चचा के जीते जी राजसिंहासन पर बैठा। आप मुझ को क्या डराते हैं, मैं डरने वाली नहीं हूं ? आप से जो कुछ अन्याय करते बने, कर डालिये, कुछ न उठा रखिये। मुझ को उसकी कोई शिकायत नहीं। कारण मैं जानती हूं, कि जो कुछ होना है वह कर्म से होगा।"

राजा—"हठीली लड़की ! देख अब तेरे कर्म के उदय होने का समय आ रहा है ! अरे सिपाहियो ! वह आदमी कहां है जिसकी तलाश में तुम गये थे ?"

सिपाही—"महाराज ! यह हाजिर है।"

राजा ने उसे अपने पास बुलाया और उससे पूछा—"अरे ! क्या तू राजकुमारी बीना के साथ व्याह करना चाहता है ?"

लकड़हारा—"पृथ्वीनाथ ! मैं गरीब लकड़हारा हूं। न मेरे घर है न दर है, मैं राजकुमारी का व्याह कर क्या करूंगा ? कहाँ उसे रखूंगा और किस प्रकार उसका पालन करूंगा ? मुझे तो अपना ही पेट पालना भारी है।"

राजा—"कुछ परवाह नहीं, तुझको इसके साथ व्याह करना ही होगा।"

यह कह कर राजा ने बीना का हाथ लकड़हारे के हाथ पर रख दिया ! न उसको धन दिया, न वस्त्र दिए और न कुछ और ही किसी प्रकार का सामान दिया, केवल एक सफेद साड़ी उसके बदन पर थी।

इस प्रकार सब के देखते हुए निष्ठुर और करुणा हीन पिता ने अपनी लड़की को घर से विदा कर दिया।

बीना माता-पिता को प्रणाम और नमस्कार करके बिना किसी

प्रकार का शोक वा हर्ष प्रकट किये, लकड़हारे का हाथ पकड़ कर बाहर आई तथा उसके साथ एक ओर को चल दी। थोड़ी देर बाद राजा ने बेली का ब्याह भी जोधपुर के बनावटी राजकुमार के साथ कर दिया और उस को भी उसी समय बिदा कर के अपने महल में आ गया।

दुनिया अन्धेरे की जगह है। यहाँ जो न हो जाय सो थोड़ा है।

———

## १६

# बेली की दुर्दशा

हाय प्रभु अब क्या करूं, असह दुःख की चोट।
भ्रम भूल में मन रहा, काको कहिये खोट॥

विवाह हो गया। धमलू की इच्छा पूरी हो गई। जिस की उसे इच्छा थी वह मिल गई। ठाकुरों ने डेरा डंडा उठाया और कूच बोल दिया। अब न कोई बनावटी राजकुमार के साथ है और न कोई उसकी अरदली में है। परन्तु हाँ वह शाही लिबास पहिने हुए है। बेली को एक जगह ठहरा कर वह अपने घर पर आया। उसकी माँ ने जब उसका यह रूप देखा तो घबरा कर कहने लगी—"अरे धमलू! तुझको क्या हो गया? ये चमकदार कपड़े तुझे कहाँ से मिल गये? ऐसे कपड़े तो तेरे बाप दादा ने भी नहीं देखे थे?"

धमलू—"बावली! तू कुछ जानती भी है? मैं धमलू नहीं हूं मैं तो जोधपुर का राजकुमार हूँ और राजा रायसिंह का जामाता हूं।"

बुढ़िया—"मूर्ख! यह क्या कहता है? कहीं राजा सुन पावेगा तो भुट्टे की तरह तेरा सिर उड़ा देगा।"

धमलू—"बुढ़िया तेरी तो मत मारी गई है। तू सठिया गई है।

मैं राजकुमार हूं। मेरा विचार अब जोधपुर जाने का है तुझको देखने के लिये यहाँ आया हूँ।"

बुढ़िया—"अरे बावले! तुझको क्या हो गया? क्या मैंने तुझको इसी लिए पाला पोसा था? मैं तो समझी थी कि बुढ़ापे में तू मेरे काम आएगा, परन्तु हाय अब तो मैं कहीं की भी न रही।"

धमलू की पहली स्त्री—"अरे गंवार! क्या तूने मेरे रहते हुए दूसरा बिवाह किया है? मेरा तुझ को कुछ भी ख्याल नहीं आया, घर में सौत लाया है। देख, मैं तेरी ऐसी दुर्गति करती हूं कि तेरे होश ठिकाने आ जायेंगे। वह राजा कैसा मूर्ख था? क्या उसके हिये की आँखें फूट गई थीं, कि उसने अपनी लड़की तुझ को ब्याह दी? मैं तो तेरा नाम ले ले कर झोंपड़े में पड़ी रहूं और तू दूसरी औरत को ताकता फिरे। तू ने मेरा अपमान किया है मैं इसको सहन नहीं कर सकती। किसी औरत से पाला नहीं पड़ा था तेरा, अब तुझ को मजा मिलेगा। मूए! तूने मेरा जन्म बिगाड़ा, राजकुमारी का जन्म बिगाड़ा, अब राजकुमार बन कर आया है। तेरी छाती नहीं फट गई? कई दिन से पता नहीं, घर-बार की सुध नहीं, बेईमान कहीं का।"

यह कह कर उसने अपनी चूड़ियाँ फोड़ डालीं और मरने मारने पर तैयार हो गई। अब धमलू के होश ठिकाने लगे। इतने में शोर सुन कर अड़ौस-पड़ोस के लोग भी आकर जमा हो गए और धमलू को बुरा-भला कहने लगे। धमलू बड़ा घबराया। किसी तरह राम-राम करते हुए बुढ़िया और स्त्री से पीछा छुड़ाकर भागा, तथा उस मकान की तरफ गया जहां बेली को ठहरा रक्खा था। वह बेचारी इस ख्याल में थी कि मैं जोधपुर की रानी हो गई हूँ, परन्तु उसे क्या मालूम था कि क्षण में क्या होने वाला है। इतने में धमलू वहाँ आ पहुँचा।

बेली—"(प्रणाम करके) नाथ ! जोधपुर कब चलोगे ?"

धमलू—"मैं इसी विचार में हूँ। बहुत शीघ्र ही चलने का प्रयत्न करूंगा।"

बेली—"महाराज ! जितनी शीघ्रता हो सके कीजिये।"

धमलू—"प्यारी घबराने की क्या बात है ?"

बेली—"नाथ ! परदेश में अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं। विशेष कर स्त्रियाँ परदेश को पसन्द नहीं करतीं, उनको तो अपना ही घर प्यारा लगता है।"

धमलू—"प्यारी ! दुःख के बाद ही सुख होता है। यहाँ तू अकेली है वहां हजारों दासियाँ तेरी सेवा में रहेंगी। उनको देख कर तू इस समय का दुःख भूल जाएगी।"

गाँव मे यह समाचार फैल गया कि धमलू राजकुमारी को ब्याह कर लाया है और जोधपुर का राजकुमार बना हुआ है। सैंकड़ों ब्राह्मण और ब्राह्मणियों ने उसके मकान को घेर लिया तथा "महाराजा की जय हो, हमको भी कुछ दक्षिणा मिलनी चाहिये" इत्यादि कहने लगे।

बेली—"नाथ ! यह भीड़ भाड़ कैसी है ? सिपाहियों से कह दो कि इन्हें धक्के देकर बाहर निकाल दें।"

धमलू बाहर आया और बड़े रौब से कहने लगा—"कि अभी निकल जाओ, नहीं तो सिपाही तुम्हें धक्के देकर निकाल देंगे। परन्तु कौन उसकी सुनता था, सैंकड़ों की भीड़ लग गई। बेली मन ही मन घबरा रही थी और कह रही थी कि न जाने कम्बख्त सिपाही कहाँ चले गये ?"

धमलू—"गाँव में इनाम बांटने गये हैं। तुम जानती हो कि माँगने वाले लाखों होते हैं। और फिर जब उन्होंने सुना कि जोधपुर के राजकुमार का विवाह हुआ है, तब तो उनका कोई ठिकाना ही नहीं। मैंने एक गांव ब्राह्मणों को दे दिया और एक गांव

भाटों को दे दिया। तुम्हारे यहां से जो कुछ मिला था, वह सब यहां का यहाँ ही बाँट देने के लिये लोग गये हुए हैं।"

बेली—"नाथ! यदि आप इस तरह से गांवों के गांव दे देंगे तो आप के पास क्या रहेगा?"

धमलू—"प्रिये तुझको जोधपुर के दरबार का हाल मालूम नहीं है। हमारे बाप-दादाओं ने दिल्ली, बंगाल, सिंध और कच्छ, बिहार, सब लोगों को दान में दे डाले।"

बेली—"तब जोधपुर का राज बहुत बड़ा होगा?"

धमलू—"और नहीं तो क्या?"

बेली"जब इस प्रकार उदारता से दान किया जाता है तब क्या राज्य बहुत दिनों तक कायम रह सकता है?"

धमलू—"कुमारी! जोधपुर के राजा इसी तरह से दिया करते हैं। असल बात यह है कि हम लोगों को मोह नहीं है। जो मिला सो लुटा दिया। आज लाखों रुपये पास हैं, परन्तु कल एक कौड़ी भी नहीं?"

बेली—"जब आपने सब कुछ बांट दिया है तो फिर अब आप के पास कुछ है भी या नहीं?"

धमलू—"यहाँ क्या धरा है? मेरी दौलत तो तुम हो। तुम मुझ को मिल गईं, मैं ने समझ लिया कि मुझे सारी दुनिया मिल गई।"

बेली—"मैं भी आप पर जी-जान से मरती हूं।"

धमलू—"मेरे मन में आता है कि फूलों के हार बना कर तुझ को अपने हाथों से पहिनाऊं। क्यों कुमारी यदि मैं मालीका काम करूं, तो तुम मेरे साथ मालिन बनकर रहोगी कि नहीं?"

बेली—"क्यों न रहूंगी। मैं तो आपके दुःख-सुखकी साथिन हूँ। पति की सेवा में रहना स्त्री का परम धर्म है।"

दोनों इस प्रकार की बातें कर रहे थे कि धमलू की माँ वहाँ

आ पहुंची और ज़ोर से चिल्लाने लगी—"धमलू! धमलू। बाहर निकल, तुझ को हो क्या गया है?"

बेली—"महाराज! यह तो कोई बावली बुढ़िया मालूम होती है?"

धमलू—"हाँ, यह बावली बुढ़िया है। यह धमलू माली की माँ है। जंगल में रो रही थी, मैंने इसको कुछ दे दिया था, इसी कारण यह मुंह लगी हुई है।"

इतने में बुढ़िया मकान के अन्दर आ गई और धमलू का हाथ पकड़ कर खींचने लगी। धमलू उससे हाथ छुड़ा कर राजकुमारी के पीछे आकर खड़ा हो गया।

बेली—"बुढ़िया! राजकुमार को क्यों सताती है?"

बुढ़िया—"यह राजकुमार कहाँ का बन गया, यह तो मेरा लड़का है।"

बेली—"तेरा लड़का तो धमलू है, यह तो राजकुमार है।"

उसी समय ज़ालिमसिंह और विजयसिंह भी आन पहुंचे और कहने लगे—"कि ज़ेवर-कपड़े जो तू पहिने है उतार दे। अब तेरा काम हो चुका है।"

बेली—"नाथ ये क्या कह रहे हैं?"

धमलू—"प्यारी मैंने तुझसे पहले ही कहा था, कि मैं ग़रीब आदमी हूं मेरे पास कुछ नहीं है।"

ज़ालिमसिंह—'राजकुमारी सुन, तूने मुझे घृणा की दृष्टि से देखा था, तेरे पिता ने मेरा अपमान किया था, तेरी माता ने मुझ को नीच कुल का बताया था, इसी लिये मैंने तेरा विवाह इसके साथ कराया है। यह जोधपुर का राजकुमार नहीं है, धमलू माली है।"

ज़ालिमसिंह की बात सुनकर बेली बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी। तानसेन भी ज़ालिमसिंह के साथ ही था। वह धमलू

से कहने लगा—"कहिये जनाब! पाव सेर की सुनाऊं या पाव मन की?"

धमलू–"क्षमा कीजिये! मैं बाज़ आया तुम्हारे पाव सेर और पाव मन से।"

ज़ालिमसिंह ने तानसेन से कहा, कि "तुम बेली को लेकर नदी किनारे चलो, मैं थोड़ी देर में आता हूं। किन्तु उसी समय बेली को होश आ गया। उसने धमलू से कहा कि यह क्या धोका था?" धमलू बोला–"इसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं है, अपराध इन ठाकुरों का है। इन्होंने ज़बर्दस्ती मुझ को जोधपुर का राजकुमार बना दिया। हाय! मैं नहीं जानता था कि ये लोग इस प्रकार मेरा निरादर करेंगे। मुझ को अपनी करनी पर पश्चाताप है और अब इसके सिवा और मैं कुछ कर भी नहीं सकता।"

इस समय बेली का कुछ हाल न पूछो। वह सिर धुनने लगी और रो-रो कर पछताने लगी। वह अपने मन में सोचती थी कि अब जाकर किसी को क्या मुहं दिखाऊंगी? लोग पूछेंगे तो उनको क्या बताऊंगी? बहिन बीना, तू सच्चे दिल से मेरा हित चाहती थी। तूने मुझको पहिले ही से सारी बातें बता दी थीं। हाय! मेरी बुद्धि पर परदा पड़ गया, मैंने तेरी नहीं सुनी। उस समय मुझे झूठे अभिमान ने अन्धा बना रक्खा था। तेरा कहना अक्षरशः सत्य निकला। तू ठीक कहती थी कि भाग्य में जो कुछ बदा है, वह होकर रहता है। पिता ने तो अपनी बुद्धि अनुसार जोधपुर के राजकुमार ही के साथ विवाह किया था, परन्तु वह माली निकला; भाग्य में तो माली बदा था. राजकुमार कहां से मिलता। कर्म की गति सचमुच प्रबल होती है। यह विचार करके वह फिर रोने और पछताने लगी। उस को घबराहट में देख कर तानसेन ने कहा कि–"अब तेरा रोना व्यर्थ है। जिस समय मैंने इस बनावटी राजकुमार को देखा था. तो भांप गया था कि यह

कोई छोटी जाति का मनुष्य है। बाहर आकर पता लगा कि इतने में ही तुम्हारा विवाह हो गया। जो होने को था सो हो गया, अब पश्चाताप करना व्यर्थ है। मेरे साथ चलो, मालिक जो करेगा भला ही करेगा। यह कह कर उसने वेली का हाथ पकड़ लिया और नदी की ओर चल दिया।

———

## १७

# लकड़हारा

हारिये न हिम्मत, बिसारिये न हरि नाम।
जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिये ॥

लकड़हारे को न हर्ष था, न शोक। राजकुमारी का भी यही हाल था। स्वभावतः दोनों का स्वभाव एक सा था। पाठकों को यह तो ज्ञात हो गया होगा, कि वीना कैसी चतुर और बुद्धिमती थी। परन्तु अभी तक लकड़हारे के विषय में यह नहीं कहा जा सकता, कि वह किस ढंग का आदमी था। यह सच है कि वह बैरागी था, सच्चा त्यागी था, परन्तु दुनियादारी की तरफ से वह बिल्कुल कोरे का कोरा ही था।

दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए राजसभा से निकले और उसी तरह कुछ दूर तक चलते रहे। दोनों एक दूसरे से न कुछ पूछते हैं और न पूछने का कुछ साहस ही करते हैं। एक ने दूसरे को अच्छी तरह देखा तक भी नहीं। जब थोड़ी दूर निकल गए तो वीना ने धीरे से प्रेम और आदर के साथ बातचीत करनी शुरू की। और अपने मन में विचार किया, कि जब मेरे भाग्य में झोंपड़े में ही रहना बदा है, फिर मुझे राज महलों से क्या काम ?

परमात्मा तेरी लीला विचित्र है। तू कभी भिखारी को राज्य-सिंहासन पर बिठाता है और कभी राजा को भिखारी की गुदड़ी पहिनाता है। तू ही रुलाने वाला और तू ही हंसाने वाला है। तूने आज मुझे पति देव का मुंह दिखलाया, तुम्हें कोटीश धन्यवाद है। परमात्मन् जो कुछ तूने किया होगा, समझ-बूझ कर किया होगा। तेरी लीला अपरम्पार है। आदमी की क्या शक्ति है कि उसको जान सके।

संसार असार है। यहां सुख क्षणिक और अस्थायी हैं। उस पर मुझे मोहित न होना चाहिये। दो गज से अधिक ज़मीन, पाव भर से अधिक अनाज, किसी को नहीं मिलता, और न हीं इससे अधिक किसी में भोगने की शक्ति है। निर्धनता! मैं तेरा हृदय से स्वागत करती हूं। पतिदेव के फूस के झोंपड़े, मैं तुझे आदर की दृष्टि से देखूंगी, निर्धनता, तू मुझे काम करने का अवसर देगी। तेरी शरण में रह कर मैं अपने मन पर विजय प्राप्त कर लूंगी, और जो मन दूसरों को नचाया करता है, मैं उसको नाच नचाया करूंगी, अपना दास बना लूंगी। खाने-पीने में क्या रक्खा है? जिस स्वाद के लिये लोग जिह्वा आदि इन्द्रियों के वश में रहते हैं, वह असल में कुछ भी नहीं। जब तक दांत चबाते हैं, जिह्वा निगलती है, तभी तक स्वाद मिलती है। खाने का मतलब केवल पेट पालना है। पेट पालने का मतलब जीवन व्यतीत करना है। आदमी रूखी सूखी खाकर भी जी सकता है। वस्त्र और अलङ्कार क्या वस्तुएं हैं? स्त्री का भूषण तो पति की सेवा करना है। कपड़ा तन ढाकने के लिये होता है। फटे-पुराने कपड़े पहिन लेने से भी तन ढांका जा सकता है फिर मैं उसके लिये क्यों तरसूं? राज, धन, सम्पदा, वस्त्र अलङ्कार ये ऐसे पदार्थ नहीं हैं कि जो मनुष्य के जीवन के उद्देश्य

और आदर्श बनें, आदर्श तो कोई और ही वस्तु है। स्त्री का आदर्श उसका पति है। अनुसूया ने सीता को उपदेश दिया था कि पति की ही सेवा में परम कल्याण है। जो पति की सेवा नहीं करती, वह नरक में पड़ती है। दूसरा जप तप, नियम संयम, काम नहीं आता। धन्य है विधाता ने मुझको पुरुष दिया, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो। मैं उसकी सेवा करके भव सागर के पार उतरूंगी। पति की भक्ति ईश्वर की भक्ति है। कारण यह है कि पति और ईश्वर में कुछ भी भेद नहीं है।

अरे मन चल, तेरा रास्ता खुआ हुआ है। तुझे किसका भय है, चल इसी में तेरा कल्याण है, इसी में तुझको सब कुछ मिलेगा। यह प्रेम का मार्ग है, जिसने इसमें अपना शीश दिया, सूर्य की नाई वह पृथ्वी मंडल में चमक उठा। जिसने संकोच किया, वह मारा गया और रसातल में पहुंच गया।

मेरे पति का झोंपड़ा राजभवन से हजार गुना सुन्दर होगा। खुला हुआ मैदान, स्वच्छ जल वायु होगी। कोई वस्तु भी बनावटी न होगी। चहुँ ओर आम के वृक्ष लगे होंगे. उस पर कोयलें कलोल करती होंगी। इधर वनस्पति की बहुलता होगी, वही मेरे लिये स्वादिष्ट भोजन होगा। मन, सन्तोषी मन, तू चिन्ता न कर, चिन्ता करना व्यर्थ है, क्षमा और सन्तोष ग्रहण कर।

इस प्रकार विचार करती हुई बीना अपने पति के साथ झोंपड़े में आई। दोनों भूमि पर बैठ गए। बीना ने पति देव के चरणों को स्पर्श किया और बोलीं—"नाथ! आज से मैं तुम्हारी दासी हुई।"

लकड़हारा—"सुन्दरी! मैं तुझको देखकर लज्जित होता हूं। कारण, मैं भिखारी और तू राजकुमारी। कोयल का कौवे के साथ

सम्बन्ध किया गया। मैं नहीं चाहता था कि अपने साथ तुझे भी दुखी करूं। क्या करूं राजा ने हठ की। मैं तो जाना भी नहीं चाहता था। मैंने कितनी ही बातें बनाईं और कितने ही बहाने ढूंढ़े; पर क्या करूं सिपाही जबरदस्ती पकड़ ले गया ? सिपाही ने मेरी पीठ पर एक चाबुक भी मारा ( लकड़हारे ने अपनी पीठ दिखलाई )।

बीना ने अपने पति की पीठ पर हाथ फेरना चाहा; परन्तु लकड़हारे ने कहा—"सुन्दरी ! मैं नीच हूं; मैले-कुचैले वस्त्र पहिनता हूं मेरी पीठ को हाथ न लगा ?"

बीना—"नाथ ! आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपकी दासी हूं। ईश्वर ने मुझे आपकी सेवा के लिये भेजा है। जहाँ तक हो सकेगा मैं आपकी सेवा करूंगी।"

लकड़हारा—"सुन्दरी ! तेरी बातों से मुझे लज्जा आती है; मैं तेरे योग्य नहीं हूँ।"

बीना—"स्वामी ऐसी बातें न करो; इनसे मेरे मन को दुःख होता है। आप मेरे लिए चाँद हैं मैं चकोर हूं। आप मेघ हैं और मैं मोर हूँ। मैं न तुमको ग़रीब समझती हूं और न अपने को ग़रीब समझती हूं। मेरा भाग्य बुरा नहीं; मैं लाखों राजकुमारों से बढ़कर आपको समझती हूं। मुझको अपनी सेवा में स्वीकार करो; मेरे अधिकार को न छीनो। मैं आपकी अर्द्धांगनी हूं। ईश्वर की कृपा से आप स्वस्थ और निरोगी हैं; यदि आप कोढ़ी, या रोगी भी होते तब भी मैं रात-दिन आपकी सेवा करती और आपको देखकर जीती रहती।"

लकड़हारा—"सुन्दरी ! तेरी बातों में जादू है। मैं एक ओर अपने को देखता हूं और दूसरी ओर तुझको, तो आकाश पाताल का सा अन्तर दीख पड़ता है।"

बीना—"आप शर्माते क्यों हैं ! अपने शरीर से भला कौन शर्माता है !"

लकड़हारा—"यदि मैं न शर्माऊं तो क्या करूं ? मेरे पास खाने को एक टुकड़ा भी नहीं है।"

बीना—"जो कुछ आप अपने खाने में छोड़ देंगे, उसी पर मैं संतोष करूंगी।"

लकड़हारा—"वह भी तो मेरे पास नहीं है।"

बीना—"नहीं है तो न सही, मैं खुद हजार यत्न करूंगी, आपको खिलाऊंगी और खुद खाऊंगी।"

लकड़हारा—"राजकुमारी ! मुझ गरीब लकड़हारे को ऐसी बातें न सुना।"

बीना—"आप गरीब लकड़हारे नहीं हैं, मेरे लिए कुबेर हैं।"

लकड़हारा—"अच्छा ! अब तू खुद ही बता कि मैं क्या करूँ ?"

बीना—"नाथ ! आपके घर में एक विशेष प्रकार की सुगन्धि मालूम होती है; यह सुगन्धि किस चीज की है ?"

लकड़हारा—"चूल्हे में जो लकड़ी जल रही है, यह उसी की सुगन्धित है। यह लकड़ी मैं रोज जंगल से काट कर लाता हूं। एक बोझा लोभीलाल को दे आता हूं और कुछ यहां अपने लिये रख छोड़ता हूं।"

बीना—"यह तो चन्दन की लकड़ी है। इसका तो बड़ा मूल्य होता है। बतलाइये लोभीलाल कौन है और आपको क्या मूल्य देता है ?"

लकड़हारा—"लोभीलाल बनिया है। गट्ठे में सब लकड़ी ही ऐसी नहीं होती, परन्तु हां कोई २ अवश्य होती है। सब मिली-जुली मैं उसके यहां दे आता हूँ, वह बदले में मुझे खाने को दे देता है।

कभी-कभी खर्च के लिये कुछ पैसे भी दे देता है ।"

बीना—"कितने दिनों से तुम उसके यहाँ लकड़ी देते हो ?"

लकड़हारा—"पांच वर्ष के करीब हो गये ।"

बीना—"अच्छा अब पता लगा, लोभीलाल इसी से इतनी जल्दी धनी हो गया है । पहले तो वह बड़ा गरी था ?"

लकड़हारा—"मैं नहीं जानता था कि यह लकड़ी इतने अधिक मूल्य की होती है ?"

बीना—"आप कोई चिंता न करें, मैं लोभीलाल से सब दाम वसूल कर लूंगी और तुम देखते ही देखते अमीर बन जाओगे ।"

लकड़हारा—"रानी मैं अनजान आदमी हूं, मुझे इसकी कुछ खबर न थी, तू चतुर राजकुमारी है । ईश्वर ने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया कि तुझे लक्ष्मी रूप बना मेरे घर भेजा । अब मुझे निश्चय हो गया कि मैं निर्धन नहीं हूं । भला जिसके घर लक्ष्मी आवे, वह कैसे गरीब रह सकता है ? मेरे धन्य भाग्य हैं, मैं तेरी क्या पूजा करूँ ?"

वह अपना हाथ बीना के चरणों में लगाना चाहता है परन्तु वह पीछे हटा लेती है ।

बीना—"नाथ ! मेरा पैर न छूओ । मुझे पाप में न ढकेलो और कांटों में न घसीटो । मैं आपकी स्त्री हूँ, आप मेरे स्वामी हो । आपका धर्म हुक्म देना है और मेरा धर्म हुक्म मानना है । अच्छा यह तो बताओ कि आपने लोभीलाल से कभी यह भी कहा है कि मेरा हिसाब कर दो ?"

लकड़हारा—"यह तो मैंने कभी नहीं कहा ?"

बीना—"बहुत अच्छा ! आज तुम उसके यहां जाओ और कहो कि मेरी लकड़ियों का हिसाब कर दो । पीछे मैं भी आऊंगी । परन्तु तुम घबराना नहीं मैं पुरुष के भेष में आऊंगी और इस

बात का निबटारा करा दूंगी। तुम इसी समय जाओ, मैं शहर में जाती हूं। तुम्हारा घर मैंने देख लिया है। मेरे कान में मोती की बाली है इसको बेच कर मैं जरूरी सामान खरीद कर झोंपड़े में रक्खूंगी, पीछे लोभीलाल की दुकान पर पहुँचूंगी। तुम उस से डरना मत, जब तक मैं न आऊं तुम उससे बराबर बात-चीत किये ही जाना। मैं आते ही तुम्हारा सब हिसाब-किताब करा दूंगी।

———

## १८

# धमलू का स्वप्न

ये करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार॥

हाय! क्या करूं, क्या न करूं। चिंता का भी कोई पारावार है? क्या क्या स्वांग बनाया, कैसे-कैसे नाच नाचे, सत्यासत्य का भी भेद न रक्खा। भली-बुरी सब कुछ सुनी, राम-राम करके बेली हाथ आई, पर आते ही छिन गई। चील झपट्टे का तमाशा हुआ। यह आशा नहीं थी कि ज़ालिमसिंह इस तरह जुल्म करेगा। उसने कपड़े लत्ते तक उतार लिये, नंगा-बूचा बना दिया और कहीं का न रक्खा। हवाई क़िला खाक में मिल गया, बना बनाया खेल बिगड़ गया। क्या विचार था? कैसी आशायें थीं? परन्तु सनकाखून हो गया। दम के दम में नक्शा पलट गया। मन मार कर वह बेचारा बेली से जुदा हुआ, ज़ालिमसिंह ने तोते की नाईं आंखें बदल लीं, मानो कभी सम्बन्ध ही नहीं था। दुनिया भी एक अजीब जगह है। यहाँ इसी तरह काम होता है। कोई अपना नहीं, बेचारा अब जाए तो कहां? माता और स्त्री दोनों रुष्ट थीं और जली-कटी सुनाती थीं। अड़ोस-पड़ोस के

लोग हंसी उड़ाने को तैयार थे। किसी को मुंह दिखाए तो कैसे दिखाए। हाथी से उतर कर गधे पर चढ़ाया गया। लज्जा से मुंह ढके हुए चला। कुछ दूर जाकर एक पेड़ के सहारे बैठ गया। चित्त दुखी था, मुंह पीला पड़ रहा था, आँखों के सामने अन्धेरा था, चिंता के बोझ से दबा हुआ था। थोड़ी देर में वह बैठा-बैठा सो गया और स्वप्न देखने लगा।

किस्मत ! तू भी एक विलक्षण वस्तु है। धमलू को राजकुमार बनाकर फिर तूने उसे माली का माली कर दिया। धिक्कार है तुझको। राज सिंहासन पर बैठा कर इस प्रकार राख में लिटाना बस तेरा ही काम है। हाय ! माता को बुरा भला कहा। उस बेचारी ने क्या बिगाड़ा था जो व्यर्थ में उसे गालियां दे डालीं ? बेचारी ने नौ महीने पेट के अन्दर रक्खा, कितने दुःख सहन करके पाला-पोसा और अब बुढ़ापे में जवान लड़का उसके दुःख का कारण हुआ। कपूत, तू पैदा होते ही क्यों न मर गया। आशा यह थी कि बुढ़ापे में तू उसके काम आएगा, परन्तु राजकुमार बनने की लालसा में तूने उसके कलेजे के निर्दयता की छुरी से टुकड़े-टुकड़े कर दिये। मूर्ख ! अज्ञानी, क्या सन्तान से यही आशा की जा सकती है ? कदापि नहीं, यह सब किस्मत का फेर है। कर्म बली है, जो नाच चाहता है नचाता है। कभी रंगरलियां हैं तो कभी रंग में भंग है। एक बार मैं भाग्य को देख लूं, तो उसका मुंह नोचे बिना न छोड़ूं। ऐसी मार मारूं कि यदि उसे छटी का दूध याद न आ जाये तो मेरा नाम धमलू माली नहीं।

यह इसी प्रकार की बातें देर तक करता रहा। फिर देखता क्या है कि एक अत्यन्त सुन्दर युवती उसकी ओर आ रही है। उसके शरीर की दीप्ति और रूप लावण्य का वर्णन करना मनुष्य

की शक्ति से बाहर है। कमल नयनी, गज गामिनी सुन्दरी, मुंह पर आँचल डाले हुए उसके निकट आ पहुँची। ज्यों ही उसने अपना मुंह खोला. तो चन्द्रमा का सा प्रकाश हो गया। धमलू उसे देख कर भौचक्का सा रह गया और घबरा कर बोला—"सुन्दरी! तू कौन है? यहाँ क्यों आई है?"

"किस्मत—"मैं किस्मत हूं और तूने मुझे याद किया, इसी लिए आई हूं।"

धमलू—"मैंने तुझ को क्यों याद किया?"

किस्मत—"इस लिए कि तू मेरा मुंह नोचे और खसोटे। ले अब मैं आ गई, जो कुछ तुझ से हो सके कर ले। फिर न कहना कि मैंने किस्मत को बुलाया और वह न आई। अब मैं मौजूद हूं जितना तुझ से मारते बने मार, जिससे कि मुझे अपनी छटी का दूध याद आ जाए।"

धमलू—"नहीं! नहीं! तुझ पर कोई कैसे हाथ चला सकता है? मैंने योंही चिंता में अनाप-सनाप बक दिया था, भला मर्द भी कभी औरत पर हाथ उठाते हैं?"

किस्मत—"झूठे मक्कार! तू मर्द कब से बना? तुझको मर्द कौन कहता है? यदि तू मर्द होता तो तेरी विवाहिता स्त्री बेली को दूसरा कैसे छीन ले जाता? मर्द होता तो बेचारी मालिन को क्यों दुःख में डालता और अपनी माता का इतना अनादर क्यों करता? यह बातें मर्दों की नहीं होती। अरे नीच! तुझको शर्म नहीं आती। तेरी स्त्री को जालिमसिंह छीन कर ले गया और तू मुंह देखता रह गया। निर्लज्ज तुझ को चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिये। स्त्रियां तुझ जैसे नपुंसकों की सूरत से भी घृणा करती हैं। तेरी सूरत देखना उनके लिए पाप है। नराधम! किस्मत को दोष देते हुए तेरी जिह्वा कट नहीं पड़ती? किस्मत ने

तो तेरी इतनी मदद की, कि जिसका कोई हिसाब नहीं, पर तू घर आई हुई लक्ष्मी को भी नहीं रख सका।"

धमलू—"तू सच कहती है, पर इसमें भी तो किस्मत का ही दोष है। घड़ी में सुख, घड़ी में दुःख, मनुष्य बेचारा क्या करे ?"

किस्मत—"मूर्ख! तूने अब तक भी किस्मत का मतलब नहीं समझा ?"

धमलू—"किस्मत क्या है तू ही बता दे ?"

किस्मत—"जो काम मनुष्य श्रम और उद्योग से करता है उसके फल का नाम किस्मत है। जो जैसा करता है वैसा भोगता है। जो लोग बुद्धिमानी और दृढ़ता से काम करते हैं उनको अच्छा फल मिलता है और वे अच्छे किस्मत वाले हैं, पर जो मनुष्य श्रम और उद्योग नहीं करते उनको फल अच्छा नहीं मिलता और वे बुरी किस्मत वाले होते हैं। निःसन्देह तूने काम चालाकी से किया, परन्तु अन्त में पांव के बल फिसल गया। दूसरे आदमी तेरी दौलत छीन ले गये, तू दृढ़ नहीं रहा। यदि तुझमें कुछ भी दृढ़ता होती और कुछ भी उद्योग करता, तो जालिमसिंह को ऐसा साहस न होता और तुझे कहीं-न-कहीं से सहायता मिल जाती। क्या आश्चर्य था, मूर्ख रायसिंह ही तेरी सहायता करता, परन्तु तूने तो कुत्ते की तरह दुम दबाकर भागने में ही भलाई समझी। आज तू किस्मतको दोष देता है ? क्या तुझे यह कहते हुए शर्म नहीं आती ?"

धमलू—"तू सच कहती है, पर अब क्या करूं ? यह बात मुझको पहले नहीं सूझी।"

किस्मत—"फिर मुझे दोष क्यों देता है, अपनी करनी पर पश्चाताप कर ?"

धमलू—"हाय ! तू तो मेरे घावों पर नमक छिड़क रही है।"

क़िस्मत—"तू स्वयं ही अपनी मूर्खता से अपने घावों पर नमक छिड़क रहा है। जा, इन बिचारों को छोड़ दे और अपना काम कर।"

धमलू—"अब मुझसे यह नहीं हो सकेगा कि मिट्टी खोदूं और माली का काम करूं ?"

क़िस्मत—"तब जो जी में आवे सो कर, मैं तुझको क्या बताऊं ?"

धमलू—"अच्छा जो कुछ होने को था वह हो लिया, अब जो कुछ मैं तुझसे पूछूं उसका जवाब दे।"

क़िस्मत—"मैं तेरी बातों का जबाब देने नहीं आई हूँ, मैं तो तेरे हाथ से मार खाने आई हूं, और देखना चाहती हूं कि तुझ में कितना बल और पराक्रम है। देखूं तो सही तू मुझको कैसे पलट सकता है ?"

धमलू—"मैं बहुत लज्जित हूं, ऐसी बातें मत कर। क़िस्मत को किस ने पल्टा है भला ?"

क़िस्मत—"मूर्ख ! क़िस्मत को मर्द पलटते है, हीजड़े नहीं पलटते।"

धमलू—"हैं, क्या क़िस्मत भी पलटी जा सकती है ?"

क़िस्मत—"क्यों नहीं ?"

धमलू—"किस तरह ?"

क़िस्मत—"जिस तरह ग़रीबी को अमीरी से, कमज़ोरी को ज़ोर से, बुराई को भलाई से, अधर्म को धर्म से, बेइज्जती को इज्जत से पलटा जाता है।"

धमलू—"यह किस तरह ?"

क़िस्मत—"एक आदमी ग़रीब है परन्तु मनचला हैइढ़ता

से काम करने लगा। काम काज में धन मिल गया, निर्धनता जाती रही। दूसरा आदमी कमजोर है, दुबला-पतला है। अच्छा खाना खाने लगा, कसरत करने लगा, बदन में ताकत आ गई, कमजोरी जाती रही। तीसरा आदमी शराब पीता है, जूआ खेलता है। अनुभव कर के उसने उनको बुरा समझ लिया, आदत बदलने लगी, धीरे-धीरे पहली आदतें दूर हो गईं, अब वह भला बन गया। इसी तरह यह सब बातें किस्मत ही के पलटने की हैं। जो मर्द होते हैं वे अपनी बिगड़ी बना लेते हैं, परन्तु जो निकम्मे होते हैं वे हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते हैं और मक्खियाँ मारा करते हैं।"

धमलू—"अरे! यह तो आज नई बात सुनने में आई। क्या किस्मत अगले जन्मों का फल नहीं?"

किस्मत—"क्यों नहीं?"

धमलू—"जब अगले जन्मों के कर्मों का फल मिलता है तो फिर इस जन्म में कैसे भलाई हो सकती है?"

किस्मत—"जब क़िस्मत का बनना-बिगड़ना कर्म के आधीन है तो आज भी अच्छे कर्म करके आदमी बहुत कुछ अपनी दशा को सुधार सकता है। फिर जिसने जैसा किया, वैसा वह बन गया। जिसने जैसा सोचा, वह वैसा हो गया। अगर कर्म पहले जन्मों में सही था, तो अब उसको कौन गलत बना सकता है। जो बात कल सही थी, वह आज भी सही है। परन्तु शर्त यह है कि समझने वाला उसको समझे और जानने वाला उसको जाने।"

धमलू—"क्या कारण है कि कोई आदमी सुखी है, धनवान है, और कोई आदमी दुखी है और निर्धन है?"

क़िस्मत—"उनके कर्म।"

धमलू—"यह कर्म आज के हैं या पहले के ?"

क़िस्मत—"आज के भी हैं और पहले के भी हैं।"

धमलू—"यह कैसे हो सकता है ?"

क़िस्मत—"यह यों ही होता है।"

धमलू—"यह तो एक अजीब बात है। ज़रा इसे मुझे समझा दे, शायद इसके समझने से मेरा भला हो जाये।"

क़िस्मत—"तू अपने अगले कर्मों के संस्कारों के कारण माली के घर पैदा हुआ। झटपट बेलबूटे लगाने की विद्या प्राप्त कर ली। इस काम में तुझको कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। यदि अब इस जन्म में अधिक श्रम करता रहता, तो तुझ में विशेष योग्यता हो जाती और देखते-देखते तू कुछ-का-कुछ हो जाता तथा बड़ा आदमी बन जाता।"

धमलू—"क्या तेरा यह मतलब है कि मैं माली का माली ही बना रहूँ ?"

क़िस्मत—'मैंने ऐसा कब कहा ?"

धमलू—"फिर मैं किस तरह काम करूं ?"

क़िस्मत—"काम करने के हजारों, लाखों, करोड़ों उपाय हैं, एक दो हों तो कोई बतावे। अगर तू माली के काम में नई-नई उपज और नई-नई बातें निकालता जाता, तो तू भी इस काम में बड़ा आदमी हो सकता था।"

धमलू—"यह किस तरह ?"

क़िस्मत—"जिस तरह धमलू माली ने राजकुमारी के साथ विवाह करने का साहस किया, तो मन में उसी प्रकार के विचार पैदा होने लगे। विचारों के पैदा होते ही उसी प्रकार के साधन मिलते गए। कारण यह है कि प्रकृति में हर एक मनुष्य के भावों की रक्षा करने का गुण है। धमलू ने सफलता भी प्राप्त कर ली,

राजकुमारी भी उस को मिल गई, परन्तु मूर्खता से वह उस को खो बठा। यह कुछ भी हाथ पैर हिलाता तो उसकी क़िस्मत के पलटने में कुछ भी सन्देह नहीं था।"

धमलू—"राजकुमारी का मिलकर छिन जाना भी तो क़िस्मत ही है?"

क़िस्मत—'काम कर के अन्त में अपने आप काम बिगाड़ देना भी तो क़िस्मत है।"

धमलू—"यह तो अन्धेर है।"

क़िस्मत—"समझ समझ का फेर है।"

धमलू—"तो बात यह हुई कि आदमी चाहे तो अपनी किस्मत को भी पलट सकता है और उस पर जय भी प्राप्त कर सकता है।"

क़िस्मत—"अवश्य, इसमें सन्देह ही क्या है?"

धमलू—"तब तो मैं भी उत्साह करूंगा। चलता हूं किसी जगल में बैठकर योग साधन करूँ। सिद्धि शक्ति आएगी तभी काम बनेगा, बिना सिद्धि के कोई काम नहीं होता।"

क़िस्मत—"मुबारक हो। परन्तु देखो, साच समझ कर काम करना, ऐसा न हो कि फिर पीछे पछताना पड़े।"

धमलू—'जब तू खुद ही कहती है कि क़िस्मत को पलटा जा सकता है, तो मालूम हुआ कि आदमी जबर्दस्त है और किस्मत कमज़ोर है। खड़ी रह, अब तेरी बातों से मुझ में नई हिम्मत आ गई, अब मैं तुझको पकड़ कर इसी वक्त अपने आधीन करूंगा। देखूँ कौन ज्यादा बलवान है?"

धमलू ने उठ कर किस्मत को पकड़ना चाहा, परन्तु वह उल्टे पाँव भाग निकली। इतने में आंख खुल गई। जो कुछ देखा, सब स्वप्न था, और जो कुछ सुना वह भ्रम था। धमलू चिन्ता में डूब

गया और अपने मन में कहने लगा—क्या कहूँ कुछ समझ में नहीं आता ? यह स्वप्न था या क्या था ? कैसी अते-पते की बातें हुईं, जिनका कहीं ख्याल भी नहीं था। सब सच्ची,झूठ का नाम भी नहीं। बातें थी या आकाश बाणी ? मेरे दुःख दर्द की हालत में देवताओं ने सहायता की, आगे के लिये मार्ग बतलाया। अब घर को कौन जाए, जिसको छोड़ा उसको छोड़ा, अब थूके हुए को क्या चाटूं। चूल्हे में जाए जोरू, भाड़ में जाये मां, अब अगर जाता हूं तो और भी खराबी है। शर्म उठानी पड़ेगी और बदनामी होगी। इससे तो यही अच्छा है कि फकीर बन कर चैन से मजे उड़ाऊं। जो आवेगा वह मुफ्त में मालपूवे और हलुवा दे जायेगा। टके पैसे भी मिलेंगे और मान बडाई भी होगी।

यह सोचकर धमलू माली बन की तरफ चल दिया।

---

## १६

# भटियारी

धोके धोरे सब गए, किया न गुरु का साथ।
कबिरा जन्म बिगाड़ लिया, अब क्या आवे हाथ ॥

चार बजे दिन का समय है। रायसिंह के नगर के निकटवर्ती सराय में थके मांदे यात्रियों के समूह के समूह चले आ रहे हैं। कोई अपने बैलों को पानी पिला रहा है, कोई घास और चारे के उद्यम में है। कोई चूल्हा जलाकर रोटी पकाने की धुन में है। सराय में एक प्रकार का नया जीवन सा आ गया है। तरह तरह के मनुष्य अपने-अपने स्वार्थ के लिये उसके गिर्द चक्कर लगा रहे हैं।

पाठशाला के विद्यार्थियों को जो अवकाश मिला, तो मन बहलाव के लिये काख में पुस्तकें दबाए हुए सराय में आ डटे। बालक चपल होते हैं। उनके दल में दो चार मन चले हंसमुख बालक भी थे। परस्पर सलाह करने लगे, चलो आज फिर भटियारी की खबर लें, उसको छेड़ें। इसमें कोई संशय ही नहीं कि वह झींखेगी, गालियां देगी और यारों की दिल्लगी रहेगी।

यह सलाह करके वे भटियारी के सन्मुख जा पहुँचे।

एक बालक—"भटियारी ! आज हम लोगों को भी सराय में रहने देगी कि नहीं ?"

भटियारी—"कोठड़ियां बहुत खाली पड़ी हैं। जिस यात्री का जी चाहे आकर रहे। एक रात का किराया प्रति कोठड़ी एक आना है।"

बालक—"परन्तु हम तो किराया देने वाले नहीं हैं ?"

"भटियारी—"तब तुम्हारे लिये सराय में कोठरी भी खाली नहीं है।"

दूसरा बालक–"सुनो बीबी ! हम लोग पाठशाला के विद्यार्थ हैं। हमको पंडित बिना पैसे लिये पढ़ाते हैं, बिना पैसे पुस्तकें देते हैं, बिना कुछ लिये ही भोजन देते हैं। क्या एक रात के लिये मुफ्त में अपनी कोठरी न दोगी ?"

भटियारी—"जब तुम को सब वस्तु बिना पैसे के मिलती हैं तो रहने के लिये मकान भी मुफ्त ही होगा। सराए मुफ्त खोरों के लिये नहीं है।"

बालक—'यह सत्य है, परन्तु आज तो हम को यहां ही रहना है और हम लोग बिना किराया दिये ही रहेंगे।"

भटियारी—'यह वह गुड़ नहीं कि मक्खी ही खा जाये। यहां तुम्हरी दाल नहीं गलेगी।"

बालक—'दाल न गले न सही, हम खटाई चटनी से ही रोटी खा लेंगे ! वाह बीबी भटियारी ! अब तक तो कोठड़ी ही की बात थी, अब जान पड़ता है कि तुम हमारे खाने पीने का भी प्रबन्ध करोगी।"

भटियारी—"चलो, चलो ! अपना धन्धा देखो, मुझे और भी बहुत से काम काज करने हैं। जाओ किसी धर्मशाला में पड़ रहो।"

बालक—"भटियारी सुनो ! तुम सबसे किराया नहीं लेती क्या ? माना कि तू डायन ही सही, परन्तु डायन भी तो एक दो घर छोड़ देती है।"

भटियारी का स्वभाव बड़ा क्रोधी था। डायन का नाम सुनते ही बिगड़ खड़ी हुई—"जाओ, नहीं तो इतनी गालियाँ दूंगी कि ठीक हो जाओगे। मुझको डायन कहने आए हैं, डायन तुम्हारी नानी होगी।"

बालक—"हां, हां, भटियारिन ! गालियाँ ही दो; हमको तो जो कुछ दोगी वह प्रसन्नता से ले लेंगे। यह तो बताओ कि गालियाँ मीठी होती हैं या कड़वी ? उनसे अजीर्ण और संग्रहणी तो नहीं हो जाती ?"

भटियारी—"तुम कौन लोग हो जो यहां लड़ने को आये हो। अपना रास्ता देखो, मुझ से झगड़ा न करो।"

बालक—"हम तो यात्री हैं। रात को यहां रहेंगे और भोर हुए चले जायेंगे।"

भटियारी—"परन्तु यहाँ तुमको रहने कौन देगा ?"

बालक—"तुम रहने दोगी, और किसी से हम थोड़ा ही कह रहे हैं ?"

भटियारी—"सौ बातों की एक बात यह है कि न मैं तुमको यहाँ रहने दूंगी, न टिकने दूंगी। जो यूं ही बात बढ़ाओगे तो फिर पीछे पछताना होगा।"

बालक—"पछताना पड़ेगा तो हम पछताएंगे, यह बात ही कौन सी है। इस समय तो हम तुम्हारे यहां अतिथि आयेहुए हैं।"

भटियारी—"(क्रोध से) वाह रे, तुम कौन हो जो यूंही मेरे साथ उलझते हो ? तुम तो यात्री भी नहीं जान पड़ते, तुम यहां आये क्यों हो ?"

बालक—"हमने सुना था कि सराय की भटियारी हवा से बातें करती है, हम भी बात सुनने आ गए। हमने सुना कि भटियारी बड़ी भली और सुशील है, जी में आया कि चलकर थोड़ा देख तो आएँ कि कैसी है ?"

भटियारी—"अच्छा अब तुमने देख भी लिया और बात भी सुन ली, अब जाओ तुम्हारी बातों से मेरा काम बिगड़ रहा है।"

बालक—"हम तो जाने वाले को ही कुछ कहते हैं, आज रात तो यहां से जाने की सौगन्ध है।"

भटियारी—"वाह ! मान न मान मैं तेरा मेहमान। जाओ, नहीं तो अभी बता दूंगी।"

बालक—"हाँ, हां, तो बता दे ! यही तो हम चाहते है ?"

भटियारी के क्रोध का पारा चढ़ने लगा। उसने बहुत चाहा कि क्रोध को रोकूं, परन्तु कहां तक रोकती, क्योंकि चंचल बालक उसे छेड़ने की ठान कर के ही आये थे। उसके मुंह से गाली निकल गई। अब तो लड़कों की बन आई। एक बालक मुस्कराया और कहने लगा—"देखो भटियारी ! हम लोग अभी लड़के हैं, हमारे साथ तू दिल्लगी न कर। मुंह में दाँत न पेट में आंत, तू बुढ़िया है, शैतान की मौसी ! लड़कों से क्यों उलझती है ?"

भटियारी—"चले जाओ, शैतान की मौसी तुम्हारी नानी और दादी होगी।"

बालक—"बहुत अच्छा ! मौसी न सही भूआ सही।"

भटियारी—"तुम्हारी अम्मा होंगी उसको जाकर कहो। कतरनी की तरह जबान चलती है, कुत्ते कहीं के !!!"

क्रोध से आग बबूला हुई भटियारी लगी गालियां बकने। भटियारी की चिल्लाहट सुन कर बीसियों आदमी वहाँ इकठ्ठे हो

गए। मेला लग गया। इतने में सराय का भटियारा आ गया। पूछने लगा—"क्या बात है? भटियारी रो-रो कर अपनी बीती सुनाने लगी, कि यह लड़के यूं ही मुझे छेड़ रहे हैं और गालियां देते हैं।

भटियारा—"(लड़कों से) क्यों भाई! बुढ़िया ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? क्यों उस को छेड़ते हो?"

बालक—"अजी हम क्यों छेड़ते। तुम जानते हो कि सराय में तरह-तरह के लोग आते हैं। हम लोगों ने सोचा, चलो थोड़ा देख तो आएं, नई नई बातें सुनने में आएंगी। हम लोगों ने इस से आ कर पूछा—"बीबी भटियारी! कुछ राज दरबार की भी खबर है? बस यह बिगड़ खड़ी हुई। हमारा अभिप्राय तो केवल यह था कि राजा ने बीना का विवाह किसी लकड़हारे से किया है, भटियारी जानती होगी। किन्तु यह जल कर गुस्से से कोयक हो गई।"

भटियारी—"कोयला तुम्हारी नानी दादी होगी। एक बात कहोगे तो दस सुनाऊँगी।"

बालक—"तू इतनी तीखी क्यों होती है। तू तो सिर पर आकाश उठाए हुए है, और अपने पीछे उल्टी गंगा बहाए हुए है।"

भटियारी—"लड़को! तुम नहीं मानोगे? गंगा बहाए तुम्हारी नानी, मासी। इन निखट्टुओं को अपने घर में स्थान नहीं है, जो यहाँ आकर मुझ को गालियाँ सुनाते हैं?"

बालक—"बीबी भटियारी! जो कुछ कहती है तू ही कहती है—तुम्हारा मुंह क्या है बस आटा छानने की चलनी है। एक मुंह से सैकड़ों बातें निकलती हैं, कोई किस किस का उत्तर दे?"

अब तो भटियारी बहुत ही बिगड़ी। दो तीन डेले मारने को उठाए। अन्त में चल ही तो दिये। लड़के सावधान थे। वे तो

हट गये, पर कई यात्रियों को ढेले लगे। वे लोग चिल्लाने लगे। सब के सब भटियारी की ओर दौड़े। सराय में प्रलय सी मच गई। जिसको देखिये वही चिल्ला रहा है, और लड़के हैं कि उनकी हंसी रुकती नहीं। हंसते हंसते लोटन-कबूतर बने जाते हैं। भटयारे को पहिले भटियारी का पक्षपात था, अब उसके मन में यह बात बैठ गई कि हो न हो सारा दोष इसी स्त्री का है। और जब वह बुरा-भला कहता हुआ उस को समझाने लगा, तो वह उसके साथ लड़ खड़ी हुई। पति-पत्नी का संग्राम बड़ा विचित्र था। अन्त में भटियारी तंग आकर कोठरी में भाग गई और कोने में दुबक कर रोने लगी। भटियारे ने सब से क्षमा माँगी। बालकों को समझाया। बड़े यत्न से सराय में शांति हुई।

यह संसार ऐसा है कि अपराध करे कोई, दण्ड भरे कोई। उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।

भटियारी—"क्यों जी! तुम क्या कहते थे?"

बालक—"हम तो कुछ भी नहीं कहते थे।"

भटियारा—"नहीं! नहीं!! अभी तुम राजकुमारी बीना के विवाह की चर्चा कर रहे थे ना।"

बालक—"हाँ! हां!! याद आया। क्या अन्धेर है। बीना जैसी सुशील कन्या और लकड़हारे के साथ ब्याही जाये, बड़ा अन्धेर है। महा अन्याय हुआ। अब इस नगर पर कोई भारी विपत्ति अवश्य आयेगी। राजा ऐसे पागलपन का काम करे, आंखों देखा, न कानों सुना?"

भटियारा—"प्रारब्ध है प्रारब्ध! जो जी चाहे सो प्रारब्ध करे।"

बालक—"यह प्रारब्ध नहीं है, अहङ्कार है। परन्तु बड़ों की

बात कोई कहे तो क्या कहे और किस से कहे ? यह सब रानी का ही दोष होगा। सौतेली माँ विष की गांठ होती है। अपनी कन्या तो राजकुमार को ब्याह दो और सौतेली लकड़हारे के हाथ दे दी।"

भटियारा—"नहीं जी ! नहीं, तुम सारी बात को नहीं जानते। जिसको जोधपुर का राजकुमार समझा गया था, वह तो धमलू माली निकला। परन्तु इस बात का राजा रानी को तनिक भी पता नहीं है। देखो, परमात्मा कैसा न्यायकारी है। जो औरों के लिये कुँआ खोदता है वह स्वयं कूंए में गिरता है। जो लोग कहते हैं कि परमेश्वर सोया हुआ है, वे भूल में हैं। जो जैसा करता है, वह वैसा ही भरता है।"

बालक—' यह तुम क्या कह रहे हो, धमलू माली को तो हम भी जानते हैं। राजा रानी की बुद्धि पर कैसा पर्दा पड़ गया? जब ऐसे राजा देश में होते हैं तब देश नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। परन्तु यह बात शायद ग़लत होगी ?"

भटियारा—"गलत कैसे होगी, मैं अभी-अभी सारा हाल सुने चला आ रहा हूँ। धमलू माली के घर में घोर कलह क्लेश हो रहा है। उसकी बूढ़ी मां और जोरू ने मातम मना रक्खा है। धमलू अलग एक मकान में उतरा है, जहां राजकुमारी भी बैठी है। वहाँ भी शोर मच रहा है। कोन जाने अब तक वे सब लोग वहां हैं या भाग गए ? क्योंकि डर है, जिस समय राजा सुनेगा तो कठोर दण्ड देगा। बात झूठ नहीं है। देखो जगत में कैसा अनर्थ होता है कि बड़ों की बुद्धि भी मारी जाती है। भला इस पर किसको विश्वास आवेगा। परंतु जो कुछ मैं कहता हूँ सत्य है।"

जब ये बातें हो ही रही थीं, कि बहुत से मनुष्य वहाँ इकट्ठे हो गये थे और भटियारी ने भी सुनीं। क्या तो रोती थी या दौड़ कर आई और अपने पति का हाथ पकड़ कर वहां से उडा ले

गई। वह कहती थी—"सराय में ऐसी बात नहीं करनी चाहियें, कहीं राजा सुन पावेगा तो आफत मचावेगा।"

भटियारी का उपदेश फलीभूत हुआ। सब लोग अपने-अपने काम में लगे और विद्यार्थी भी अपनी-अपनी पोथी-पत्रा काख में दबाए घरों को रवाना हुए।

———

## २०

# लोभीलाल की दुकान

गरज़ मन्द बावला होता है। बावला नहीं बल्कि सच्चा होशियार होता है। वह जब सोचेगा, ग़रज़ ही की सोचेगा। वह न किसी के पास जायेगा और न किसी को अपने पास फटकने देगा। लोभी लाल सिर से पाँव तक स्वार्थ का पुतला था और जब से लकड़हारा काठ के उल्लू की तरह उस के जाल में फंस गया था, तब से तो वह स्वार्थ का साक्षात रूप ही बन गया था। लोग समझते होंगे कि वह लकड़हारे की तरफ से बेपरवाह होगा। परन्तु नहीं, वह उसे इस तरह याद करता था जिस तरह कोई ईश्वर को याद करता है। हर समय उसी के नाम की माला फेरता रहता था। अगर कहीं किसी कारण से उसे जाने में तनिक भी देर हो गई, तो उसके प्राण निकल जाते थे। कहीं ऐसा न हो कि सोने की चिड़िया फुर से उड़ जाये। कथा कहानियों में जो सोने के अण्डे देने वाली मुर्गियों का जिक्र किया जाता है वह तो गप्प है, किन्तु वास्तव में यदि किसी को सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी मिली तो वे हमारे मित्र लोभीलाल जी ही थे।

जिस दिन विवाह हुआ तो लकड़हारे का आने में देर हो गई। उस दिन लोभीलाल की चिन्ता की कोई सीमा नहीं थी। उसके होश उड़े हुए थे। वह अपने मन को समझा रहा था कि ऐसा तो कभी हुआ नहीं, देर-सवेर कभी-न-कभी आ ही जाता था, आज क्या हो गया जो अब तक नहीं आया? कहीं किसी और के झांसे में तो नहीं आ गया? परन्तु वह किसी के झांसे में आने वाला तो नही था, फिर उसे हुआ क्या? अब तक तो उसे आ जाना चाहिये था। कहीं कमबख्त मर तो नहीं गया?

चाहे मरे चाहे जीये, लोभीलाल का तो उस बेचारे ने घर माल से भर दिया। टटपूंजिया बनिया मालामाल हो गया, मर जाये तो और भी अच्छा। काम तो निकल गया, जीता रहा तो शायद कभी उसको सूझ आ जाये। लोभीलाल इसी चिन्ता में था कि इतने में एक सुन्दर युवक उस की दुकान पर आया और कहने लगा—"सेठ जी! मुझे चन्दन की लकड़ी की आवश्यकता है, क्या आप दे सकते हैं? नमूना मेरे पास है, मुझे इसी किस्म की लकड़ी चाहिये।"

लोभीलाल—"(नमूना देखकर) जी हां! मेरे यहां इस किस्म की लकड़ी है।"

युवक—"किस भाव से बेचते हो?"

लोभीलाल—"बाज़ार में लकड़ी ४) सेर मिलती है। यदि आप थोक में लेंगे तो हम दो-चार आने घटा देंगे, अधिक की गुन्जाइश नहीं है।"

युवक—"सेठजी! तुमने मुझ को निरा मूर्ख ही समझा है। सब आदमियों के साथ एक सी बात चीत नहीं की जाती? हम लोग व्यापारी हैं। करोड़ों रुपयों का माल मोल लेते रहते

हैं, हम से सेरों का भाव न करके मनो का कीजिये ।"

लोभीलाल युवक की बात सुनकर दंग रह गया । उसने समझा यह और भी अच्छा है, सारा माल झटपट निकल जायेगा ।

लोभीलाल—"रुपया नक़द लेंगे ?"

युवक—"आप भी बड़े भोले आदमी हैं । क्या आपको इतनी भी समझ नहीं, कि क्या मैं इतनी दूर से बिना रुपये के ही चला आ रहा हूं ?"

लोभीलाल—"आप की दुकान का क्या नाम है और कहाँ दुकान है ?"

युवक—"तुमने कर्म चन्द धर्म चन्द का नाम सुना होगा ? उनकी कोठियाँ कितनी ही जगह हैं । हम उन्हीं के गुमाश्ते हैं ।"

लोभीलाल—"हां, हां, हमारा तो उनके साथ लेन-देन भी है । उनकी सूरत वाली कोठी का मुनीम प्रायः यहाँ आया-जाया करता है ।"

युवक—"अच्छा ! अब कृपा करके यह बतलाइये कि आप कितना भाव दे सकते हैं ?"

अभी लोभीलाल ने युवक की बात का उत्तर भी नही दिया था कि वही सोने की मुर्गी (लकड़हारा) दिखलाई दी । काटो तो बदन में लोहू नहीं, खून खुश्क हो गया । अरे, यह कमबख्त इस वक्त कहां से आ गया ? नौजवान की बात का उत्तर देने के बदले लकड़हारे से बोला—"अरे, इतनी देर कहाँ लगाई और लकड़ी क्यों नहीं लाया ?"

लकड़हारा—"क्या अभी तक लकड़ी से आप का पेट नहीं भरा ? कितने दिनों से लकड़ी देता हूँ, न हिसाब न किताब । आज मेरा हिसाब चुकता कर दो, फिर पीछे देखा जायेगा ।"

लोभीलाल—"हें, कैसा हिसाब ? हाँ समझा, रोटी को कहता

होगा। अच्छा चल तुझ को खाने को दिला दूं। आज कुछ पहिनने के लिये फटे-पुराने कपड़े भी दे दूंगा। शोर न कर, देख यह सौदा खरीदने आये हैं ?"

लकड़हारा--"मैं एक भी न सुनूंगा और आज हिसाब लेकर ही टलूंगा।"

युवक—"(लोभीलाल से) इस गरीब का हिसाब ही पहिले कर दो, पीछे मेरे साथ बात चीत करना। मुझे ऐसी जल्दी नहीं है।"

लोभीलाल—"अजी यह तो पागल हुआ है, इसका क्या हिसाब ? खाने के लिये कुछ माँगता है सो दिलवा दिया जायेगा। यह गंवार आदमी है इसे बात-चीत करने की क्या तमीज़ ?"

लकड़हारा--"जी हां ! मैं तो गंवार और पागल आदमी हूँ। पागल न होता तो पाँच वर्ष से लकड़ियाँ रोटियों पर क्यों देता रहता। बात तो सच्ची है, मगर अब हिसाब कर दो।"

लोभीलाल—"तेरी मत मारी गई है क्या ? कैसा हिसाब ? अगर कुछ रोटियां की जरूरत हो तो चल दिला दूं ?"

लकड़हारा—"सेठ जी ! वर्षों से मनों चन्दन मैं आप को दे रहा हूं, क्या उसका मूल्य केवल रोटी ही है ? भला इस से भी ज्यादह अन्धेर कहीं होगा ?"

अब तो लोभीलाल के हाथ पांव फूल गये और उसने अपने छोटे लड़के को बुलाकर कहा—"जाओ आपको सामान दिखला-लाओ।" युवकलड़के के साथ माल देखने चला गया और पीछे से सेठ लकड़हारे को ऐंडी-बेंडी सुनाने लगा। लकड़हारा चुप था। वह इस बात की बाट देख रहा था कि युवक व्यापारी माल देख कर कब लौटे। उसके आते ही उसने कहा—अजी

मुझ गरीब का फैसला करा दीजिये, आप की बड़ी कृपा होगी।"

युवक—"लोभीलाल ! मैंने माल देख लिया, अन्दाजा भी लगा लिया। आधा माल मैं ले लूंगा। मैं अभी थोड़ी देर में आता हूं इतने में तुम इस से निपट लो।"

युवक आस-पास की दूकानों में गया और उन पर से पाँच-सात आदमियों को अपने साथ ले आया। उस समय तक लकड़हारा और लोभीलाल आपस में लड़ते-झगड़ते रहे। सेठ-साहूकारों को आते देख कर लोभीलाल ने चाहा कि किसी तरह लकड़हारे को टाल-मटोल बता दूं, परन्तु वह कब सुनने वाला था। इतने में वह लोग दूकान पर आ ही गये। राम राम, जयगोपाल के बाद जब सब लोग बैठ गये तो लकड़हारे ने फिर दुहाई मचानी शुरू की और कहने लगा—"सेठ साहबो ! पाँच वर्ष हो गये किन्तु सेठ लोभीलाल मेरा हिसाब नहीं करते, व्यर्थ में इन्होंने मुझे तंग कर रक्खा है।"

सागरमल—"( एक सेठ ) कैसा हिसाब ?"

लकड़हारा—"अजी पांच वर्ष से मैं इनको लकड़ी दे रहा हूं। जिस में मनों लकड़ी चन्दन की आई है, परन्तु इन्होंने एक पैसा भी नहीं दिया।"

उजागर मल—( दूसरा सेठ ) "बड़ी विलक्षण बात है।"

दुनीचन्द—( तीसरा सेठ ) "हिसाब क्यों नहीं होता ?"

गुणीचन्द—( चौथा सेठ ) "शायद पंचायत करनी पड़ेगी ?"

लोभी लाल चौकन्ना हो गया और बोला—"क्यों सेठ जी, पंचायत किस बात की ?"

सागरमल—"इस गरीब लकड़हारे के हिसाब की।"

लोभीलाल—"इसका हिसाब ही क्या है ? थोड़ा बहुत जो कुछ यह मांगेगा, इसे दे दूंगा।"

उजागरमल–"तुम थोड़ा बहुत कहते हो और यह तो हजारों का हिसाब बताता है ?"

लोभीलाल—"यह झूठा है।"

दुनीचन्द—"भाई लोभीलाल ! माल तो तुमने खूब मारा। पांच वर्ष हो गए, पता ही नहीं चला था कि कहां से तुम्हारे घर दौलत फूट पड़ी। अब जाकर हाल खुला है।"

गुनीचन्द—"वाह ! क्या कहने। ऐसा हाथ मारा कि पांचों उंगलियां घी में। किसी का काहे को ऐसा दांव चला होगा ?"

सागरमल—"भला कितने मन लकड़ियां लाया होगा यह ?"

लोभीलाल—"कुछ थोड़ी सी दे जाता था।"

लकड़हारा—"सेठ जी ! राम से डरो, क्यों झूठ बोलते हो ? सारा तो मकान चन्दन की लकड़ियों से पटा पड़ा है। क्या तुमको ऐसा कहना चाहिए ?"

उजागरमल—"क्यों लोभीलाल ! इसका हिसाब करते हो कि पंचायत इकट्ठी की जाए और राजा के प्रधान दीवान को खबर दी जाये। मामला बड़ा विकट है, सोच लो।"

लोभीलाल–"जो कुछ आप चाहें, सो करदें। बात का बतंगड़ बनाने से क्या लाभ ?"

लोभीलाल ने कहने को तोबात कह दी, मगर दिल मसोस कर रह गया। आंखें पथरा गईं, पाँव के तले की जमीन खिसक गई। काठ का उल्लू तो बोलता हुआ लाल और सोने की चिड़िया राजहंस निकला।

दुनीचन्द–"अच्छा कितना माल है तुम्हारे पास ?'

लोभीलाल–"यही दस बीस मन।"

युवक–"सेठ जी ! इतना झूठ ? मैं तो खुद आपका माल देख कर आया हूँ। क्या कहें यदि कहीं अदालत हुई तो व्यर्थमें मुझको

भी गवाही में घसीटोगे ?"

लोभीलाल के कलेजे पर छुरी चल रही थी। मुंह से बात नहीं निकलती थी। उसने सोचा, हो न हो इसमें कुछ भेद है। ये सबके सब लकड़हारे के षडयन्त्र में शामिल हैं। अगर मैं जरा भी इन से विरुद्ध होता हूँ तो मुकदमे को बढ़ा देंगे और मुझ को न केवल रुपये का ही नुकसान उठाना पड़ेगा, बल्कि बदनामी भी मिलेगी तथा शायद बेइज्जती के साथ शहर से निकाला जाऊं। कौन जाने यह लकड़हारा कैसा आदमी है ? पढ़ा लिखा बेवकूफ बना हुआ है। कहने लगा-"भाई मैं अब कुछ न कहूंगा, जो तुम्हारे जी में आए करो।'

अभी लोभीलाल की बात चीत खत्म भी नही हुई थी कि नौजवान सौदागर ने अपना सिर खुजलाना चाहा। पगड़ी नीचे उतारी तो बाल बिखर गये और लोभीलाल ने देखा कि यह तो औरत है। पहिचान गया। बोला—"राजकुमारी बीना!"

बीना-"हां जी, लोभीलाल सेठ।"

लोभीलाल-'तुम यहाँ कहाँ ?"

बीना-"जहां मेरा स्वामी वहीं मैं। ये जो लकड़हारे की सूरत में तुम्हारे सामने खड़े हैं मेरे पति, मेरे सरताज और मेरे प्राणाधार हैं। जहां पुरुष रहता है वहीं स्त्री रहती है। जहां वृक्ष है वहीं छाया है। मैं जान गई थी कि तुम सीधे से इनको हिसाब न दोगे, इस लिये मैंने जान बूझ कर यह भेष धारण किया और पहले तुम्हारे माल को जाँच लिया. तब इन सेठों को पंचायत करने के लिये बुला लाई। तुमने मेरे स्वामी के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया है तुमने समझा था कि माल योंही हजम हो जायेगा, परन्तु तुम्हारा पेट इतना बड़ा नहीं है कि सब का सब उसमें समा सके।"

लोभीलाल—"अच्छा, जो कुछ हुआ सो हुआ। तुम राजकुमारी हो, राजकन्या का सारी प्रजा आदर करती है। बिना हिसाब किताब किये हुए ही एक अच्छी रकम तुम्हारी भेंट करता हूं।"

बीना—"नहीं इसकी जरूरत नहीं है। हिसाब जरूर किया जायेगा, नहीं तो पता कहां से लगेगा ?"

सागरमल—"सत्य वचन ! ऐसा हो होना चाहिये।"

दुनीचन्द—"बेशक, इससे फिर किसी को पीछे शिकायत करने का मौका न रहेगा।"

गुनीचन्द—"मगर जो कुछ हो, आज ही हो। कल पर न टाला जाए !"

लोभीलाल—"अगर मैं कहूँ कि आज समय नहीं, तो क्या होगा ?"

सागरमल—"राजकुमारी बीना दीवान साहिब के पास जाकर खबर करेगी और फिर अदालत में इस का फैसला होगा।"

उजागरमल—"यह न समझना कि राजकुमारी की बात न सुनी जायेगा, यह फिर भी राजकुमारी है। और न भी हो तो अदालत न्याय तो करेगी ?"

दुनीचन्द—"उस वखत लोभीलाल का क्या हाल होगा ?"

गुनीचन्द—"बात बिल्कुल साफ है। एक दिन की लकड़ी तोलकर पाँच वर्ष के हिसाब की उस से कीमत लगाई जायेगी। जो कुछ कीमत वसूल हुई है उसका सैंकडे के हिसाब से लोभीलाल को कमीशन मिलेगा। माल राजकुमारी के सुपुर्द होगा। यह बनी बनाई बात है।"

लोभीलाल—"बाप रे बाप ! हाय रे गजब ! मैंने ऐसा नहीं सोचा था। अच्छा भाई तुम ही इसका फैसला कर दो, मामले को अधिक न बढ़ाओ।"

अन्त में चारों सेठों ने मिला कर सब का मूल्य लगाया और बहीं खाते को मिलाकर कई हजार का हिसाब बनाया। उनकी इच्छा थी की तीन चौथाई रुपया तो लकड़हारे को दिलाया जाये और एक चौथाई लोभीलाल को मिले तथा बिना बिका हुआ माल बीना का ठहराया जाए। मगर बीना ने कहा–"लोभीलाल मर जायेगा। आधा उसका, आधा मेरे स्वामी का। यह भी कई हजार होते हैं। और माल का आधा मूल्य मेरे स्वामी को दिलाया जाए। सब को यह पसंद आया और सब के देखते देखते लकड़हारा कई हजार का स्वामी भी बन गया।

## २१

# भाग्य का खेल

तानसेन जिस समय बेली को साथ लेकर भागा तो कई मील की दूरी पर जाकर उसने दम लिया। 'चोर की दाढ़ी में तिनका' उसके दिल में भांति-भांति के कुत्सित विचार पैदा होने लगे। बेली सुन्दर थी, बनाव शृंगार का भी बहुत ध्यान रखती थी। उसने सोचा अगर इसको नाचने-गाने की शिक्षा दी जायेगी तो यह अपने ढंग की निराली ही निकलेगी तथा इसके गुण के कारण बहुत कुछ माल हाथ लग जाएगा। वह भागा चला जा रहा था। परन्तु उसके दिल में नाना भांति के विचार उठ रहे थे। उसने सोचा कि जब दो लड़ने वाले किसी वस्तु पर लड़ते हैं तो दोनों उससे वंचित रहते हैं, कोई तीसरा ही उसका मालिक बन जाता है। मेरा भाग्य खुल गया। धमलू तो यों मारा गया, जालिमसिंह को वह चकमा दिया कि बच्चा जीते जी याद रखेंगे तथा बेली मेरे हाथ लगी। परन्तु भय इस बात का था कि कहीं जालिमसिंह उसकी तलाश में न आ रहा हो। बेईमान तथा धोकेबाज आदमी अपनी परछाईं से भी डरते हैं।

अन्त में दोनों एक नदी के किनारे पहुंचे । बेली थक गई थी । उसने कहा—"मुझसे चला नहीं जाता, पाँव मन-मन भर के हो गये हैं। यह कह कर वह दुःखिनी एक जगह बैठ गई। घण्टों से उसे कुछ खाना नहीं मिला था । भूख-प्यास सताने लगी। नदी का पानी पीया और व्याकुल होकर भूमि पर हीं लेट गई। हा भाग्य, तेरी लीला विचित्र है। तू जो चाहे सो करे, तुझ पर किसी का ज़ोर नहीं । कहाँ राज भवन की रहने वाली राज कुमारी और कहां पैदल सफ़र का दुःख । हा ! किस को आशा थी कि लाड़-प्यार से पली हुई बेली इस प्रकार विपत्ति का भार उठाएगी और भिखारिन की भाँति बन-बन घूमती फिरेगी।

भूमि पर पड़ते ही उस बेचारी को नींद आ गई और सो गई। तानसेन चाहता था कि किसी तरह चार कोस और आगे बढ़ चलें। उसने उसके जगाने की कोशिश की, परन्तु वह तो पत्थर की भांति बेसुध हो रही थी । वह भी थका मांदा था, वहीं पड़कर सो गया। दोनों गाढ़ी निद्रा में अचेत थे, तन-बदन की भी सुध नहीं थी।

उधर जालिमसिंह को जब धमलू माली से छुट्टी मिली तो उस को बेली की याद आई। उस को तो पहले से ही तानसेन भगा ले गया था। इधर-उधर तलाश की, परन्तु वह कहां हाथ आने लगी थी। उसने घबराहट में अपने मित्रों को वहां ही छोड़ा और अकेला उसकी खोज में चल दिया । रेतीले मैदान में पांवों के चिन्ह अकसर भागने वालों का पता बताते हैं। इन दोनों के पांवों के चिन्ह देखता हुआ वह कई घण्टों में वहां पहुंचा, जहां ये दोनों सो रहे थे। थोड़ी देर तक तो सोचता रहा कि अब क्या करना चाहिये? वह जान गया था कि तानसेन की नीयत बिगड़ गई है। तानसेन डील डौल में उससे कम नहीं था,

अगर जागता है तो उससे बेमतलब लड़ाई माल लेना है औ
कौन जानता है कि लड़ाई का क्या परिणाम हो ? इस लिये
उसे साथ लेकर वहाँ से चल दूं । परन्तु उसी समय उसक दिल
में एक दूसरा विचार उत्पन्न हुआ, कि भारी शिला के नीचे
तानसेन को दबा दूं । अगर तलवार से उस को मारूं तो भय
इस बात का है कि कहीं बेली डर न जाए और मेरी तरफ़ से बुरा
भाव मन में न ले आए। स्त्री जाति है क्या जाने वह क्या रंग
लाए। इस लिये पत्थर की शिला के नीचे दबाना ही उचित है।
"सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे" गुड़ से जो मरे तो उसे
जहर क्यों दिया जाए ?

परन्तु जिस समय उसने भारी शिला को उठाया तो उसके
नीचे एक बिषैला लम्बा-चौड़ा सर्प बैठा हुआ था । वह फण
निकाल कर उस पर झपटा और शीघ्र ही उसके शरीर से लिपट
गया। जालिमसिंह इतना घबरा गया कि डर के मारे उसके हाथ
पाँव फूल गये । उसका सारा घमंड मिट्टी में मिल गया। कि साँप
उसको डस ले, इतने ही में एक सनसनाता हुआ तीर साँप के
फण में लगा और दूसरा तीर आकर उसकी आँख में लगा ।
सांप लहू-लुहान होकर अपने आप उस पर से अलग हो गया
और जालिमसिंह मरने से बच गया।

प्रकृति के साम्राज्य में अद्भुत और विचित्र खेल हुआ करते
हैं। कभी-कभी ऐसी दैवी घटना हो जाती है कि जिसका स्वप्न
में भी खयाल नहीं होता। यह तीर चलाने वाला और जालिम
सिंह को मौत के मुंह से लौटाने वाला कौन था ? यह वही
लकड़हारा था जो अपनी पत्नी राजकुमारी बीना को लिये हुए
जी बहलाने के अभिप्राय से वहां आ निकला था। इन दोनों का
विचार सिद्ध पुर जाने का था। मार्ग में एक आदमी को सांप के
पंजे में देखा ! लकड़हारा बहुत ही सन्त और महात्मा पुरुष था।

उसने शीघ्र ही तीर को कमान में लगाया और क्षण भर में विष भरे सर्प को छेद दिया।

जब ये दोनों वहां पहुंचे तो एक दूसरे को देख कर विस्मित हो गए।

जालिमसिंह—"बीना! तू कहां?"

बीना—"जालिमसिंह! तू यहां कहां? तू तो जोधपुर के राजकुमार के साथ था।"

जालिमसिंह—"कहां का राजकुमार, वह तो धमलू माली था। रायसिंह को नीचा दिखाने के लिये यह सब कुछ किया गया था। यह तेरे साथ कौन है?"

बीना को यद्यपि पहले से ही मालूम था कि उसकी बहिन माली के साथ व्याही गई है, परन्तु जालिम सिंह के मुंह से यह बात सुन कर उस के हृदय में दुःख हुआ। शोक को कम करके बोली, यह मेरे प्राण पति, मेरे सिरताज और स्वामी हैं, जिनकी कृपा से तू आज जीवित बच गया। क्या तूने नहीं सुना कि मेरे पिता ने मेरी शादी एक लकड़हारे के साथ कर दी थी? यह वही भाग्यवान लकड़हारा है। तू यह बता कि मेरी बहिन कहां है? मैं उस को दुष्टों के पंजे से छुड़ाऊं। कौन जाने उस बेचारी का इस समय क्या हाल होगा? तूने अच्छा नहीं किया। कुंवारी कन्या पर ऐसा अन्याय करना क्षत्रियों के धर्म के विरुद्ध है।"

जालिम सिंह—"रायसिंह ने एक क्षत्री भाई को नीचा और अपमानित किया, यह भी तो उसने अच्छा नहीं किया। आदमी जैसा दूसरों के साथ करता है वैसा ही उसके साथ भी किया जाता है।"

बीना—"परन्तु बेचारी लड़की तो निरापराध थी, उसने तेरा क्या बिगाड़ा था ?"

जालिमसिंह—"तू समझती है कि मैंने यह काम किया है ? यह तेरी भूल है। काम तो करने वालों ने किया, मैं भी धोखे में आगया और धमलू माली को राजकुमार समझ उसकी सेवा की। अन्त में यह भेद खुला, मैं भी अब पछताता हूं।"

बीना ने समझा शायद जालिम सिंह इस काम में शामिल नहीं था। वह कहने लगी, बड़ा दुःख है। मैंने सब को समझाया परन्तु किसी ने मेरा कहना नहीं माना। किस्मत जो चाहे वह करे।

लकड़हारा—"क्यों इतना शोक करती हो, जो कुछ होना था वह हो गया। विधाता का लेख अटल और अमिट होता है। यह दुनिया ऐसी ही है। यहां कोई सुखी है और कोई दुःखी है। भाग्य जैसा चाहता है वैसा नाच नचाता है।"

बीना—"नाथ ! आप सच कहते हैं। परन्तु बेली मेरी बहिन है। जिस समय उस का विचार आता है तो दुःख से छाती फटने लगती है। कौन जानत था कि भाग्य उस को इस तरह दुःख और विपत्ति के कूप में गिरा देगा।"

जालिम सिंह—"निःसन्देह इस रोग की कोई औषधि किसी के पास नहीं है। अब तुम बताओ कहां जाने का विचार है ?"

बीना—"सिद्धपुर। शिवजी का दर्शन करने के लिये जा रही हूं। तुम कहाँ जाओगे ?"

जालिमसिंह—"मैं भी सिद्धपुर ही जा रहा हूं। वहां महादेवजी का दर्शन करूंगा और माधो गोविन्द में स्नान करने की भी इच्छा है।"

बीना—"अच्छा हुआ, एक से दो भले होते हैं। तुम्हारा साथ रहेगा तो मार्ग सुगमता से कट जायेगा।"

जालिम सिंह—"परन्तु शायद मैं तुम्हारा साथ न दे सकूँ, तुम आगे चलो, मैं पीछे-पीछे आऊंगा। मुझ को अपने आदमियों के लिये ठहरना पड़ेगा।"

बीना—"अच्छा, वहाँ आना तो हम से अवश्य मिलना।"

बीना तो लकड़हारे को साथ लेकर सिद्धपुर की ओर चल दी। किन्तु जालिम सिंह दिल में सोचने लगा कि बीना कैसी सुन्दर स्त्री है। अगर हो सके तो उसको लकड़हारे से छीन लूँ। बीना और लकड़हारा, कैसी बुरी जोड़ी है। अगर यह कहीं मेरे महल में चल पड़े तो मेरा घर पवित्र हो जाए और मुझ को तीन लोक की सम्पदा मिल जाए। इसके सामने बेली क्या चीज है। उसका रूप कृत्रिम है, परन्तु इस की सुन्दरता प्राकृतिक है! बात करती है तो मुंह से फूल झड़ते हैं। स्वभाव में इतना सीधा पन है कि मनुष्य एक दम उसकी ओर झुक जाता है! अब यह बचकर कहाँ जा सकेगी। सिद्धपुर पहुँच कर लकड़हारे को जान से मार डालूंगा और उसको साथ लेकर अपने घर चला आऊंगा। बेली तो इसकी चरण रज के बराबर भी नहीं है, फिर भी चलकर जरा देखूं तो सही उस का क्या हाल है?

जब वह उस स्थान पर आया, जहाँ बेली और तानसेन को सोया हुआ छोड़ गया था, तो देखता क्या है कि दोनों में से किसी का भी पता नहीं है। वह समझा, उनको अवसर मिल गया और वे भाग गये, अब पीछा करना व्यर्थ है। क्योंकि वह जगह पथरीली थी, किधर ढूंढे और किधर न ढूंढे। अन्त में वह लाचार होकर एक जगह बैठ गया और

बीना को प्राप्त करने के उपाय सोचने लगा।

दुनिया ! तू अत्यन्त मक्कार और कृतघ्न है। बीना के पति ने उसकी जान बचाई और अब वह उसके पति को मार डालने तथा उस के शील भंग करने की चिन्ता में है। नेकी का बदला बदी। यहाँ हवन करते हुए भी हाथ जलते हैं। हजार भलाई का काम कीजिये, परन्तु दुष्ट आदमी अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ते। कौवे को कितना ही खीर खिला कर पालिये, परन्तु वह बुरी चीज खाने से कभी नहीं टलेगा ! जो आदमी साँप को प्रेम से पालता है उसी के विष से मारा जाता है। जो दुष्टों के साथ भलाई करता है, उसके साथ बुराई की जाती है। यह प्रति दिन का अनुभव है। दुनिया में रह कर आदमी को कभी किसी दशा में भी सावधानी को हाथ से न जाने देना चाहिये।

———

## २२

# माधो गोविन्द की यात्रा

सोच समझ कर नर चले, क्यों पाछे पछताय ।
बिना विचारे जो करे, अन्त कष्ट दुख पाय ॥

जोधानाथ की रानी को देश निकाला दिये हुए पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो गये। देश निकाले की अवधि बारह वर्ष की थी। इस अवधि के पूर्ण होने पर राजा को अपनी रानी का स्मरण हो आया और वह उसकी खोज करने लगा। रानी कहाँ मिलती, वह तो संसार से पर लोक की यात्रा कर चुकी थी। राजा को किसी न किसी तरह यह मालूम हो गया कि रानी मर गई है और वह अनेक कष्ट और दुःख सहन करके मरी है। उसने बहुत कुछ पश्चाताप किया, परन्तु अब पश्चाताप से क्या होता था! वह यह नहीं जानता था कि रानी अपने पीछे एक लड़का छोड़ गई है। वह वचन का पक्का और बात का धनी था! रानी के चले जाने पर उसने फिर ब्याह नहीं किया। अब, जब कि रानी की मृत्यु की खबर सुनी तो उस को विश्वास हो गया कि जोधपुर का सिंहासन किसी औरके लिये बदा होगा, क्योंकि रानी की मौत ने उस के मन की आशाओं

का अन्त कर दिया था ।

उस ने सोचा कि रानी का श्राद्ध करना चाहिये । जिन्दा रहते तो उसकी तनिक सी भूल पर उस की यह दुर्गति की, उस को घर से निकाल दिया, अब मरने पर श्राद्ध की चिन्ता हुई ।

पुरोहित जी ने भी हां में हां मिलाई और कहा सत्य वचन महाराज । किसी प्रकार रानी की सुगति होनी चाहिये, नहीं तो प्रेत योनि में जायेगी । जान पड़ता है मानो पुरोहित जी को प्रेत लोक की ठेकेदारी मिली थी ।

संसार को ढोंग और दिखावा अच्छा लगता है । यहाँ सब काम दिखावे के होते हैं और तो और धर्म भी दिखावे की वस्तु हो गई है । मरने के पश्चात् क्या दशा होती है, परमात्मा जानते होंगे ? क्या कारण है कि जिन को धर्म का खयाल रहता है वे भी जीवन में अपने माता पिता की सेवा शुश्रुषा नहीं करते ? हम यह नहीं कहते कि श्राद्ध और तर्पण न किया जाए, हम को यदि कुछ कहना है तो यह है कि जो लोग जीते जी उन की सेवा नहीं करते, मरने के पश्चात् वे क्या करेंगे ?

पुरोहित और प्रधान राजा के साथ हुए और पैदल तीर्थ की ओर चले । मार्ग में भाँति-भाँति की बातें होती रहीं, परन्तु कभी रानी का प्रसंग आ जाता तो राजा के नेत्र आँसुओं से भर जाते थे तथा उसका विचार करके जी भर आता था । कभी-कभी तो राजा रोने भी लगता था ।

राजा"—मैंने छोटी सी भूल पर उसे घर से निकाल दिया । व्यर्थ में हम क्षत्री वंश के लोग घमंडी होते हैं । अपने वचन को निबाहने के लिये अभिमान से काम लेते हैं ।"

पुरोहित—"नहीं कृपा निधान ? क्षत्रियों का धर्म भी यही है

कि चाहे सब कुछ चला जाये, परन्तु धर्म न जाने पावे।"

राजा—"परन्तु धर्म से सुख होना चाहिये, हमको तो उल्टा दुःख हुआ। अब जाकर समझ आई कि वह धर्म नहीं था, बल्कि एक प्रकार की ऐंठ थी। धर्म यथार्थ में सत्य का मार्ग है। जो आदमी किसी विषय को वाह्य और अभ्यन्तर दृष्टि से सोच कर सुगमता और सरलता से काम करना जानता है वही धर्मात्मा हो सकता है, अहंकार और अभिमान धर्म से कोसों दूर हैं।"

पुरोहित—"सत्य वचन।"

राजा—"जहाँ जहाँ जिसने अहंकार किया, वहां ही उसको विपत्ति का सामना करना पड़ा। राजा बलि को दान का अभिमान था, वह बावन के हाथ छला गया। रावण को अपनी शक्ति का अभिमान था, सो वो राम के हाथ से मारा गया।"

पुरोहित—"सत्य वचन, सत्य वचन।"

राजा "मैंने बिना समझे बूझे अपनी पतिव्रता रानी को घर से निकाल दिया। वह कहती जाती थी कि मैं गर्भवती हूँ, मुझ पर कृपा कीजिये। परन्तु मेरा हृदय कठोर हो गया था, मैंने उसकी एक भी नहीं सुनी। अन्त में उसको निकाल कर रहा। अब पछताता हूँ। वह मर गई! कौन जाने उसका लड़का जीवित है या वह भी मर गया?"

पुरोहित—"सत्य वचन, सत्य वचन।"

राजा—"मेरे कोई सन्तान नहीं है जो मेरे बाद राज गद्दी की मालिक हो, इसी से मैं शोक करता हूँ।"

पुरोहित—"सत्य वचन!"

मन्त्री ने संकेत से पुरोहित जी को रोका, कि इसी सत्य बचन ने यह ग़ज़ब ढाया है। ऐसा न हो कि फिर कोई विपत्ति

सिर पर आ पड़े।

राजा—"प्रधानजी! आप क्यों कोई बातचीत नहीं करते?"

प्रधान—"महाराज! मैं क्या कहूँ? मेरा जी भी आपकी दशा देख कर उमड़ आता है। सच तो यह है कि यह संसार दुःखमय है! यहाँ किसी को भी सुख नहीं है। राजा, प्रजा सब दुःखी हैं। आप के ऊपर जो कुछ दुःख छाया है, कर्म की गति है। जब बुरे दिन आने को होते हैं तो वैसे ही सामान पैदा हो जाते हैं, इस में किसको अपराधी ठहराया जाए। आप ने जो कुछ किया, वह समझ के हेर फेर से किया। हम सब लोगों की भी बुद्धि जाती रही, नहीं तो ये दिन क्यों देखने पड़ते। जब सीता हरण का समय आया, तो राम सोने के हरिन के पीछे दौड़ पड़े। यह न समझा कि स्वर्ण का हरिण प्रकृति ने कभी पैदा भी किया है? यह मायावी होगा। यही दशा सब की होती है। बुरे दिन आने से पहले बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है।"

पुरोहित—"सत्य वचन।"

राजा—"बात तो कुछ ऐसी ही मालूम होती है। प्रधान जी, तुम्हारी बातों से हृदय को कुछ ढारस मिलता है। इसी प्रकार की बात चीत करो, जिस से कि जी बहल जाये।"

पुरोहित—"सत्य वचन।"

प्रधान—"महाराज! एक परम सन्त का वचन सुनता हूं।"

राजा—"कौन परम सन्त?"

प्रधान—"कबीर साहब, जिन्होंने इस युग में जीवों के कल्याण के लिये मनुष्य देह धारण की और लाखों करोड़ों आदमियों को शांति का मार्ग बताया।"

राजा—"निःसन्देह! ऐसा महात्मा कभी कोई काहे को हुआ होगा! अच्छा उन महाराज की बानी सुनाओ।"

प्रधान—" सुनिये ।"

यह कह कर प्रधान जी कबीर बाणी का पाठ करने लगे ।

राजा—"इस बाणी में जादू का असर है । इसे सुन कर मेरे दिल को बड़ी शान्ति हुई । क्षण भर के लिये मैं अपने सारे दुःख भूल गया ।"

प्रधान—"महाराज ! यह अनुभवी वाणी है । कबीर महाराज के शब्दों में वह प्रभाव है कि एक बार तो नेत्रों के सामने नये विचार आ जाते हैं । ऐसा प्रभाव किसी और महात्मा के वचन में कठिनता से पाया जाता है ।"

पुरोहित—"सत्य वचन ।"

राजा—"सत्य है—और यही कारण है कि आज दिन सारे भारत वर्ष में उनके उपदेशों की ध्वनि गूंज रही है । कहने को तो लाखों पंडित और ज्ञानी हैं परन्तु जो काम कबीर साहब ने किया, वह कब किसी से हो सका । फिर विलक्षणता यह है कि उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को चेताया तथा दोनों ही के भ्रम और अज्ञान को मिटाया । यदि सम्भव हो तो कोई भजन महाराज जी का और सुनाओ, इतने में माधो गोबिन्द का स्थान आ जाता है ।"

प्रधान—"बहुत अच्छा । यह कह कर फिर वे कबीर का भजन गाने लगे ।"

राजा भजन को सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—"महाराज ! आप तो धर्मात्मा आदमी हैं । जिस दिन रानी को बनवास दिया गया था, उस दिन आप ने भूल क्यों की थी ?"

प्रधान—"कर्म गति टारे नहिं टरे ।"

पुरोहित—"सत्य बचन, सत्य वचन ।"

राजा—"अब तो गोबिन्द माधो जी का मन्दिर दिखाई देता

है पुरोहित जी, हम आते हैं इतने में आप सारी सामग्री इकट्ठी कीजिये। हम सब लोग नहा धो कर तैयार होते हैं फिर श्राद्ध की तैयारी होगी।"

पुरोहित—"सत्य वचन महाराज!"

राजा मन्दिर के पास पहुंचा। स्नान कर के पूजा पाठ किया. तद्पश्चात् श्राद्ध किया। राजा के साथ ज्यादा भीड़ भाड़ नहीं थी, इने गिने आदमी थे। पंड़े को बुला कर नियमानुसार क्रिया की गई, और तीसरे पहर जब क्रिया कर्म से छुट्टी मिली, तो खा पी कर एक वृक्ष के नीचे डेरा डाला और आराम करने वहीं पर लेट गये।

## २३

# लकड़हारा राजकुमार

हर्ष!! परम हर्ष !!!

दिन फिरने का हर्ष, विवाह का हर्ष, समय पर प्राण बचाने का हर्ष। बीना और लकड़हारा दोनों प्रसन्न थे। हंसते बोलते हर्ष और आनन्द मनाते हुए गोबिन्द माधो में पहुंचे और एक पंडे के मकान में उतरे।

लकड़हारा—"प्यारी बीना ! तुम यहाँ थोड़े समय के लिये आराम करो, मैं अभी स्नान कर के आता हूँ।"

बीना—"बहुत अच्छा, परन्तु आवश्यक तो यह है कि हम दोनों मिल कर गांठ जोड़ कर स्नान करें।"

लकड़हारा—"यहाँ न कोई नदी है न कोई तालाब, कुएं पर नहाना है। गांठ जोड़ कर तो नहाना वहां होता है जहाँ कोई पवित्र नदी हो। यों तो मैं हर प्रकार से तुम्हारा हूँ, जो आज्ञा हो बजा लाऊं?"

बीना—"नहीं, नहीं ! आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपकी दासी हूँ। यों तो मैं प्रातः काल स्नान कर चुकी हूँ, परन्तु यदि

आप की राय नहीं है तो जाने दीजिये, मैं आपके लिए ठहरी रहूँगी। परन्तु कृपा कर के शीघ्र ही आइये।"

लकड़हारा—"घबराना मत, मेरा मन सदैव तुम्हारे साथ ही है। मैं अभी आता हूँ, देर नहीं होगी।"

लकड़हारा तो नहाने के लिये चला गया। वीना सोचने लगी कि यह लकड़हारा कैसा, यह तो कोई उच्च कुल का मनुष्य जान पड़ता है। एक दो दिन ही इसको मैंने बाण विद्या सिखलाई थी परन्तु आज उसने किस सावधानी से जालिम सिंह के प्राण बचाए। यह कभी किसी छोटी जाति का आदमी नहीं हो सकता, इस में बड़प्पन के चिन्ह मालूम होते है। अगर मेरा नाम बीना है तो मैं धीरे-धीरे इसके गुण प्रकट करती जाऊंगी और मेरा पति संसार में आदर की दृष्टि से देखा जायेगा तथा मैं एक उत्तम पुरुष की स्त्री कहलाऊंगी। अभी यह कुछ संकोच करता है और मुझे देख कर लज्जित होता है, पर धीरे-धीरे इसकी लज्जा दूर हो जायेगी और इसको भी मुझ पर अभिमान होगा। अभिमान तो इस को अब भी है, परन्तु यह अपने आप को तुच्छ और मुझ को उच्च समझता है। यह विचार इसके मन से कैसे दूर करूं? यह अपना हाल नहीं बताता, परन्तु जान बूझ कर नहीं छिपाता। असल बात यह है कि इसको मालूम नहीं। अगर जरा भी पता लग जाए तो मैं इसकी सारी बातों का पता लगा लूं। देखो अस्त्र-शस्त्र इसके शरीर पर कैसे शोभा देते हैं? कपड़े कैसे अच्छे लगते हैं, बात कैसे सोच सोच कर करता है, महात्माओं की वाणी जिह्वा पर रहती है। स्वर मधुर है, गायन विद्या से स्वभाविक रुचि है। सब से बढ़ कर बात यह है कि स्वामीभक्त तथा धर्मात्मा है।

हे परमेश्वर ! मैं कैसे मानूँ कि यह लकड़हारे के वंश का है। हो न हो, यह कोई उच्च कुल का लड़का है। माँ बाप का नाम भूल गया है। देखो यह भेद किस समय खुलता है।

वाह री किस्मत ! बाप ने तो दीन दुखिया ढूँढ़कर इसके साथ ब्याह किया, और वह धनाढ्य निकला। बाप ने सोचा कि बीना को उसके साथ रहने से दुःख मिलेगा, परन्तु इस समय बीना के हर्ष की कोई सीमा नहीं है। वह अपने लकड़हारे को चक्रवर्ती राजा से भी बढ़ कर समझती है। अभी तो उसने नवीन जीवन के मार्ग में पदार्पण ही किया है, देखिये आगे उस की दशा में क्या परिवर्तन होता है। किसी में इसके बिचार करने की शक्ति भी नहीं है।

प्रभो ! तुम को बारम्बार धन्यवाद है। तुम क्या नहीं कर सकते ? पतित पावन ! तुमने बीना की लाज रख ली। वह इसी चिन्ता में ही थी कि लकड़हारा नहा धोकर आ पहुंचा।

बीना—"आपने अपनी माता का श्राद्ध किया ?"

लकड़हारा—"हां किया, इसी मतलब से तो आया था।"

बीना—"बहुत अच्छा। धन्य है वह माता, जिसकी कोक्षि से तुम पैदा हुए।"

लकड़हारा—"सुन्दरी ! मैं तेरी बातों को सुन कर लज्जित होता हूं। धन्य है तू, जिसने एक नीच और घृणित लकड़हारे को आदमी बनाया। मेरी माता यदि कहीं जीवित होती तो वह आज कैसी प्रसन्न होती ?"

जिस समय यह बात चीत हो रही थी कि दैव योग से लकड़हारे की बांह में जो जन्त्र बँधा हुआ था वह खिसक कर नीचे गिर पड़ा। वह ताम्र पत्र से मंढ़ा हुआ था पत्तर घिस गया था इसलिए उसके भीतरसे कागज़ खिसक पड़ा। क़ाग़ज़ अभी तक

बिल्कुल साफ था। लकड़हारे ने झट-पट उसको उठा लिया और जब बीना की दृष्टि उस पर पड़ी तो वह बोली—"प्राण-नाथ! क्या है?"

लकड़हारा—"कुछ नहीं, यों ही एक जंत्र है।"

बीना—"इसे तनिक मुझे तो दिखाओ?"

लकड़हारा—"सुन्दरी! यह तुम्हारे दिखाने की वस्तु नहीं है। यह तांबे का जंत्र मेरी निर्धनता का चिन्ह है। इसको दिखाते हुए मुझे लज्जा आती है।"

बीना—"नहीं, नहीं, दिखाओ।"

लकड़हारा—"नहीं, नहीं, मत देखो, जाने दो।"

बीना—"यह तुमको कहां से मिला?"

लकड़हारा—"मेरी माँ ने मुझको दिया था।"

बीना—"तब तो मैं अवश्य देखूंगी।"

लकड़हारा—(हंस कर) "नहीं, यह मेरी वस्तु है। इस पर किसी का भी अधिकार नहीं है।"

बीना—(मुस्करा कर) "मैं भी तो तुम्हारी अर्द्धांङ्गिनी हूं। मेरा तुम पर और तुम्हारी प्रत्येक वस्तु पर अधिकार है।"

लकड़हारा—"जाने भी दो।"

बीना—"कोई बात अवश्य है तभी तो तुम मुझको यह नहीं दिखाते? क्या सचमुच तुमको मेरा विश्वास नहीं है?"

लकड़हारा—'नहीं नहीं, विश्वास सब कुछ है परन्तु मैं दिखाना नहीं चाहता।"

बीना—"क्यों नहीं दिखाना चाहते हो?"

लकड़हारा—"यूं ही।"

बीना—"अच्छा तुम्हारी खुशी, हठ करना मेरा धर्म नहीं है।"

जिस समय बीना ने अन्तिम शब्द कहे तो उसकी आंखें डबडबा आईं। लकड़हारे को दुःख हुआ। उसने बीना का हाथ पकड़ कर कहा—"सुन्दरी! बुरा मानने की बात नहीं है। इसमें सम्भव है मेरी जाति पांति का वर्णन हो और तुमको मेरी ओर से घृणा उत्पन्न हो जाए? इस कारण से तुम को दिखाना नहीं चाहता।"

अब तो बीना की आँखें खुलीं। वह समझ गई कि जिस समस्या के सिद्ध करने के लिए वह दुःखी हो रही थी उस के सिद्ध होने का अब समय आ गया है। वह बोली—"पहले तुम जंत्र को खोल कर पढ़ लो, फिर मुझको दिखाओ। अगर कोई बुरी बात लिखी होगी तो फिर मैं हठ न करूंगी और अगर कोई अच्छी बात है तो मेरा अधिकार है कि तुम्हारी दशा का वास्तविक हाल मालूम करूं।"

लकड़हारे ने उसे खोला। कागज पर दृष्टि पड़ते ही नेत्र खुल गए और हंस कर उसने बीना की ओर देखा।

बीना—"पढ़ो! जल्दी पढ़ कर मुझको सुनाओ।"

लकड़हारा—"जरा धीरज धरो! मैं आदि से अन्त तक पढ़ लूँ तब तुमको दे दूँगा। अब एताज न करूंगा।"

लकड़हारा पढ़ता जाता था और उसकी दशा क्षण क्षण में बदलती जाती थी। अन्त में एक स्थल पर उसकी आंखों से आँसू टपक पड़े।

बीना—"पढ़ लिया हो तो मुझको दे दीजिये?"

लकड़हारा—"तनिक और पढ़ने दो"

उसने सारा पत्र पढ़ लिया और पढ़कर बीना के हाथ में देकर उससे चिमट गया। वह कहने लगा तुम मेरी लक्ष्मी और मेरा कल्याण करने वाली हो। मैं कभी तुम्हारे उपकार को नहीं भूल

सकता। लकड़हारे को राजकुमार बनाना तुम्हारा ही काम है। लक्ष्मी! तुम को प्रणाम है। अगर तुम हठ न करती तो मैं लाख जन्म तक भी इस पत्र को न पढ़ता और न मुझको अपने वंश का पता लगता।"

बीना—"राजकुमार!"

लकड़हारा—"हां! राजकुमार।"

बीना—"कहां का?"

लकड़हारा—"इसको पढ़ो, आप ही सम्पूर्ण रहस्य ज्ञात हो जायेगा।"

वास्तव में वह पत्र देश से निकाली हुई रानी ने जोधानाथ को मारवाड़ी भाषा में लिखा था।

बीना—"मैं पहले ही जानती थी कि तुम किसी अच्छे कुल के हो।"

लकड़हारा—"मैं अच्छे कुल का था या नहीं था, पर अब तुम्हारे पुण्य प्रताप ने मुझको अच्छा बना दिया है। नहीं तो इस की मुझको खबर तक नहीं होती। मैं तो अपने बाप को लकड़हारा ही समझे बैठा था।"

बीना—"देखो! यहां परमात्मा की लीला दिखाई देती है। मेरे बाप ने तो बेली की शादी अपनी समझ में तो जोधपुर के राजकुमार से की, परन्तु वह धमलू माली निकला। मुझको उसने लकड़हारे के साथ ब्याहा, किन्तु वह असली राजपुत्र निकला। यह यथार्थ में भाग्य की बात है।"

राजकुमार—"राखनहार, भये भुज चार, तो होय कहा भुज द्वै के बिगारे" दोनों अति प्रसन्न हुए और घुटने टेक कर परमेश्वर की स्तुति का गीत गाने लगे।

"जय दुख हरन, जय सुख करन, मंगल भवन पूरण धनी।
जय पतित पावन, भव नशावन, ताप त्रय गंजन धनी॥

त्रिलोक नाथ, अनाथ बन्धो, दीन सुख दायक प्रभो।
जय प्रणत पाल दयाल, मायातीत, सुर नायक प्रभो॥
बार बार बिनती करूं, भक्त अटल वर देव।
धोकर सरस सरोज पद, चरण शरण निज लेव॥

बीना—"नाथ! आप जोधपुर क्यों नहीं चलते?"

लकड़हारा—"अब शीघ्र ही चलने की तैयारी करूंगा।"

बीना—"इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि महाराजा आप के साथ बड़े प्रेम से व्यवहार न करें।"

लकड़हारा—"सुन्दरी! कभी किसी को किसी के प्रेम की आशा नहीं करनी चाहिए, केवल भगवान की दया ही चाहिये। यदि उसकी कृपा है तो मिट्टी स्पर्श करने से सोना हो जाती है और यदि उसकी दया नहीं है तो स्वर्ण मिट्टी हो जाता है।"

बीना—"सच है महाराज! माँ बाप की कृपा भी ईश्वर की कृपा के आधीन है। देखिये ना वह पिता ही तो था, जिसने मुझ को तुम्हें सौंपा। उसने तो अपनी समझ में बुरा ही किया था, परन्तु फल विपरीत निकला। निस्सन्देह जिस पर ईश कृपा होती है उसका भला ही होता है।"

लकड़हारा—"अच्छा, अब थोड़ा देर के लिए आराम करलो, फिर यहाँ से दोनों जोधपुर का मार्ग पकड़ेंगे। घर की ओर कौन लौट कर जाए वहाँ चल कर देखें भाग्य में क्या बदा है?"

बीना—"आप सोइए मैं जरा दूसरे स्थान पर बैठ कर कुछ बिचार करती हूं और फिर आप को बताऊंगी कि किस प्रकार वहां चलने की तैयारी करनी चाहिए। इतनी देर में आप अच्छी तरह आराम कर लेंगे।"

———

## २४

# वियोग

जालिम सिंह इस सोच में था कि किसी प्रकार बीना को लकड़हारे के हाथ से छीन ले। क्योंकि उसकी समझ में लकड़हारे को कोई अधिकार नहीं था कि वह एक राजकुमारी को अपने साथ रखे। यद्यपि वह पहलवान मनुष्य था, परन्तु उसका साहस नहीं हुआ कि उनके सामने आवे।

लकड़हारा सीधा-साधा आदमी था, परन्तु जालिमसिंह के हृदय में उसकी धनुष विद्या का सिक्का जम गया था। बीना भी राजपूतनी थी। दोनों के पास शस्त्र थे, इस कारण चालाकी से काम लेने में भलाई समझी गई। वह उलटे पाँव एक गांव में गया। वहाँ दो चार गूजर बैठे हुए थे। उसने उनसे कहा—"मुझको एक आदमी की जरूरत है?"

गूजर—"तुम अभी तो इस रास्ते से होकर गये थे, अभी वापिस आए हो। पहले आदमी की जरूरत नहीं थी, अब तुमको एक आदमी की जरूरत पड़ गई है। जाओ अपनी राह लो, हमको तुम्हारा विश्वास नहीं।"

जालिम सिंह—"तुम कैसी बातें करते हो? आदमी आदमीके

काम आता है। सब पर विपत्ति पड़ती है! इस समय मुझ पर विपित्त आई है और तुम सहायता करने से इन्कार करते हो, तुम्हें तो मजदूरी से मतलब है।"

गूजर—'तुम पर क्या विपित्त आ पड़ी है ?"

जालिमसिंह—"एक आदमी मेरी स्त्री को भगा ले गया है। मैं उस से बदला लेना चाहता हूं और स्त्री को भी छीनना चाहता हूं।"

गूजर—"तुम्हारा मतलब उन स्त्री पुरुष से तो नहीं है जो थोड़ी देर हुई यहाँ से होकर गये हैं ?"

जालिमसिंह—"हां। वह स्त्री तो मेरी है. परन्तु वह पुरुष गुंडा है। उसी गुंडे से मुझे अपनी स्त्री को लेना है।"

गूजर—"परन्तु वह तो कोई भला मानस मालूम होता था। उसकी सूरत से तो यह ज्ञात नहीं होता था कि वह गुंडा है ?"

जालिमसिंह—"तुमको इस बात की क्या समझ है ? आज कल ऐसे भले मनुष्य ही बदमाश और गुंडे होते हैं।"

गूजर—"बहुत अच्छा, अगर यह बात है तो हम सब के सब तुम्हारे साथ चलकर उसे दण्ड देंगे !"

जालिमसिंह—"नहीं, नहीं, इससे तो काम बिगड़ जायेगा। वह बड़ा धनुर्धारी है। कौन जाने क्या रंग लाए ? मैं छल से उसे वश में करना चाहता हूं। तुम में से केवल एक आदमी की आवश्यकता है, सबकी जान जोखम में डालना अच्छा नहीं है।"

गूजर—( हंस कर ) "तू कैसा कायर मनुष्य है ? जो आदमी तेरी स्त्री को भगा ले गया, उसी का तू सामना करने से घबराता है। जब तू इस ढंग का आदमी है तो क्यों न तेरी स्त्री को दूसरा आदमी भगा कर ले जाए।"

जालिमसिंह—"तुम बात को नहीं समझते ? मेरा सिद्धान्त

सदा यह रहा है कि सांप मरे और लाठी भी न टूटे ।"

गूजर—"अच्छा चल, मैं तेरे साथ चलता हूं । पीछे–पीछे मेरे साथी भी साथ रहेंगे जिस से आवश्यकता पड़ने पर वे भी सहायता कर सकें ।"

जालिमसिंह—"इस की आवश्यकता नहीं है । चलो, देखो मैं किस भाँति उस को धोका देता हूँ । तुम सिर्फ मेरे साथ रहना और जो कुछ कहूँ वह करना, शेष मैं सब कुछ कर लूंगा ।"

गूजर साथ हो लिया और जालिम सिंह धीरे–धीरे पता लगाता हुआ उस स्थान पर आया, जहां गोविन्द साधो में लकड़हारा सो रहा था । बीना का वहां कहीं पता न था । अच्छा अवसर मिला उसको । झट बेहोशी की दवा निकाल कर लकड़हारे को सुंघा दी और उसे बेहोश बना दिया । फिर गूजर से कहा कि उसे उठा कर दूर ले जा और पहाड़ी की खो में छोड़ आ । ले एक रुपया पहले से ही ले ले, पीछे भी कुछ दूँगा । मेरी स्त्री यहाँ नहीं है, जब वह यहां आवेगी तो मैं उससे निपट लूंगा ।

गूजर तो अधमरे लकड़हारे को उठा कर पहाड़ की तरफ चला और जालिम सिंह उसकी चादर ओढ़कर वहीं लेट रहा । उस को आशा थी कि बीना थोड़ी देर में आवेगी ही, फिर उसको वश में कर लेना कौन बड़ी बात है ।

थोड़ी देर में बीना वहाँ आई और कहने लगी-"स्वामी उठो! कब तक सोते रहोगे, मैंने सब कुछ सोच लिया ? जोधपुर चलने का संकल्प कर लिया है । उठो, दो चार आदमी साथ ले लो और कुछ थोड़े से रुपये मुझे दो, जिससे मैं आवश्यक सामान मोल ले लूं ।" परन्तु उत्तर कौन दे, जालिम सिंह ने चुप्पी साध रक्खी थी । बीना को क्या मालूम कि रंग में भंग पड़ गया है ।

उसने उसी को लकड़हारा समझकर चादर खींच ली। जालिमसिंह चौंक कर उठ बैठा। बीना उसको देख कर घबरा गई और कहने लगी—"अरे जालिम सिंह ! तू यहां कहां आ गया, जल्दी बता मेरा पति कहां है ?"

जालिमसिंह—"वह तो शमशान भूमि में पहुँच गया है। वह कब तेरे योग्य था। कहां लकड़हारा और कहां राजकुमारी ! कौवे के साथ हंसनी शोभा नहीं पाती। तेरा और उसका साथ कैसा ? चल, अब मेरे महल में चल, तुझको अपनी रानी बनाऊंगा और तू मेरे साथ सुखी रहेगी।"

बीना—"दुष्ट ! यह क्या कह रहा है ? मेरा बस चले तो अभी तेरी जिह्वा निकाल लूं।"

जालिमसिंह—"मेरी जिह्वा तो पीछे निकाली जावेगी, इस समय तो तू ही मेरे वश में है। मैं तुझे लिये बिना घर न जाऊंगा।"

बीना—"क्या तूने मेरे स्वामी को मार डाला है ?"

जालिमसिंह—"वह मरा तो नहीं है। हाँ. मरे के सदृश बना दिया गया है। कौन जाने अब वह कहां और किस दशा में होगा। चल देर न कर, समय बीता जा रहा है।"

बीना—'धूर्त, धोखेबाज, छली-कपटी, तुझ को लाज नहीं आती ? आज ही मेरे स्वामी ने तेरी रक्षा की है और आज ही तूने उसको ऐसा बदला दिया। निर्दयी, निर्लज्ज ! जा मेरी आंखों के सामने से दूर हो जा।"

जालिमसिंह—"बीना तू कैसी मूर्खा है ! देख तेरा भाग्य तारे की भाँति चमक रहा है। मुझ सा पात तू कहां पावेगी ? मैंने जान बूझकर तुझे निर्धन लकड़हारे के हाथ से छुटकारा दिलाया, परन्तु तू मेरा उपकार नहीं मानती। मैंने तो तेरे साथ भलाई की है और तू अभी तक उसी मूर्ख निर्धन लकड़हारे की प्रशंसा

कर रही है ?"

बीना—"बस, अधिक बातें न बना। वह लकड़हारा नहीं है बल्कि राजकुमार है। कुशल इसी में है कि तू यहां से चला जा, नहीं तो मैं इसी समय तुझ को तेरी दुष्टता का स्वाद चखा दूंगी ?"

बीना ने यह कह कर कमर से तलवार खींची। जालिमसिंह भी असावधान नहीं था। वह हर एक बात के लिये पहले से ही तैयार रहता था। उसने बीना के हाथ से तलवार छीन ली। बीना यह देखकर शोर मचाने लगी "दौड़ियो, एक अबला स्त्री की निर्दयी के हाथ रक्षा कीजियो।"

जालिम सिंह ने चाहा कि उस का मुंह बन्द करके दवा सुंघा कर उसको भी बेहोश करदूं। परन्तु हाथापाई के कारण उसको मौका ही न मिला। बीना जोर से चिल्लाने और शोर मचाने लगी। जोधानाथ का डेरा पास ही था। उसने अपने मन में कहा कि मेरे रहते हुए यहां कौन ऐसा नराधम है जो स्त्री जाति पर अन्याय कर रहा है ? वह उसी समय चल दिया और क्षण भर में वहाँ आ पहुंचा।

जोधानाथ की चमकती हुई तलवार देख कर जालिमसिंह के होश-हवाश जाते रहे। राजा के पीछे सिपाहियों को आते हुए देख, वह समझ गया कि बना बनाया खेल बिगड़ गया। अब यहां दाल गलती हुई नजर नहीं आती। निराश होकर भाग गया। कई सिपाही उसके पीछे दौड़े, परन्तु वह उस पहाड़ी के चप्पे २ ज़मीन को जानता था, कहीं मौका देख कर छिप गया और फिर सिपाही उसका पता नहीं लगा सके।

बीना अत्यन्त सुन्दर थी। जोधानाथ ने पूछा—"सुन्दरी ! तू कौन है और यह आदमी कौन था ?"

बीना—"महाराज ! कुछ न पूछिये। मेरा स्वामी मुझको तीर्थ यात्रा पर लाया था। यह जालिमसिंह ठाकुर है। यह प्रसिद्ध लुटेरा है। न जाने इसने मेरे पति को कहां छिपा दिया और अब यह जबर्दस्ती मुझको पकड़े लिये जा रहा था।"

जोधानाथ—"सुन्दरी ! इस समय मैं कार्यवश जोधपुर जा रहा हूं, नहीं तो अभी तेरे स्वामी की खोज कराता। अच्छा कुछ दिनों के लिये मेरे साथ चल, मैं जोधपुर का राजा जोधानाथ हूं। वहां तुम को आराम मिलेगा, किसी प्रकारका कष्ट न होगा। जहां तक हो सकेगा मैं आदमी भेज कर तेरे स्वामी का पता लगाऊंगा।"

बीना—"महाराज की जय हो। आप राजा है, मेरे पिता हैं, मैं प्रजा की दृष्टि से आपकी पुत्री हूँ। जो कुछ आप कहेंगे मैं उसे करने के लिये तैयार हूँ।"

जोधानाथ—"तू और कुछ अपने पति का पता दे सकती है ?"

बीना—"मेरी शादी अभी हुई है, मुझे अधिक ज्ञात नहीं है। आप शाही लकड़हारे के पते से उसकी तलाश कीजियेगा। यदि वह जीवित है तो अवश्य मिल जायेगा।"

बीना जोधानाथ के साथ जोधपुर आ गई। राजा ने उसके लिये महल में खास कमरा नियुक्त कर दिया और वह उसी में रहने लगी। परन्तु मन में बड़ी उदास और दुःखी रहती थी। प्रायः पति वियोग के दुःख से विह्वल हो जाती थी। परन्तु स्त्री बुद्धिमान थी, संतोष और धैर्य के साथ काम करती रही।

---

## २५

# लकड़हारा

गूजर ने लकड़हारे के बेहोश शरीर को पहाड़ की खोह में लेजाकर छिपा दिया था। उसकी समझ में वह मर गया था। राम राम, धूर्त ने अवश्य उसको विष दे दिया होगा। आदमी औरत के लिये क्या नहीं करता? उसको खून करने से इन्कार था, परन्तु बेईमान ने उसको धोखा देकर मारा। मैं नहीं जानता था कि वह विष देकर मारेगा, नहीं तो मैं कभी उसका साथ न देता। यदि मर्द है तो सामने जावे और लड़कर अपनी बहादुरी दिखावे। धोखा देना अधर्म और अन्याय है। अच्छा, अब तो जो होने को था सो हो गया, दूसरे की स्त्री भगा लाने की अच्छी सजा मिली! आदमी यह नहीं समझता कि दूसरे की स्त्री को बुरी दृष्टि से देखना पाप है। रावण तक को तो इसका दण्ड भोगना पड़ा है, फिर औरों की तो बात ही क्या है? चलो इस को यहीं छोड़ कर अपने गाँव को चलें। चील, गिद्ध और कौवे इसके मृतक शरीर को नोच नोच कर खा जावेंगे।

गूजर इस प्रकार सोच समझ कर उल्टे पांव फिरा। अपने साथियों से मिला और उनको अपना सारा हाल कह सुनाया।

जालिम सिंह ने फिर उन को अपना मुंह नहीं दिखाया। वे समझे कि काम निकल गया, अब वह काहे को आने लगा।

लकड़हारे की दवा की बेहोशी दूर हो गई तो उसने अपने आप को पहाड़ की खोह में पाया। हा! मैं यहां कहाँ? बीना क्या हुई? क्या किसी ने मुर्दा समझ कर मुझे यहां डाल दिया था? आखिर बात क्या है? मैं तो गोबिन्द माधो में सुख की नींद सो रहा था, यहां मुझे कौन लाया? स्वयं तो मैं यहां आया नहीं, बीना मुझे यहाँ लाई नहीं। अगर मैं मर गया होता तो वह मेरे साथ सती हो जाती, मेरा मृतक संस्कार करती। हो न हो किसी दुष्ट ने यह काम किया है। बीना को देख कर उस के मुंह में पानी भर आया होगा। क्या आश्चय है कि मुझ को विष दे दिया गया हो और मुर्दा समझ कर यहां फेंक दिया गया हो। हाय! बीना हाथ से गई। मेरे भाग्य ने पल्टा खाया, आशा के हवाई महल जड़ मूल से उखड़ गए। क्या था, क्या हो गया? कहीं यह स्वप्न तो नहीं जो मैं देख रहा हूँ? नहीं, यह स्वप्न नहीं है, प्रत्येक वस्तु स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है। अब क्या करूँ, क्या न करूँ?

चलूं जरा गोबिन्द माधो में लौट कर पूछें तो सही, कि बीना कहाँ गई, उस को कौन हर ले गया? वह तो कभी मेरा साथ छोड़ने वाली नहीं थी। वह पतिव्रता स्त्री थी। यदि वह सती-साध्वी स्त्री न होती तो एक निर्धन नीच लकड़हारे का दम क्यों भरती? और अब तो वह जान गई थी कि मैं जोधपुर का राजकुमार हूं। वह कभी भूल कर भी मेरा साथ न छोड़ती। इस में कोई न कोई गुप्त रहस्य अवश्य है? हे भगवान! यह क्या बात है, मैं किससे पूछूं और क्या करूँ?

इस प्रकार सोच विचार कर वह उस स्थान पर आकर पण्डे से हाल पूछने लगा। पण्डा डरा हुआ था। जोधानाथ का

मामला ! उसका दम सूख गया और साफ इन्कार कर गया, कि मैं नहीं जानता तुम्हारी स्त्री कहां गई और उसका क्या हुआ ?

लकड़हारा–' यह तो बताओ मेरा माल असबाब. तीर कमान और कपड़े लत्ते कौन ले गया ?"

पण्डा—' मुझ को क्या खबर है कि कौन ले गया ?"

लकड़हारा—"मैं तुम्हारे यहां आकर ठहरा था, यह तो तुम को मालूम ही है ?"

पण्डा— 'तीर्थ है, हजारों आते जाते हैं किस किस को जानूं ? कौन जाने तुम यहां आए भी थे कि नहीं ?"

अब तो उसके होश हवास उड़ गये। मन में बड़ा दुःखी हुआ, परन्तु क्या कर सकता था। किसी ने उस की ओर निहारा भी नहीं। ठीक तो है, जब बुरे दिन आते हैं तो अपना शरीर भी साथ नहीं देता। सगे सम्बन्धी भी मुंह फेर लेते हैं, फिर औरों का तो कहना ही क्या है ?

हाय ! हाय ! मैं बुरी तरह मारा गया। भाग्य ने नीचे से उठा कर ऊंचे बैठाया था, परन्तु क्षण भर में फिर नीचे गिरा दिया। स्वप्न में स्त्री, धन सम्पदा और आदर सम्मान मिला था, आंख खुली तो कहीं कुछ भी नहीं है। ऐसा मेरा हाल है। अस्तु जो कुछ होना था हो लिया। अब प्यारी के विरह में साधू बन कर देश विदेश फिरूंगा। अगर मिलनी हुई तो मिल जायेगी, नहीं तो संसार को मुंह दिखाना व्यर्थ है। क्या किसी को मुंह दिखाऊं ? यह मुंह दिखाने योग्य नहीं रहा। क्या करूं ? अगर वीना का पता लगे तो पाताल तक जाकर उसकी खोज कर सकता हूँ। हतभाग्य ! बेचारे ने गले में झोली डाललो और स्त्रीके वियोग में विह्वल होकर इधर-उधर मूर्खों की भाँति घूमने लगा। अगर किसी ने कुछ खाने को दे दिया तो खा लिया और न दिया तो यों ही मन मार कर कहीं पर लेट रहा। वह एक दिन से अधिक

कहीं नहीं ठहरता था।

उसे बीना की धुन लगी थी। यह वही लकड़हारा है जो भगत कहलाता है। अब उसे ईश्वर तक की भी सुध नहीं रही, केवल बीना की मूर्ति उसके हृदय पटल पर अंकित हो रही थी। उसके प्रेम ने एक विलक्षण रूप धारण कर लिया था। सोते, जागते, उठते, बैठते बीना के सिवाय किसी का भी विचार उस के मन में नहीं आता था।

बावला और मस्त लकड़हारा इस प्रकार देश-विदेश घूमता फिरता रहा। एक बार यों ही घूमते फिरते वह जोधपुर के किसी गांव में जा निकला। साधू जान कर लोगों ने उसकी बड़ी आव-भगत की। वह अपने आपे में नहीं था और अपनी धुन में उन्मत्त हो रहा था। लोगों ने समझा कि यह तो कोई पहुँचा हुआ साधू मालूम होता है। इसने अपने जीवन को ईश्वर भक्ति में लगा रक्खा है।

———

## २६

# धूर्तों का स्वांग

जालिम सिंह को मालूम हो गया कि बीना को जोधानाथ जोधपुर ले गये हैं। उसने लकड़हारे को बिल्कुल मूर्ख और गंवार आदमी समझ लिया था। उस की ओर से उस को इतना भय नहीं था। बीना ने बात ही बात में उस से कह दिया था कि यह राजकुमार है, परन्तु उसने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया था। वह समझता था कि लकड़हारे का राजमहल तक पहुँचना कठिन है। उस में इतना साहस कहाँ कि जोधानाथ के यहां पहुंचे। इस कारण वह उसकी तरफ से बिल्कुल बे फिक्र था। अब चिन्ता यह थी कि किसी उपाय से उड़ा हुआ तोता पिंजरे में आ जावे। आदमी क्या नहीं कर सकता? उसने अपने दिल में कहा कि यदि मैं जालिम सिंह हूं तो किसी न किसी उपाय से उसको अवश्य अपने फंदे में फाँस लूंगा! यद्यपि इस काम में जान जाने का भय है, परन्तु बिना इस जोखम में पड़े हुए दुनिया का कौन काम होता है। बीना इस योग्य है कि उसके लिये भाँति-भांति के कष्ट भी उठाए जाएं। जबतक मनुष्य परिश्रम नहीं करता, प्रकृति उसके वश में नहीं होती। जब तक श्रम नहीं किया जाता, संसार की कोई वस्तु नहीं मिलती। स्त्री और

प्रकृति उस आदमी की सम्पत्ति है जो अपनी जान जोखम में डाल देता है। फिर मैं भी तो राजपूत हूं, क्यों हताशं होऊं। यद्यपि जोधानाथ बड़ा शक्तिशाली और प्रतापी राजा है और मैं युद्ध में उसका सामना नहीं कर सकता। परन्तु क्षत्री को प्रत्येक स्थान पर लड़ने की आवश्यकता नहीं है। वह बहुत जगह छल और चतुराई से भी अपना काम निकाल लेता है। चलो जोधपुर चलें, वहाँ कोई न कोई सहायक मिल ही जायेगा। महल की दासियों को लालच देकर अपनी ओर मिलाऊं गा और बीना को लाकर ही छोड़ूंगा।

मन में इस तरह का विचार कर के वह भी जोधपुर की ओर जा निकला। मार्ग में एक स्थान पर किसी साधु की कुटी दिखाई दी। उसने सोचा कि थोड़ी देर आराम करके फिर आगे बढ़ूंगा।

वह कुटी में आया। बाबा जी को देख कर मुस्कराया और बोला—"बाबा जी प्रणाम! तनिक इस ओर भी दृष्टि डालिये, आपका सेवक उपस्थित है।"

यह बाबा जी कोई और आदमी नहीं था, बल्कि धमलू माली था। जिसने जालिम सिंह के हाथों तंग आकर अन्त में साधु का बाना धारण कर लिया था। उसने सिर उठाकर देखा और बोला—"अरे दुष्ट जालिम सिंह! तू यहां फिर आ पहुंचा? बेईमान तूने मुझको कहीं का नहीं रक्खा। घर छूटा, बूढ़ी मां मर गई, औरत चली गई। जब मेरी यह दुर्दशा हुई तो मैंने यहां आकर धूनी रमाई। जा कलंकी यहाँ से दूर हो, नहीं तो ऐसा चिमटा मारूंगा कि बिलबिला उठेगा। मैं तेरी सूरत भी देखना नहीं चाहता।"

जालिमसिंह—"बाबा कुशल तो है? आप इतने रुष्ट क्यों हैं?"

धमलू—"जा जा, अपना काम कर। तू धूर्त और गुण्डा है,

जो लोगों को बहकाया करता है। मैं तेरा मुंह तक देखना नहीं चाहता।"

जालिमसिंह—"अच्छा तो आंखों पर पट्टी बांध लो। मुंह न देखो, मगर बात भी सुनोगे कि नहीं ?"

धमलू—"मैं तेरी बात भी नहीं सुनना चाहता। जिस को यह लोक और परलोक दोनों बिगाड़ने हों वह तेरे झाँसे में आवे। मैं ने तुझको खूब समझ लिया है। तू पहले दर्जे का बेईमान और मक्कार है।'

जालिमसिंह—"वाह, बाबा वाह। मैं तो तुम्हारे पीछे कितने दिनों से मारा मारा फिर रहा हूं और तुम नया स्वाँग रचाए हो। क्या तुम अपने इस पुराने मित्र जालिम सिंह को भूल गए ? जो माली को राजकुमार बना सकता है, वह साधु को धूल में भी मिला सकता है। अभी जरा सी खबर करने की देर है, फिर आप की अग्नि और चिमटा अलग-अलग नाचते दिखाई देंगे। धमलू तू मुझको भूल गया, क्यों ? सर्वत्र यह प्रसिद्ध कर दूंगा कि यह वही आदमी है जो जोधपुर का राजकुमार बन कर राय सिंह की लड़की को ठग कर लाया था। राय सिंह तो दूर है, यह जोधपुर का राज्य पास है। अभी तेरे कान उखाड़े जायेंगे और होश ठिकाने लगेंगे।"

धमलू घबराया कि बड़े बुरे आदमी से पाला पड़ा है। यह दुष्ट मुझे यहां भी चैन नहीं लेने देगा। सुनूं तो सही, यह क्या कहता है ?

धमलू—"क्यों, क्या कहते हो ?"

जालिमसिंह—"देखो, सीधी उंगली से घी नहीं निकलता। लात के भूत बात से नहीं मानते हैं। जब तक मैं बाबा कहता था, मेरी और निहारता भी नहीं था। और अब जो मैंने जली-

सुनी सुनाई तो सीधा हो गया।"

धमलू–"मैं यथार्थ में तेरी सूरत नहीं देखना चाहता। तेरी तो परछाई से भी भागता हूं। एक बार तेरा साथ दिया, घर-गृहस्थी, सब नष्ट-भ्रष्ट हो गई। अब कौन जाने मेरी क्या दुर्गति हो? इसलिए बाबा तू मेरा पीछा छोड़ दे, किसी और शिकार की तलाश में जा, मुझ को अब तेरा बिश्वास नहीं रहा।"

जालिमसिंह–"अरे कुछ कहेगा भी कि यों ही टर टर करता रहेगा?"

धमलू—"कहना क्या है, तूने मुझे बेली का लोभ दिलाया और जब वह मिल गई तो तूने उसको जबरदस्ती छीन लिया।"

जालिमसिंह—"मैं छीनने वाले पर लानत भेजता हूं।"

धमलू—"फिर बेली गई कहाँ? क्या वह अपने घर लौट गई?"

जालिमसिंह–"हाँ, अब तूने पते की बात पूछी है। मैं तुझ को सच्चा-सच्चा और सीधा उत्तर दूंगा। बेली तुझ को जी-जान से चाहती है। वह मेरे साथ रहना पसन्द नहीं करती थी। मैंने भी उचित नहीं समझा किसी की व्याहिता स्त्री को तंग करूं। मैं तेरी खोज में बाहर निकला हूं। वह तान सेन के साथ जोधपुर चली गई है। राजा के महल में है और तेरा स्मरण करके जीती है। यह तो उस को मालूम ही हो गया कि तू धमलू माली है। परन्तु वह कहती है कि जिस के साथ मेरा विवाह हुआ है, अब चाहे वह बुरा हो चाहे भला, मेरा स्वामी रहेगा। अब मैं सिवाय उसके और किसी आदमी का नाम न लूंगी। वह पतिव्रता स्त्री है। शोक है कि तू बिना विचारे यहाँ चला आया। तू मर्द नहीं नामर्द है। औरत तो तेरा नाम लेकर जीती है और तूने यह रूप धारण किया है?

अगर ऐसी स्त्री कहीं मुझ को मिली होती तो मैं उसके लिये सहस्त्रों बार मरता। तुझ को क्या कहूं, तू जाति का माली है। नीच कुल में पैदा हुआ है इस लिए नीच काम करता है। भला कहीं तेरी यह शक्ति थी कि बेली तेरे हाथ आती ? यह तो मैंने किसी कारण से तेरे लिए उद्योग किया था, परन्तु तू अयोग्य निकला ?"

धमलू—"अगर यह बात थी तो मेरा अपमान क्यों किया और बेली को मुझ से छीन क्यों लिया ?"

जालिम सिंह—"मुझ को परीक्षा लेनी थी कि बेली कितना तुझ को चाहती है और तू कहाँ तक बेली का पति बनने के योग्य है ? मैं तो बीना पर मोहित हूं।"

धमलू के मुंह में पानी भर आया और वह अपने पर पश्चाताप करने लगा। जालिम सिंह ने ऐसे चकमे दिये कि उस के छक्के छूट गये और वह अपने असली रूप में आ गया। हाय बेली ! हाय बेली ! यह मुझ को बिल्कुल मालूम नहीं था कि तू मुझ पर इतनी मोहित है, नहीं तो मैं सब तरह से तुझ को चाहता।"

जालिम सिंह—"अगर अब भी तू मार्ग पर आ जाए तो मामला बिगड़ा नहीं है, मैं तेरी सहायता करने के लिये फिर भी तैयार हूं।"

धमलू—"अच्छा, बताओ अब क्या करूं ? जो कुछ तुम कहोगे वैसा ही करूंगा।"

जालिम सिंह—"अब तुम बेली को इसी तरह खिल कर कुम्हलाने दोगे या भौंरा बन कर उस का रस लोगे ? मेरा तो अजीब हाल है। मेरे तो हर समय कान में यही आवाज़ आती रहती है कि मानो बेली गा रही है।"

धमलू—"तुम हंसी ही करोगे कि मतलब की बात भी कहोगे ?"

जालिम सिंह—"बात के धनी को बात मिलती है और काम के धनी को काम मिलता है ! तू बात चाहता है, तुझ से बात की जाती है, अगर काम की इच्छा हो तो काम दिया जाए। यह संसार है यहां बात से काम नहीं चलता, कुछ हाथ-पांव हिला कर काम भी करना पड़ता है। बिना काम किये काम नहीं निकलता। एक बार बेली बातों से तुझ को मिल गई, अब बार-बार बातों से कैसे मिल सकती है ? ऐसा न कानों सुना और न आँखों देखा है। मैंने सिर्फ तुझको सचेत करने के लिए इतना कष्ट उठाया। तू चिमटे से मारने की धमकी देता है और मेरी सूरत भी नहीं देखना चाहता है ? ले, मैंने तो अपना काम कर दिया, मेरा सम्बन्ध इस बात में इतना ही था। संदेश तो मैंने दे दिया अब आगे तू जाने तेरा काम जाने। बेकार में भला कौन चिमटा खा सकता है?"

धमलू—"नहीं ! नहीं !! वह समय और था और वह दशा और थी ?"

जालिम सिंह—"मैं तो प्रेत हूं। लोगों को बहकाता हूं और बहकाता किस को हूं ? धमलू माली को। क्यों ? इस बहकाने से मुझको मिलेगा क्या ? टेसू के दो फूल और ढाक के तीन पात। वाह रे समय ! नेकी करने से बदी होती है। जालिम सिंह को यश नहीं बदा है। वह भलाई करता है और उसके बदले उसे बुराई मिलती है। धमलू ! तुझ को इतनी भी समझ नहीं कि मैं तुझ को बहका कर भला तुझ से क्या लूंगा। प्रत्यक्ष में तो किसी गाँव का ठाकुर हूँ। परन्तु सैंकड़ों आदमी मेरी सेवा करते हैं। तुझे तो खाने के लिये रोटी भी

नहीं मिलती।"

धमलू—"नहीं, नहीं ! मैंने भूल की है।"

जालिम सिंह—"आज तूने मुझ से इतनी बात कही है नहीं तो यदि दूसरा कहता तो उसकी आंखें निकाल लेता और जिह्वा काट लेता। अब तो मैं तुझे पता बता कर जाता हूं, आगे बाबा जी तेरी समझ में आवे सो करना। यदि समझ में कुछ न आवे तो कुछ न करना। कौन तेरे काम में पड़े और विपत्ति मोल ले। इस पर भी व्यर्थ में धूर्त, मक्कार और दुष्ट कहलाये ?"

धमलू—"नहीं ठाकुर साहब ! इतने रुष्ट न होइये। मैं आप के साथ रहा हूँ इस लिए बात-बात में बुरा-भला मेरे मुंह से निकल गया। आपने बुद्धिमानी से पहले बेली के साथ मेरा व्याह कराया था, अब आप ही को पुनः स्त्री-पुरुष का समागम कराना चाहिये। अधूरा काम करना आप को शोभा नहीं देता ?"

जालिम सिंह—"काम तो मैं सब कुछ कर दूं, करादूं। परन्तु तू तो निरा काठ का उल्लू है। राजदरबार की बात है ऐसा न हो कि भांडा फूट जाए और फिर लेने के देने पड़ जाएं ?"

धमलू—"नहीं, ऐसा कभी न होगा। आपने पहले भी देख लिया है अब भी देख लोगे। जब तक आप मेरी पीठ पर रहेंगे, मैं कभी चूक न करूंगा। और क्या आश्चर्य है कि मेरे द्वारा आप का भी काम बन जाये ?"

जालिम सिंह—"मेरा काम कैसा ?"

धमलू-"अभी आपने कहा ना, कि बीना भी जोधपुर के महल में है और आप उस पर मोहित हैं।"

जालिम सिंह—"हां, बात तो ठीक है। बीना का ही ख्याल मुझ को यहां तक खींच लाया है। इसके साथ साथ कुछ तेरा

भी ख्याल था, वरना जालिम सिंह ऐसा मूर्ख नहीं है कि वह बिना कारण ही किसी के साथ छेड़ छाड़ करे।"

धमलू—"अच्छा, अब बताओ क्या करना चाहिए ?"

जालिम सिंह—"तूने अच्छा रूप धारण किया है। मैं भी साधू बनता हूं ! मैं बनूं गुरु और तू बने चेला, फिर इसी भेष में दोनों अपना कार्य सिद्ध करें।"

धमलू—"बहुत अच्छा ! मैं सहमत हूं।"

दोनों उसी समय उठे और जोधपुर की ओर चल दिये। जोधपुर पहुँच कर दोनों ने बनावटी साधू का रूप धारण कर लिया।

———

## २७

# जोधानाथ और बीना

बीना को जोधपुर आए हुए बारह महीने हो गये, परन्तु लकड़हारे का पता नहीं लगा। कई आदमी इस काम के लिये नियत किये गये, परन्तु सब निराश होकर लौट आए। न नाम न निशान, न ठौर न ठिकाना, कोई पता लगाए तो कैसे लगाए। जोधानाथ को बीना के आराम का बड़ा ध्यान था! जब हर ओर से निराशा जान पड़ी तो उसने एक दासी को भेजा और बीना से बात-चीत करने की इच्छा प्रकट की। स्त्रियां बड़ी चतुर होती हैं वे उड़ती हुई चिड़िया पहिचान जाती हैं। वह समझ गई कि कुछ न कुछ राजा के दिल में विचार उत्पन्न हुआ है। उसने दासी से कहा—"बहुत अच्छा! महाराज से जाकर कहो कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। पधारिये और जो कुछ आप पूछेंगे उसका उत्तर नम्रता के साथ दूंगी।"

जोधानाथ आया। बीना उसका आदर करने के लिए खड़ी हो गई। फिर दोनों अपने-अपने स्थान पर बैठ गये।

जोधानाथ—"सुन्दरी! तेरे पति की खोज बहुत की गई परन्तु पता नहीं लगता, न ही उसकी कोई आशा की जाती है।

आदमी रायसिंह के राज्य तक में गये। मकान सूना पड़ा है, माल असबाब को किसी ने हाथ नहीं लगाया। रायसिंह के आदमी उसकी रक्षा के लिये नियत हैं। तूने मुझको विशद रूप से हाल नहीं सुनाया। परन्तु मुझे मालूम हो गया है कि तू कौन है और किस घर की है?"

बीना—"क्या आपको इस बात का पता भी लग गया कि मेरा पति कौन है?"

जोधानाथ—"वह वहाँ लकड़ारे के नाम से मशहूर है। इसके अतिरिक्त और कुछ ज्ञात नहीं है। आदमियों के कहने से यह भी ज्ञात हो गया है कि वह बहुत भला आदमी है। सदैव सब से अलग रहता था। तेरे साथ विवाह होने पर भी उसने अपनी आदत को नहीं छोड़ा। तूने विवाह होने के दिन ही उसकी निर्धनता का अन्त कर दिया और उसे धनाढ्य बना दिया।"

बीना—'बहुत अच्छा! और खोज कराइये, कहीं-न-कहीं वह मिल ही जायेगा।"

जोधानाथ—"मैं अपनी सी बहुत कुछ कर चुका, परन्तु सब व्यर्थ हुई। मुझे तुमको ढारस देना आवश्यक है। जो कुछ तू कहेगी, किया जाएगा। परन्तु जिस आदमी का कोई भी नाम निशान न हो, उसकी क्या खोज की जाये?"

बीना—"फिर आप क्या कहते हैं? आज आप मुझको कुछ सलाह देने के लिये आये हैं क्या?"

जोधानाथ—'जो कुछ मैं कहूँगा वह तू अंगीकार करेगी?"

बीना—"जब तक कि मैं उसको सुन न लूंगी तब तक हां या ना करना ठीक नहीं है। आप कहिये मैं प्रसन्न चित्त होकर सुनूंगी और अगर मेरी भलाई की कोई बात होगी तो मैं उसको स्वीकार करूँगी।"

जोधानाथ–"तू जानती ही है कि मैं बुरा आदमी नहीं हूं ?"

बीना—"जो आपको बुरा कहे वह खुद बुरा है।"

जोधानाथ—"आज सोलह वर्ष हो गये हैं। मेरी रानी मुझ से पृथक हो गई थी। उसके वियोग में मैंने दूसरा विवाह भी नहीं किया। अब तक उसकी मूर्ति मेरे हृदय पट पर अङ्कित है। वह दुर्भाग्य से मुझसे अलग हो गई। इसमें न मेरा अपराध था और न उसका।"

बीना—"मैं यह कथा सुन चुकी हूं।"

जोधानाथ—"तूने किससे सुनी ?"

बीना—' राजाओं की बात भला कहीं छिपी रहती है। महल की दासियों ने मुझको सारी कथा सुना दी है। पहले भी मुझे थोड़ा सा मालूम था।"

जोधानाथ—"रानी से मैंने प्रण किया था कि तेरे जीते जी मैं किसी के साथ विवाह नहीं करूंगा। उसके मरने पर भी इस ओर मेरा ध्यान नहीं गया, परन्तु राजपाट का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण सम्बन्धी लोग तंग कर रहे हैं।"

बीना—"फिर आपका क्या विचार है ?"

जोधानाथ—"अगर तुझे स्वीकार हो तो सन्तान के लिये फिर सम्बन्ध पैदा करूं।"

बीना—"मेरी तो राय यही है कि यदि कहीं राजकुल की कन्या आपको मिले, तो आप विवाह कर लीजिये। भगवान की देन को कोई नहीं जानता। सम्भव है कि आपके कोई सन्तान उत्पन्न हो ही जाए ?"

जोधानाथ—"तूने मेरा मतलब नहीं समझा ?"

बीना—"कृपा करके साफ साफ कहिये, जिससे मेरी समझ में आ जाये।"

जोधानाथ—"मेरा विचार तेरे विषय में है।"

बीना—"यह आपकी कृपा है। क्या आप मुझसे आशा करते हैं कि मैं आपके विवाह का प्रबन्ध करा दूँ? बहुत अच्छा, अवसर दीजिये जो काम मेरे सुपुर्द किया जाएगा उसके करने में कुछ भी उठा न रक्खूंगी।"

जोधानाथ—"सुन्दरी! इस तरह बहक बहक कर बातें करना तुझे उचित नहीं है। तू समझ गई है किन्तु बात को टालती है।"

बीना—"महाराज! जब आपको अपनी पहली स्त्री से इतना प्रेम है तो फिर अब विवाह करने में क्या आनन्द मिलेगा? इस प्रकार से तो प्रेम बिल्कुल न होगा।"

जोधानाथ—"यह तो मैं पहिले ही कह चुका हूं कि मेरा यह विचार केवल आवश्यकता के कारण है, रुचि इसकी ओर नहीं है।"

बीना—"आप शायद मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं? सुनिये, मछली पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती, कोयल आम की डाल पर बैठे बिना आराम नहीं पाती, शरीर बिना प्राण नहीं रहता, उसी प्रकार महाराज बीना को तो एक लकड़हारे का ही सहारा है।"

जोधानाथ—"परन्तु उसका तो कोई पता नहीं।"

बीना—"यद्यपि वह बाह्यरूप से मुझसे पृथक हो गया है परन्तु आन्तरिक रूप से वह मेरे पास ही है। उसकी मोहनी मूरत मेरे हृदय में निवास करती है। महाराज, वह मुझसे एक क्षण के लिए भी पृथक नहीं है।"

जोधानाथ—"यदि संसार में जीवित रहना है तो इस विचार को हृदय से निकाल देना चाहिये?"

बीना—"टूटा हुआ शीशा जुड़ता नहीं। लाख उपाय कीजिये फिर भी उसका ठीक होना कठिन है।"

जोधानाथ—"तो क्या अब तेरी लगन परमात्मा से लग गई है ?"

बीना—'मेरा परमात्मा मेरा पति है, और आप जानते ही हो कि वह लकड़हारा है। लकड़हारे को छोड़कर मुझे और किसी परमात्मा की आवश्यकता नहीं है।"

जोधानाथ—"धन्य है बीना तेरे साहस को ! बता अब क्या करूँ ?"

बीना—"महाराज ! लकड़हारे की तलाश कराइये। यदि वह आ जाये तो मेरी और आपकी मनसा पूर्ण हो जाये।"

जोधानाथ—"किस तरह तलाश कराऊँ, मेरे तो कुछ भी बात समझ में नहीं आती ?"

बीना—"मनादी कराइये कि जिनको भी शाही लकड़हारे की जो कहानी याद हो, वह आकर सुनाये। यदि कहानी सच्ची निकली तो इनाम पावेगा, यदि कहानी झूठी निकली तो उसको दण्ड दिया जायेगा। इस उपाय से मेरा पति आ जायेगा। उस को जो कहानी याद है वह दूसरा कोई नहीं जानता।"

जोधानाथ—"शाही लकड़हारे की कहानी कैसी ? तेरी बातों से भांति-भांति के विचार मन में पैदा होते हैं। तेरा पति कौन है ? तू स्वयं मुझसे क्यों नहीं कह देती ?"

बीना—"महाराज ! मैं क्या कहूँ, मुझको स्वयं ही ज्ञात नहीं है। मेरे स्वामी ने एक बार यह कहानी सुनाई थी। आप अधिक आग्रह न कीजिये। उनको आने दीजिये, वह ही कथा सुनावेंगे। आप सुनकर प्रसन्न होंगे और मैं पति के चरण कमल को शीश नवाऊँगी। इस उपाय से काम कीजिये तो उड़ा हुआ पक्षी आप

अपना पिंजरा तलाश कर लेगा।"

जोधानाथ—"बीना तू स्वयं एक पहेली है। अच्छा जो तू कहती है उसको कर देखूंगा। और अगर इस पर भी वह न मिला, तब क्या होगा ?"

बीना—"तब मैं स्वयं उसकी तलाश में बाहर निकलूंगी। मेरे नेत्र कभी भूल नहीं कर सकते, वह चाहे जहाँ हों मैं उनका पता लगाऊंगी।"

जोधानाथ—"क्यों ? क्या तू पुरुषों से अधिक साहस वाली और बुद्धिमता है ?"

बीना—"मैं मन लगाकर खोज करूंगी। उनका खोज करना असाधारण है।"

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बोरी ढूँढ़न चली, रही किनारे बैठ॥

बीना—"तब प्रसन्न चित्त से स्वर्ग की यात्रा करूंगी और वहाँ जाकर उसको ढूँढ़ निकालूंगी।"

जोधानाथ—"धन्य है बाला तेरे साहस को! न जाने क्यों तुझसे स्नेह की गन्ध मुझको आती है ? तेरी बातों से मेरे मन को शान्ति मिलती है। मेरा मन तेरी ओर खिंचा जाता है। तू धीरज धर, आज ही तमाम नगर में मुनादी कराऊंगा। देखूं! इसका क्या फल निकलता है ?"

———

२८

# युवक सन्यासी

रमता जोगी, बहता पानी। मनादी हो गई। दूर दूर से क़िस्सा सुनाने वाले आये। मुसलमानों का समय था, क़िस्सा कहने वालों की क्या कमी थी। मगर किसी का क़िस्सा सच्चा नहीं उतरा। बीना चिक के अन्दर बैठी सुनती थी। क़िस्से के शुरू होते ही वह कह देती थी कि यह क़िस्सा झूठ है। कितने आये, कितने गये, पर कसौटी पर कोई पूरा नहीं उतरा।

खरी कसौटी राम की, ता पर टिके न कोय।
या कसौटी वह टिके, जो सब विधि सांचा होय॥

जोधानाथ को निराशा होने लगी। परन्तु बीना यह कह कर ढारस देती रही कि आने वाला कभी न कभी आयेगा जरूर।

दैवयोग से एक अल्प वयस्क साधू दक्षिण की ओर से जोधपुर आ रहा था। मार्ग में उसको एक ब्राह्मण मिला। साधू ने पूछा—बाबा कहां जा रहे हो? उसने कहा कि मैं गोबिन्द माधो का पुजारी हूँ। लगभग एक वर्ष हुआ कि एक लकड़हारा अपनी स्त्री सहित यहाँ श्राद्ध करने आया था, वह मेरे ही मकान में ठहरा था। परन्तु न जाने क्या बात हुई कि वह कहीं चला

गया। उसकी स्त्री को जोधानाथ जोधपुर ले आया है। नगर में मनादी करा दी गई है कि जो कोई शाही लकड़हारे का किस्सा सुनावेगा, वह इनाम पाएगा। कितने ही किस्से कहने वाले आए, परन्तु सब निराश होकर गये। महल की बांदी ने मुझसे कहा, कि यह किस्सा केवल उस लकड़हारे को ही आता है। क्या कहूं एक बार वह मेरे पास आया भी था परन्तु मैंने उसको यों ही टाल दिया। अब जाकर तलाश करता हूं। यदि कहीं मेरे हाथ लग जाए तो उसके वसीले से सौ पचास रुपये मुझे भी मिल जायेंगे।"

साधू—"क्या तू उसको पहचानता है."

पण्डा—"सूरत शक्ल तो उसकी कुछ कुछ तुम्हारी जैसी थी, परन्तु वह फकीर नहीं था।"

साधू—"जब बारह महीने की बात है तो तुझको कहां मिलेगा, इस विचार को छोड़ दे।"

पण्डा—"वाह बाबा जी, अच्छी राय देरहे हो? अगर कहीं भाग्य से वह हाथ आ जाए तो मेरा भी काम बन जाए और उस का भी काम बन जाए।"

साधू—"तू तो पागल हुआ है। कौन जाने उसका क्या हाल हुआ। परन्तु मुझे शाही लकड़हारे का किस्सा आता है। तू मुझ को महल में ले चल, मैं साधू हूं, मुझको इनाम की इच्छा नहीं है। परन्तु हाँ यदि वह किस्सा सच्चा निकला तो मैं तुझ को इनाम दिलाऊंगा।"

पण्डा—"आप क्या जानें? वह किस्सा तो उस स्त्री के पति के सिवाय दूसरे को तो मालूम ही नहीं, इस बात का पता अब महल के अन्दर लगा है।"

साधू—"तू सचमुच पागल है। हम रमते जोगी हैं। हजारों

से मिलना जुलना रहता है, हजारों की बात जानते हैं। मूर्ख! साधू से बढ़ कर जानकार कौन होता है? यदि तुझको मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो जर तलाश कर, मैं आप ही राजा के महल में जाकर किस्सा सुनाऊंगा। अगर वह किस्सा सच्चा निकला तो तू इधर से भी गया, उधर से भी गया।"

पंडे ने दिल में सोचा, कौन जाने यह सच ही कहता हो। आधी छोड़ सारी को धावे, वाके आधी हाथ न आवे। चलो, इसे भी देख लें। अगर यह झूठा निकला तो फिर कल परसों लकड़हारे की तलाश के लिये चला जाऊंगा। एक दो दिन में क्या हुआ जाता है। अतएव उसने कहा—"अच्छा बाबा चलो आप को राजा से मिला लाऊं। परन्तु आप अपने बचन याद रखियेगा।" साधू ने उत्तर दिया कि कहीं फ़कीर भी झूठ बोलते हैं? दोनों महल की ओर चल दिए। राजा जोधानाथ को खबर दी गई। उसने साधू को सिर से पाँव तक देखा और अपने आदमियों को इशारा किया कि नाथ जी को अच्छी जगह उतार दो, कल इनकी भी परीक्षा हो जायेगी।

धमलू और ज़ालिम सिंह को भी इस बात की खबर थी। वे दोनों भी फ़कीर के वेश में बहुत दिन से जोधपुर में रहते थे परन्तु अभी तक काम काज की कोई सूरत पैदा न हुई थी। उन को भी दरबार में जाने का मोह हुआ। पहले तो जालिम सिंह का इरादा गुरु बनने का था, परन्तु पीछे उसने धमलू को गुरु बनाया और आप चेला बना। कारण कि उसको भय था कि कहीं बात चीत करते हुए धमलू भांडा न फोड़ दे। धमलू तो झोपड़ी में रहता था और जालिम सिंह इधर-उधर चक्कर लगाया करता था। जब उसने सुना कि दरबार किस्सा कहने वाले के लिए खुला है तो उसने धमलू से कहा—"महन्तदास,

जी ! यहां आये महीनों बीत गये परन्तु अभी तक सफलता की कोई आशा नहीं। सुनने में आया है कि जो कोई शाही लकड़हारे का किस्सा सुनाता है उसे दरबार में जाने की आज्ञा मिलती है। चलो इसी बहाने से राजा का महल देख आवें। सम्भव है कि तीर निशाने पर बैठ जाए। अगर यह न हुआ तो न सही, महल तो देख आयेंगे। और यदि किसी उपाय से वहां पहुंच भी जायेंगे तो...धमलू राजी हो गया। दोनों ने मिलकर एक कहानी गढ़ ली और चोबदार को अपने आने की सूचना दी। उनको भी रहने का स्थान बता दिया गया।

---

## २६

# शाही लकड़हारे की कहानी

दूसरे दिन दरबार लगा। अमीर, वजीर सब अपनी-अपनी जगह पर बैठे। राजा सिंहासन पर विराजमान था। बीना चिक के अन्दर बैठी हुई थी। सबसे पहले धमलू और जालिम सिंह को अवसर दिया गया। कारण कि जालिम सिंह का रुपया काम करता था। चोबदार ने आवाज दी कि महन्त दास उपस्थित हैं। राजा ने उनकी ओर देखा और साधू समझ कर नमस्कार किया। बीना जालिम सिंह की सूरत देख कर पहिचान गई। परन्तु चुप रही, कारण कि वह समय और था। साधू बैठ गये और राजा का हुक्म पाकर धमलू ने किस्सा कहना शुरू किया। महाराज सतयुग की कहानी है। एक राजा था। उसका पुत्र बड़ा मूर्ख निकला। पिता ने घर से निकाल दिया। वह किसी दूसरे नगर में चला गया और वहाँ जाकर लकड़ियां बेचने लगा·····अभी धमलू को और कहने का अवसर नहीं मिला था कि बीना ने राजा से कहा—यह झूठे हैं। राजा ने हुक्म दिया कि किस्सा अब बन्द करो, तुम्हारा झूठा है। वह चुप हो गया। अब जालिम सिंह ने प्रार्थना की कि यदि आज्ञा हो तो अब और की भी कहानी सुनें। यद्यपि दूसरों

को उसी समय निकाल दिया जाता था, परन्तु साधू के भेष के कारण राजा उन से कुछ नहीं बोला। उनके पश्चात् अल्प वयस्क साधू उपस्थित किया गया। राजा ने सिर उठा कर उस को देखा और आकर्षित हो गया। उसे हुक्म दिया गया कि अपना किस्सा शुरू करे। साधू ने कहा—एक शर्त पर मैं अपना किस्सा शुरू करूंगा, कि जब तक मैं अपना किस्सा खत्म न कर लूँ, बीच में कोई मनुष्य बोलने न पावे। यदि किसी ने बीच में बात को काटा तो मैं उठ कर चला जाऊंगा। मुझे इनाम की आवश्यकता नहीं है। मैं साधु हूं। जो कुछ देना लेना हो वह इस पंडे को मिले, जो रुपये के लोभ से मुझ को यहाँ लाया है।"

राजा—"स्वीकार है। तुम अपना किस्सा आरम्भ करो।"

साधू—"देखना, रोक-टोक न होने पावे?"

राजा—"कदापि नहीं, आप विश्वास रखिये।"

साधू ने आदि से अन्त तक अपना किस्सा कह सुनाया। किस्से को सुन कर राजा और बीना दोनों दंग रह गये। राजा ने कहा—"यही मेरा पुत्र है। बीना ने कहा, यही मेरा स्वामी है। साधु ने अपनी गुदड़ी उतार कर फैंक दी और उसी भेष में नजर आया, जो उसने सिद्ध पुर में बना रखा था। बीना के हर्ष का अब कोई पार न रहा। जोधानाथ ने झट से उसको छाती से लिपटा लिया। भाट, चारण और बंदी गण को अवसर मिला। सबके मुख से जय-जयकार के शब्द निकलने लगे और आनन्द भैरी बजने लगी। राजा ने इस अवसर पर जी खोल कर दान दिया।

---

## ३०

# छल कपट

जालिम सिंह ने धमलू से कहा—"कि हाय! सारी मेहनत अकार्थ गई, लकड़हारा तो जोधपुर का राजकुमार निकला! बीना अब क्यों हाथ आने लगी, महल में चौकी पहरे लगे हैं। वहां किसी की पहुँच तक भी नहीं, कोई उपाय भी नहीं चलता! क्या करूं सब कुछ कर चुका, परन्तु सफलता नहीं हुई?"

धमलू—"यह भाग्य का उलट फेर है। भाग्य ने ही लकड़हारे को राजकुमार बना दिया। कौन जाने वह सच्चा है या झूठा? सम्भव है कि उसने असली राजकुमार से सारा हाल जान कर उसको मार दिया हो और आप उसके रूप में प्रकट हुआ हो। यदि तुमसे हो सके तो तुम किसी तरह यह बात राजा के कान तक पहुंचा दो, राजा को बहुत जल्दी विश्वास हो जाता है। यदि तनिक भी उसका मन राजकुमार की ओर से फिर जाए तो बस फिर तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायेगा।"

जालिमसिंह—"अब यहाँ दाल नहीं गल सकेगी। क्या तूने नहीं देखा था कि उसने किस शान के साथ अपनी कहानी

गुरू की थी ? मैं तो अब तक उसको निरा उल्लू ही समझता था, परन्तु वह तो बड़ा बुद्धिमान निकला। उस पर दाव चलना कठिन है। इसके अतिरिक्त राजा एक दफे भूल कर बैठा है, कि उसने अपनी रानी को महल से निकाल दिया, अब वह सोच-समझ कर काम करेगा। लकड़हारे ने रानी के हाथ की लिखी हुई चिट्ठी भी उसको दिखा दी है। अब वह हमारे झांसे में नहीं आएगा। दूध का जला छाछ को फूंक फूंक कर पीता है। उसके विरुद्ध जो कोई ऐसी बात मुंह से निकालेगा, वह पकड़ा जाएगा और उससे सबूत माँगा जावेगा। हमारे पास सबूत क्या है ? बीना मुझको पहिचानती है। मेरे बिरुद्ध एक शब्द भी उसके मुंह से निकलना, मेरे लिये विष के समान हो जाएगा और मै पकड़ा जाऊंगा। और क्या आश्चर्य है कि मुझ को उसी समय फाँसी दे दी जाए। यह राय ठीक नहीं है। यदि कोई और बात सोच सकते हो तो कहो ?"

धमलू—"एक क्या हजारों उपाय सोचे जा सकते हैं ! जब आदमी काम करने पर आता है तो वह समुद्र में से माती भी निकाल लाता है। पहाड़ की छाती चीर कर लाल भी पैदा करता है।"

जालिम सिंह–"जब यह बात है तो तुम्हारी अक्ल कब काम आएगी ?"

धमलू—"अब तक तुम अपनी अक्ल पर खेलते थे, इसलिये मैं चुप था। अब तुम पूछते हो तो मैं एक क्या सैंकड़ों उपाय बताऊंगा, परन्तु बेली का पता नहीं। बीना तो महल में है, परन्तु बेली न जाने कहां है ? यदि महल में बेली है तो किसी उपाय से उसको मेरे यहां आने का हाल बता दो। यदि एक बार भी मेरी उससे भेंट हो जाए तो फिर मैं उसकी सहायता से बीना

के भागने का भी उपाय कर सकता हूँ।"

जालिम सिंह—"बेली भी राजमहल में है, परन्तु माली के साथ व्याह होने से वह शर्माती है। स्त्रियों से कम बात चीत करती है इस लिए लोग उसका नाम कम लेते हैं। इस समय तुम कोई ऐसा उपाय ढूंढ़ो, जिस से मेरी उस तक पहुँच हो सके।"

धमलू—"सुनो जालिम सिंह तुम किसी उपाय से महल की एक दो दासियों से मिलो और उनमें यह प्रसिद्ध कर दो कि यहाँ पर एक बहुत बड़े सिद्धराज जोगी महात्मा पधारे हैं। यदि उनमें से कोई भी अपने वश में हो जावे तो विश्वास बढ़ा कर बीना को महल से निकलवाने का उद्योग कर सकूंगा! बिना साध्य साधक का काम नहीं बन सकता। जब भीड़ भाड़ अधिक होने लगेगी तो ये लोग हमारी राह में कांटे हो जायेंगे। किसी उपाय से महल की नौकरानी को अपनी तरफ मिला लो, फिर सब काम बना बनाया है।"

जालिम सिंह—"कहिये?"

धमलू—"महल की कोई बूढ़ी औरत मिल जाए और उस पर जादू चल जाए, फिर हम उसको समझाने लगें कि बीना डायन है। अगर यह राज्य में रहेगी तो राज्य नष्ट हो जाएगा। वह किसी चाल से उसको महल से निकाल देगी, तुम उसको लेकर भाग जाना।"

जालिम सिंह—"परन्तु यह कैसे सम्भव है?"

धमलू—"कोई दासी मिले तो उसके द्वारा काम करें। वह बीना की जंघा में कोई चिन्ह बना दे, मैं महल की किसी बूढ़ी स्त्री को बता दूं कि उसकी जंघा में बहुत बड़ा चिन्ह है। स्त्रियां स्वभाव की भोली-भाली होती हैं। जैसे उनको पट्टी पढ़ाओं, वैसा

ही वह करने के लिये तैयार हो जाती हैं। इसका किसी को पता भी न चलेगा।"

जालिम सिंह—"वाह पट्ठे! बात तो बड़ी दूर की सोची। मन्त्र बड़ा जबर्दस्त है। पहले तूने क्यों नहीं किया?"

धमलू—"समय की बात है। अब क्या हुआ, अब तो और भी अच्छा अवसर है? महलमें आनन्द मंगल मनाया जा रहा है, सब लोग बेसुध हैं। पहले तो बीना लकड़हारे की याद में किसी से मिलती-जुलती भी नहीं थी, प्रत्येक के मुंह पर निराशा देखी जाती थी। परन्तु इस समय तीर निशाने पर बैठेगा। हर्ष के समय मनुष्य अपने आप को भी भूल जाया करता है।"

जालिम सिंह—"यथार्थ में आप का कहना ठीक है।"

धमलू—"परन्तु मित्र मुझको तो बेली की चिन्ता है। उसका पता अवश्य लगाना। यदि वह मेरा वैसा ही खयाल रखती है जैसा कि तुमने कहा था, तो मैं बड़ी आसानी से सब कुछ कर सकता हूं।"

जालिम सिंह—"तुम चिंता न करो। पहले बीना हाथ आ जाए तो मैं स्वयं धीरे से बेली को निकाल लाऊंगा। यदि पहले ही बेली को चिन्ता हुई तो कौन जाने क्या हो? जब बेली सुनेगी कि बीना के अनादर करने के उपाय किये जा रहे हैं तो वह बहुत प्रसन्न होगी और बीना के साथ चली आएगी। क्या तुम को नहीं याद है कि तुम्हें जोधपुर का राजकुमार समझ कर उसने ब्याह किया था? खेल बिगड़ गया। अब उस को बीना की ओर से अवश्य ईर्षा होगी। वह कब चाहेगी कि बीना भोग विलास में लिप्त हो, महल की रानी बने और वह घृणा की दृष्टि से देखी जाए?"

धमलू—"इसी विचार से तो मैंने कहा कि पहले बेली से मिल जुल कर बात चीत करनी चाहिये। वह हमारे काम में

सहायता करेगी ।"

जालिमसिंह जानता था कि बेली को तानसेन भगा ले गया है वह जोधपुर के महल में नहीं है । परन्तु धमलू को लोभ देने के विचार से उसने असली भेद को छिपा रक्खा था, कि जिससे वह विरुद्ध न होने पावे और उसके पंजे में फंसा रहे । उसने धैर्य के साथ उत्तर दिया–"अच्छा मित्र ! यदि मैं अवसर पाऊंगा तो बेली की चिन्ता करूंगा । परन्तु मुझे फिर भी संदेह है, कारण कि स्त्रियों का विश्वास जरा कम ही होता है । उनसे सदा बचना चाहिए, वे विश्वास के योग्य नहीं होतीं । न जाने ऊँट किस करवट बैठे और पीछे पश्चाताप करना पड़े ?"

धमलू—"हां, बात ठीक है । अच्छा सोच समझ कर जैसा उचित समझो वैसा करो । तुम स्वयं चतुर तथा चालाक आदमी हो ।"

— —

## ३१

# साधुओं का अखाड़ा

जहां दो चार साधू मिल जाते हैं, झूठे साधुओं का बाजार स्वमेव गर्म हो जाता है। एक ने दो से कहा, दो ने चार से कहा। इसी प्रकार सारे नगर में बात फैल गई कि दो महात्मा हिमालय पर्वत से आये है। बड़े सिद्ध हैं। लोगों के मन की बात बताते हैं। धमलू ने अपना नाम महन्तदास रक्खा और जालिम-सिंह का नाम बसन्तदास। अब से हम उन को इन्हीं नामों से पुकारेंगे। महन्तदास तो गुरु और बसन्तदास उस का शिष्य बना। इन दोनों साधुओं में कलयुगी साधुओं के सारे लक्षण पाये जाते थे। धूनी लगा रक्खी थी, गांजे की चिलम चलती थी, सोटा और चिमटा पास रक्खा रहता था। बसन्तदास ने कुछ ऐसा भानमती का छू मन्तर लोगों में फूंक दिया था कि सैंकड़ों आदमियों की भीड़ हर समय लगी रहती थी। जो मिलता, पहले बसन्तदास से मिलता था। वह सब बातें उस से पूछ लेता था और उसने कुछ इस प्रकार के संकेत बना रक्खे थे कि बिना कुछ कहे सुने ही महन्तदास बात को समझ जाता था। जिन को लड़के की चाह होती थी, बसन्त-दास उन्हें दाहिनी ओर बैठाता था। महन्तदास कहता था

बच्चा ! सिद्ध जोगी जान गये कि तुझ को सन्तान की अभि-लाषा है, इसीलिये साधू के दर्शन को आया है। जिन को रुपये पैसे की आवश्यकता होती थी, उन को बसन्तदास बाईं ओर बैठाता था तथा महन्तदास बोल उठता था—"दुनिया दीवानी है कि फ़कीरों के पास धन दौलत मांगने आती है। अहा हा ! यहाँ क्या रक्खा है ? राख का ढेर है--अस्तु ! साधू के दरबार से कोई खाली न जायेगा। रोगी मनुष्य बीच में बैठाये जाते थे। महन्त जी एक चुटकी भर कर राख उठा कर देते थे और कहते थे। लेजा इस को घोल कर पी लेना, तेरा रोग दूर हो जाएगा।

महन्त जी की जिह्वा पर सदा गाली रहती थी। उनके नेत्र अंगारे की भांति लाल रहते थे ! उनकी गालियों को सुन कर किसी को अधिक बातचीत करने का साहस नहीं होता था। थोड़े ही दिनों में लोगों के दिलों में उनकी सिद्धताई का सिक्का बैठ गया ! जो भी जाता था वह प्रसन्न होकर आता था तथा कहता था कि बाबा जी अन्तर्यामी हैं और मन की बात स्वयं ही कह देते हैं। किसी को कुछ भी बताने की आवश्यकता नहीं होती।

गांझा और चरस पीने वाले पतंग की भांति गिरने लगे। राजपूताने में उस समय अफीम का बहुत प्रचार था। थोड़ी बहुत वहाँ भी रक्खी रहती थी। जो जाता था कुछ न कुछ उस का प्रसाद पाता था, वहां कमी किस बात की थी। पहले-पहल तो बसन्तदास ने अपनी गाँठ से रुपये निकाले, फिर तो दूकान जम गई। चढ़ावा चढ़ने लगा। रुपया खनाखन बरसता था। फल-फूल सब्जी और मेवों का ढेर लगा रहता था। किन्तु जैसी बहुतायत से आता था, वैसी ही उदारता से खर्च

कर दिया जाता था।

प्रातःकाल का समय था। दोनों साधू उठे और नित्य कर्म से निवृत होकर धूनी पर बैठे। गांजे का दम लगना शुरू हुआ। घड़ी दिन चढ़े भंग घुटने लगी तथा सब ने बारी-बारी से प्याला भर कर पिया।

प्रातःकाल से लेकर अर्द्ध रात्रि तक यही दृश्य देखने में आता था। यदि कोई धर्म-कर्म के विषय में प्रश्न पूछता था तो महन्त जी का उत्तर पहले से ही तैयार रहता था। बाबा, तू क्या टांय-टांय करता है? हम ने तो भगवत गीता भंग के सोंटे से रगड़ डाली है, पोथी को गांजे की चिलम पर रख कर फूंक दिया है। यहाँ बैठना हो तो बैठ, नहीं तो चला जा, अपना काम देख। पंडितों की बात का साधुओं के यहां क्या काम? लाचार होकर वो बेचारा चुप हो जाता या धीरे से उठ कर चला जाता था। उसके पीठ फेरते ही महन्त जी उस को सैकड़ों गालियाँ सुनाते थे।

शोक! ऐसे ही मूर्ख वेष धारियों ने हिन्दू धर्म का सत्यानाश किया है और हमारी जाति तथा समाज की दुर्दशा की है। रात को जब सब चले जाते थे तो गुरु और चेले में मतलब की बातें होती थीं। कुछ श्रद्धालु भक्तों ने उस जगह उनके रहने के लिए पक्का मकान भी बनवा दिया था। अब तो और भी गुलछर्रे उड़ने लगे। नगर के सभी आए, परन्तु महल के किसी व्यक्ति ने भी उन की ओर ध्यान नहीं दिया। एक दिन वे दोनों आपस में इसी प्रकार की बात-चीत करने लगे।

बसन्तदास—"गुरु जी! अभी तक कोई काम की चिड़िया हमारे जाल में नहीं फंसी है?

महन्तदास—"कोई चिन्ता नहीं, वर्षों का काम एक दिन में

नहीं होता। देखो किस भांति सब कुछ धीरे-धीरे होता जा रहा है, घबराने की क्या बात है? धीरज धरो, देखो सब कुछ हो जायेगा।"

बसन्तदास—"आप को तो इस दशा में सन्तोष आता जाता है, परन्तु मुझ को अपने घर-बार और राज-काज की भी चिन्ता है।"

महन्तदास—"अगर काम करना है तब तो भाई चित्त को एकाग्र करके रखना चाहिये, नहीं तो तुमने सुना होगा, "दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम।"

बसन्तदास—"मेरा जी तो अब यहां नहीं लगता।"

महन्तदास—"तो फिर घर चले जाओ, छोड़ो इस झगड़े को।"

बसन्तदास—"हाय बीना! तू किस भांति हाथ लगेगी?"

महन्तदास—"अब द्वार खुलने को ही है, परन्तु तुमने बेली की कुछ खबर पाई या नहीं?"

बसन्तदास—"खबर मिलती तो क्या तुम को नहीं बताता?"

महन्तदास—"कहीं ऐसा तो नहीं है कि बेली यहां न आई हो और तुमने झूट मूट दम दिलासा देकर मुझ को अपना कार्य साधन का यन्त्र बनाया हो?"

बसन्तदास—"तुम भूलते हो! बेली यहां पर अवश्य है परन्तु महल में तो पक्षी भी नहीं जा सकता, चौकी पहरे बैठे हुए हैं। मैं क्या करूं स्वयं लाचार हूं कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता?"

महन्तदास—"फिर तुम जब कभी शहर में जाते हो तो क्या काम करते हो? किसी भोली भाली स्त्री को वश में करो, तब यह कार्य सिद्ध होगा अन्यथा नहीं।"

बसन्तदास—"औरतें तो बीसों मिल सकती हैं परन्तु यह तो भेद की बात है, हर किसी पर प्रकट नहीं की जा सकती।"

बसन्तदास—"फिर कुछ दिन और सन्तोष करो, आप ही कोई न कोई उपाय निकल आवेगा।"

———

## ३२

# महल की दासी

जब यह बात सारे नगर में आग की भांति फैल गई कि सिद्ध महात्माओं के पास जाने से सब की मनोकामना पूर्ण होती है, तो जोधानाथ की दासियों में से एक दासी को भी उनके दर्शनों की अभिलाषा हुई। वह बांझ थी। उसका व्याह हुए कई वर्ष हो गये थे परन्तु उसको कोई सन्तान नहीं हुई थी। व्याही स्त्री के यदि कोई सन्तान न हो तो वह घृणा की दृष्टि से देखी जाती है। आस-पास की स्त्रियां उसे उलहना देती हैं। यदि कोई मनुष्य बांझ स्त्री का प्रातःकाल देख ले तो उसको सारे दिन दुःख और क्लेश उठाना पड़ता है। सन्तान वाली स्त्रियां उसकी परिछाईं से भी भागती हैं। वह स्त्री बहुत दुःखी थी। उसने बहुत कुछ उपाय किये थे परन्तु उसका मतलब सिद्ध नहीं हुआ था। जब पड़ोसियों ने राय दी कि तू महात्मा के पास जा, तब उसने अपने पति से उसके पास जाने की इच्छा प्रकट की और वह उसको लेकर बाबा जी की कुटी में पहुंचा।

वसन्तदास बड़ा चालाक आदमी था। उसने दासी को देखकर पहिचान लिया कि इसको कोई सन्तान नहीं इस लिए उसने दासी को दाईं ओर बिठाया।

महन्तदास—"क्यों, तुम पुत्र की इच्छा से यहाँ आये हो?"

दास—"हाँ महाराज ! इसी इच्छा से आया हूं।"

महन्तदास—"तुम कौन हो ?"

दास–"मैं राजा जोधानाथ का दास हूँ और यह मेरी स्त्री है। यह भी महल में दासी का काम करती है।"

बसंतदास और महन्तदास ने आपस में संकेत किया।

महन्तदास—"इस बाई को बांझपनका रोग है। बड़े-बड़े उपाय करने पड़ेंगे तब कार्य की सिद्धि होगी।"

दास–"जो कुछ आप आज्ञा देंगे मैं करने के लिये तैयार हूँ।"

महन्तदास—"दो शर्तें हैं। पहली तो यह कि इसका पहला लड़का हम को देना होगा, दूसरा तुम रखना। यह तुम्हारे पहले लड़के को अपना चेला बनाएंगे। जब तुम्हारे यहां पहला लड़का होगा तो हम उसको लेकर चले जांयगे, क्योंकि रमते राम हैं। एक स्थान पर बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकते और न तुम्हारे दूसरे लड़के का इन्तजार कर सकते हैं। यदि तुम इस शर्त को स्वीकार न करो तो दूसरी शर्त बहुत आसान है। उसे हम एकान्त में इस बाई से कहेंगे। परन्तु इस को उसके छिपाने की सौगन्ध खानी होगी ?"

बाई–'महाराज ! जो आपकी आज्ञा हो वह शिरोधार्य है।"

महन्तदास—"बहुत अच्छा ! मैं तुम को भभूती के साथ दवा भी दूंगा और यह बात भी कहूंगा। अच्छा तुम यह तो बताओ कि राजा के महल में कोई बूढ़ी रानी भी है ?"

बाई—"हां महाराज, जोधानाथ की माता है।"

महन्तदास–'वह महात्माओं के दर्शनोंको क्यों नहीं आई ?"

बाई—"उनका इरादा तो है। किसी दिन अवश्य आवेंगी, अभी तक उनको अवकाश नहीं मिला है।"

महन्तदास—"आश्चर्य है कि साधुओं के दर्शन के लिये भी समय नहीं मिलता ?"

बाई—"यदि आप कहें तो मैं उनसे कहूं ?"

महन्तदास—'हां, हां, अवश्य कहो (परंतु कुछ देर ठहर कर) उसके ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आने वाली है। यदि तू चाहे तो यह विपत्ति दूर भी हो सकती है। पहले तुझ से काम की बात करा लूं तब तू उसे यहां लाना।"

महन्तदास—"बहुत अच्छा।"

"खूब समझ बूझले। यदि तू इस शर्त पर राजी हो तो मैं तुझ से कहूं, और जो बात कही जाए उसको अपने हृदय में रख। यदि भूल कर भी मुंह से निकाली तो फिर कभी भी तेरे सन्तान न होगी।"

बाई—"नहीं बाबा ! मैं आपके वचन का कभी उल्लंघन नहीं करूंगी।"

महन्तदास—"अच्छा कल सेर भर घतूरा, सेर भर गांझा और पांच सेर भंग इन आदमियों के लिये लाना।"

बाई—"अच्छा महाराज ! अवश्य लाऊंगी।"

फकीर ने हाथ से इशारा किया और उन दोनों ने अपने घर का रास्ता लिया।

दूसरे दिन वे पति पत्नी प्रातःकाल फिर पहुंचे और जो जो वस्तुएं साधुओं ने बतलाई थीं उन्हें भी साथ ले आए।

महन्तदास—"बाई तेरी कामना सफल होगी।"

बाई—"महाराज, अब क्या उपाय है ?"

साधू ने थोड़ी दूर पर अपना आसन लगाया। जिस से सब लोग उसको देखते तो रहें किन्तु जो बात चीत उसके और बाई के बीच में हो, वह कोई सुन भी न सके।

महन्तदास—'अच्छा बाई, अब मेरी ओर ध्यान दे।"

बाई—"हां महाराज ! मैं सुन रही हूँ।"

महन्तदास—"तेरे राजा के महल में एक नई रानी बीना

रहती है क्या ?"

बाई—"हां रहती है। वह राजा रायसिंह की बेटी और राज कुमार की रानी है।"

महन्तदास—"तुझ को ज्ञात है ना ?"

बाई—"क्यों नहीं, मैं रात दिन उसी की महल में रहती हूँ। वह बड़ी गुणवती और शीलवती स्त्री है।"

महन्तदास—"पागल है। तू उसका हाल नहीं जानती ?"

बाई—"मैं स्त्री हूं, जो कुछ देखती और सुनती हूं उसी को समझ सकती हूं, भेद की बात को तो साधू महात्मा ही जान सकते हैं।"

महन्तदास--"वह कुटिल स्त्री है।"

बाई—"होगी।"

महन्तदास–"अच्छा अब तू अपने पति की सौगन्ध खा कि आपकी बात किसी से न कहूंगी, तब मैं तुझ से कहूं ?"

स्त्री ने तीन बार सौगन्ध खाई।

महन्तदास—"इसी बीना के कारण जोधपुर के राजा के नष्ट होने का भय है। तू यह छोटा त्रिशूल ले ले और यह बेहोश करने वाली दवा की शीशी है ! जब बीना सो जाए तो इस को गर्म कर के उसकी जंघा में इससे चिह्न कर देना। परन्तु जागने से पहले यह दवा अवश्य सुंघा देना नहीं तो तेरी कुशल नहीं ?"

बाई— 'बहुत अच्छा महाराज ! मुझे याद रहेगा।"

महन्तदास—"जिस दिन तू जंघा में चिह्न कर देगी उसके दूसरे दिन बूढ़ी रानी को मेरे पास लाना, मैं सब हाल उससे कहूंगा। जो कुछ वह कहे वह तुझ को करना होगा। परन्तु यह भेद किसी को मालूम न होने पावे, नहीं तो फिर तेरे कोई सन्तान न होगी।"

बाई—"महाराज ! मैं सब प्रकार से आप की सेवा करने को

तैयार हूँ ।"

महन्तदास—"अच्छा ले, यह भभूति और दवा लेजा, सवेरे इनको खा लिया करना और दस मास के पश्चात् पुत्र उत्पत्ति की आशा करना ।"

स्त्री मन में अति प्रसन्न हुई । साधू ने ऐसी चतुराई से उस को त्रिशूल और दवाई की शीशी दी, कि किसी ने भी उनको न देख पाया । इसके बाद स्त्री साधू को प्रणाम कर के अपने घर को चल दी ।

---

# ३२

# धूर्तता की सफलता

दांव चल गया, बाजी मार ली ! दोनों साधू हर्ष के मारे मन में फूले नहीं समाते थे । धूनी के चारों तरफ उसी तरह भीड़ लगी रहती थी । झुंड के झुंड आदमी जमा रहते थे । संसार अन्धा है । यदि किसी का काम हो भी जाता है तो वह उस मूल कारण का पता नहीं लगाता, बल्कि साधू के वचन का प्रभाव समझता है । विश्वास में भी बड़ी शक्ति है । यदि मनुष्य अपने विचार से ही काम ले तो साधारण रोगों को तो वह विचार शक्ति से ही नष्ट कर सकता है । जोधपुर वाले नादान और मूर्ख थे । साधुओं में उनका अधिक विश्वास था । जिसको देखिये वही आंखें बन्द किये हुए चला जा रहा है । सारे नगर में साधुओं की इज्जत होने लगी ।

दासी ने अवसर पाकर बेचारी बीना की जंघा पर त्रिशूल का चिन्ह बना दिया और उस पर वही बेहोशी की दवा भी मल दी, जो साधू ने उसे दी थी । दूसरे दिन उसके उस स्थान पर कुछ पीड़ा भी हुई । परन्तु क्या पता था कि उस बेचारी पर कोई नई विपद आने वाली है ।

इस काम के बाद वह बूढ़ी रानी को अपने साथ चालाक साधुओं के पास लाई । रानी ने बहुत कुछ भेंट चढ़ाई, जो नीति

अनुसार उपस्थित जनों में बाँट दी गई। अब तो उसकी श्रद्धा पहले से बहुत बढ़ गई और उसने दिल में समझ लिया कि ये साधू तथा सच्चे परमात्मा के भक्त है।

रानी—"महाराज ! आपने बड़ी कृपा की जो इस नगर को अपने चरणों से पवित्र किया और फिर हमारे सोए हुए भाग जगाये।"

महन्तदास—"सुन रानी. साधुओं का जीवन दूसरों के ही उपकार के लिये होता है। सब को अपनी--अपनी पड़ी रहती है किन्तु एक साधू ही हैं जो दूसरों का उपकार किया करते हैं। हम दोनों हिमालय की कन्दरा से आ रहे हैं। बहुत काल तक कैलाश में रह कर तपस्या करते रहे, किन्तु दाता ने प्रेरणा की कि जोधपुर चलकर राजकुल की रक्षा करनी चाहिये, बस तेरे उपकार के लिये हमारा आगमन हुआ है।"

रानी—"धन्य हैं आप और धन्य आपका जीवन। मेरा विचार तो पहले से ही दर्शन करने का था, परन्तु कार्य वशात आ नहीं सकी।"

महन्तदास—"कोई बात नहीं, अब तो तुमको दर्शन मिल ही गये।"

रानी—"मेरे भाग्य का तारा उदय हो गया।"

महन्तदास—"तू बड़ी भाग्यवान है। तेरा पुत्र जोधानाथ बड़ा प्रतापी है और अब तेरा पौत्र भी मिल गया।"

रानी-"सब आप महात्माओं की ही कृपा है. नहीं तो नाती की ओर से तो हम निराश हुए बैठे थे। यह भी आप ही का प्रताप है कि आप के शुभागमन के साथ--साथ नाती भी आ गया। बड़ा अच्छा लड़का है और थोड़े ही दिनों में इस होनहार लड़के ने अपनी प्रजा को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है।"

महन्तदास—"क्यों न हो, बाँस की कोठी में बाँस ही पैदा होते हैं। सिंह के बच्चे सिंह ही होते हैं। यह सब तेरे भाग्य का ही फल है। तेरा भाग्य प्रशंसनीय है। परन्तु एक बात तेरे कुल को हानि पहुंचाने वाली है।"

रानी चौंक उठी और बोली—"महाराज! वह क्या?"

महन्तदास—"सब के सामने उसका वर्णन करना उचित नहीं है।"

रानी—"तो महाराज एकान्त में चलूं?"

महन्तदास—"तुम बैठी रहो, यहां ही प्रबन्ध हो जायेगा।"

पहले की भांति थोड़ी दूर पर आसन बिछाया गया। महन्तदास उस पर बैठ गये और रानी भी वहाँ पास जाकर भूमि पर बैठ गई।

रानी—"हाँ महाराज! सुनाओ वह कौनसी बात है जो मेरे कुल को हानि पहुंचायेगी?"

महन्तदास—"तेरे यहाँ एक डायन आ गई है।"

रानी—"डायन! महल में तो कोई डायन नहीं है। परन्तु आप मिथ्या नहीं कहते होंगे. मेरे समझने में ही भूल होगी?"

महन्तदास—'सुन वह डायन बीना है, जो तेरे पोते की बहू है।"

रानी—(उदास होकर) "नहीं महाराज! ऐसा न कहिये, वह तो बड़ी सुशील स्त्री है। उसके आने से तो हम सबके दिन फिर गये हैं।"

महन्तदास—'रानी तू क्या जाने, संसार में अनेक विचित्र बातें हुआ करती हैं। कभी-कभी फूलों की पंखड़ियों में काले नाग दबे बैठे रहते हैं।"

रानी—"महाराज! मैं कैसे इस बात को मान लूँ?"

महन्तदास—"सुन, जब बीना सो जाये तो उसकी बाईं

जांघ खोलकर देखना। यदि उस पर त्रिशूल का चिन्ह हो, तब तो वह साफ डायन है, और यदि न हो तो नहीं है। परन्तु कैसे कहा जाये, मुझ को तो देवताओं ने आकाशवाणी सुना कर कहा कि जोधानाथ के महल में डायन आ गई है और यदि रानी उसको न निकाल देगी तो सारा कुल भ्रष्ट हो जायेगा।"

रानी—"अच्छा, मैं आज ही रात्रि को देखूंगी।"

महन्तदास—"देखना ही नहीं, बल्कि आज ही काम की शुभ घड़ी है।"

रानी—"जो कुछ आप कहें मैं वह करूं और जोधानाथ को भी बता दूं ?"

महन्तदास—"नहीं, राजा को बताने की आवश्यकता नहीं है, देवताओं ने यह काम तुझ को ही सौंपा है।"

रानी—"देवताओं ने यह बड़ी कृपा की। अच्छा तो मुझे क्या करना है ?"

महन्तदास—"बीना को अर्द्धरात्रि के समय सन्दूक में लिटा कर हमारी कुटी में छोड़ जाओ। हम अवसर पाकर उसको कहीं बाहर जंगल में छुड़वा देंगे।"

रानी—"परन्तु बीना बालक नहीं हैं। सन्दूक में लिटाये जाने के समय वह शोर करेगी तो सारा घर जाग उठेगा ?"

महन्तदास—"इसका इलाज तेरी दासी के हाथ में है, वह सब कुछ कर देगी।"

रानी—"फिर यह तो बताइये कि इसके सिवाय क्या और कोई दूसरा उपाय नहीं है ?"

महन्तदास—"देख रानी, यदि तू मोह-माया के कारण दुविधा में पड़ती है, तो तू जाने तेरा काम जाने, हम को तो जो आज्ञा हुई थी सो कह सनाई। पहले त घर जाकर उस चिह्न को

देख ले, तब जो मन में आवे सो करना।"

रानी—"बहुत अच्छा। अब आज्ञा दीजिये कि मैं जाऊं और जो कुछ कहा है उसका प्रबन्ध करूं ?"

महन्तदास—"हां, परन्तु ध्यान रहे कि किसी को इसका भेद मालूम न होने पाए ?"

रानी थी बुढ़िया खूसट। एक तो यूं ही सठिया गई थी, दूसरे हिन्दुओं के धर्म-कर्म की हीन श्रद्धा ने उसकी आंखों पर पट्टी बांध रक्खी थी। महन्तदास की सब बातें उसके दिल पर पत्थर की लकीर की भांति जम गई थीं। उसने सोचा, जो कुछ महात्मा कहते हैं वह सब सत्य है, उनको झूठ से क्या काम ?

दासी रानी को साथ लेकर घर गई और रानी किसी बहाने से बीना की जंघा में त्रिशूल का चिन्ह देख कर समझ गई कि यह डायन है और उसके पृथक करने में लग गई। उधर दोनों महात्मा आनन्द में मग्न थे। अब क्या है ? दांव मार लिया, पौ बारह हैं।

महन्तदास—"देखो जी, मैंने बीना का तो सब कुछ प्रबन्ध कर दिया, परन्तु बेली का कहीं पता भी नहीं चलता ?"

बसन्तदास—"घबराओ नहीं, पता मिल जायेगा।"

महन्तदास—"कब ?"

बसन्तदास—"आज ही रात को।"

महन्तदास—"आज की रात तो यहाँ से भागने की तैयारी होगी ?"

बसन्तदास—"धीरज धरो, मुझको तुम से अधिक चिन्ता है।"

महन्तदास—"यह तो साफ प्रगट है।"

बसन्तदास—"क्या साफ प्रगट है ?"

महन्तदास—"कि तुम को मुझ से अधिक चिन्ता है।"

बसन्तदास—"निस्संदेह ?"

महन्तदास—"इसमें तनिक भी संदेह नहीं।"

बसन्तदास—"आज तुम कैसी बातें करते हो ?"

महन्तदास—"जैसी मन में आती हैं।"

बसन्तदास—"कैसी मन में आती हैं ?"

महन्तदास—"दोनों दीन से गये पांडे, हलुवा भये न मांडे।"

बसन्तदास—"नहीं, तुम घबराओ नहीं। मैं नगर में जाता हूं और इसका भी बंदोबस्त करूंगा।"

महन्तदास—"अच्छा जाइये और शीघ्र खबर लाइये।"

———

## ३४

# घर का भेदी लंका ढावे

धमलू के मन में आशंका हुई। वह समझ गया कि बेली जोधपुर में नहीं है। जालिमसिंह उसको यों ही चालबाजी से उल्लू बना रहा है। इधर जालिमसिंह को भी भय हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि धमलू को अविश्वास हो। 'चोर की दाढ़ी में तिनका' परन्तु उसने तनिक भी परवा नहीं की। वह समझता था कि धमलू मेरे हाथ में बुरी तरह फंसा है, अब छुट कर कहाँ जा सकता है। हाँ. ऐसा न हो कि कहीं बना बनाया खेल बिगाड़ दे, इस लिए उसके संताप और धीरज के लिए बातें बनाते रहना चाहिये।

अब धमलू का हाल सुनिये। धूना के पास बैठा हुआ क्षण क्षण में गांजे की चिलम पी रहा था और लोगों से बातचीत भी करता जाता था। परन्तु मन ही मन में दूर-दूर की बातें सोच रहा था। इसी बीच में वही दासी दीख पड़ी। उसकी जान में जान आई। सोचा अब तक मैंने स्वयं बेली का हाल नहीं पूछा। अच्छा अवसर है, इससे सारा हाल पूछ लूं कि जालिमसिंह ने कहां तक मेरे साथ ईमानदारी का व्यवहार किया है?

दासी ने कुछ इशारों से बात चीत करनी चाही, परन्तु साधू

ने अपना आसन दूर बिछा लिया और उससे यों कहने लगा—"क्यों, क्या कहती हो ?"

दासी—"रानी जी ने कहला भेजा है कि प्रबन्ध हो गया है। आधी रात को सन्दूक तुम्हारी कुटी में पहुंच जायेगी।"

महंतदास—"बहुत अच्छा, कोई घबराने की बात नहीं है। करतार चाहेगा तो रानी की मनोकामना पूर्ण होगी।"

दासी—"मैं केवल इतना ही कहने आई थी।"

महंतदास—"यह तो बताओ, तुम्हारे महल में कोई बेली नाम की लड़की भी है ?"

दासी—"बेली क्या होती है ? यदि आपका मतलब किसी फूल के पेड़ से है तो महल के बाग में सैकड़ों प्रकार के बेले लगे हुए हैं।"

महंतदास—"नहीं नहीं, बेली स्त्री का नाम है जो बीना के साथ रहती थी।"

दासी—"महल में तो इस नाम की कोई स्त्री इस समय नहीं है। हां, मैंने उड़ती हुई खबर सुनी थी कि राजकुमारी बीना की बहिन का नाम बेली है।"

महंतदास—'हाँ, उसी का हाल मैं पूछना चाहता हूँ।"

दासी—"उसका तो कोई पता नहीं है। एक दिन बीना राजकुमार से उसका हाल पूछ रही थी तो मैंने भी सुना। परन्तु उससे सिर्फ इतना ही नतीजा निकाल सकी कि कोई खबर नहीं। कौन जाने कहाँ मारी-मारी फिर रही है ?"

महंतदास—"मैंने तो सुना था कि उसको तानसैन नाम कोई गवैया जोधपुर के महल में पहुँचा आया है ?"

दासी—"बिल्कुल झूठ, यदि वह यहां आता तो मुझे अवश्य मालूम होता। मुझसे अधिक जानकर कौन है ! परन्तु महाराज, यह तो बताइये कि आपको बेली का पता कहां से मिला और इतनी

आपको उसकी चिंता क्यों हुई ? आप तो उत्तराखंड हिमालय पर्वत से आ रहे हैं और रायसिंह की राजधानी दक्षिण में है ?"

महंतदास—"इस पर तुझे आश्चर्य न करना चाहिये, साधू सब जानते हैं।"

दासी—"क्या बेली भी डायन है ?"

महंतदास—"कौन कहता है ? वह तो बड़ी भली स्त्री है, न जाने उस बेचारी की क्या दशा होगी ?"

यह कह कर महंतदास ने लम्बी साँस ली। दासी के कान खड़े हुए। यह भी थी तो स्त्री ही, समझ गई कि अवश्य कुछ दाल में काला है। एक बार तो मन में आया कि चलकर सारा हाल रानी से कह दूं, परन्तु मामला कुछ इतना बढ़ गया था कि उसने चुप रहने में ही भलाई समझी और बाबाजी को नमस्कार करके चली गई।

महंतदास ने उस दिन अपने श्रद्धालु भक्तों को कुछ समय पहले ही जाने की आज्ञा दे दी थी और इस चिन्ता में था कि किसी भांति अपने साथी को इस धोके का स्वाद चखा दूं। परन्तु उसको कैसे अवसर मिल सकता था ? इतने में बसन्तदास वहाँ आ गया और उसने पूछा कि और लोग आज इतनी जल्दी क्यों चले गये ?

महंतदास—"मैंने खुद बहाना करके उनको टाल दिया, क्यों कि मैं जानता था कि आज अपने ही काम में छुट्टी न मिलेगी।"

बसन्तदास—"आप बड़े ही समझदार और दूरदर्शी हैं।"

महंतदास—"यह बातें पीछे करना। पहले यह बताओ कि बेली का तुमने कुछ पता लगाया है कि नहीं ?"

बसन्तदास-"हां, बेली महल में है। मैंने उसी दासी से बहुत कुछ हाल मालूम किया है।"

महंतदास—"वह तुमको कहां मिल गई ?"

बसंतदास—"मैं महल की तरफ से निकला ही था कि दैव-योग से वह दीख पड़ी। मैंने उसे इशारे से बुलाया और सब बातें पूछ लीं।"

महंतदास—"उसने क्या कहा ?"

बसंतदास—"उसने बतलाया कि महल में ही रहती है, परन्तु कुछ उदास है।"

महंतदास—"फिर ?"

बसंतदास—"फिर क्या ? मैंने कहला दिया है कि धीरज धरो, जिसकी तुम्हारे दिल में चाह है वह तुम्हें लेने के लिये स्वयं जोधपुर आया हुआ है, वह बहुत शीघ्र ही तुमसे मिलेगा !"

महंतदास—"क्या तुमको आशा है कि तुम फिर जोधपुर आ सकोगे ?"

बसंतदास—"क्यों नहीं, मैं कोई काम अधूरा नहीं छोड़ सकता।"

महंतदास जानता था कि बसंतदास बिलकुल झूठ बोल रहा है। इसलिये उससे अधिक बातचीत करना व्यर्थ है। दोनों कुछ समय तक चुप रहे। अन्त में बसंतदास ने फिर बातचीत करना आरम्भ किया।

बसंतदास—"आज बीना तो अवश्य कुटी में आवेगी, इसके लिए तुमने क्या सोचा है ?"

महंतदास—"सोचने की आवश्यकता ही क्या है ? वह आवे और तुम उसको लेकर रातों-रात यहां से चल दो।"

बसंतदास—"यदि उसने शोर मचाया, तब क्या होगा ?"

महंतदास—"क्या मूर्खों की भांति बात करते हो ? तुम्हारे पास बेहोशी की दवा मौजूद है, वह अबला स्त्री कर ही क्या सकती है ?"

बसंतदास—"और आप ?"

महंतदास—"सच्ची बात तो यह है कि मैं जोधपुर से जाना नहीं चाहता, बहुत से आदमी मेरे श्रद्धालु हो गये हैं। परन्तु मैं अब रह भी नहीं सकता, क्योंकि किसी न किसी समय भेद खुलेगा तो पकड़ा जाऊंगा। इस लिये यहां से भागने में ही कुशल है।"

बसंतदास—"काम तो अब तक हम लोगों ने बड़ी होशियारी और चालाकी से किया, परन्तु देखें आगे क्या होता है?"

महंतदास—"यदि चतुराई और चालाकी से काम करोगे तो अब भी अच्छा ही होगा।"

बसंतदास तो अपने विचारों में मस्त है परन्तु महंतदास को इस बात की चिन्ता लगी हुई है कि किसी तरह यह धोकेबाज पकड़ा जाए, ताकि इसको मित्र के साथ विश्वासघात करने का फल मिले।

———

## ३५

# पाप का परिणाम

विलक्षण समय था, जिसमें प्रत्येक बात का होना सम्भव था। धूर्त और मक्कार लोग इस भांति अपना जाल बिछाते थे कि बड़ी सफलता के साथ लोगों को धोका भी दिया करते थे तथापि वह ईश्वरीय शक्ति जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध किया करती है, वे सुध नहीं थी। उसके प्रबन्ध में राक्षसों के घर देवता उत्पन्न होकर राक्षसी लीला की जड़ काट दिया करते हैं।

बसंतदास का पैर भूमि पर नहीं पड़ता था। उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि अब मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया, इस में कुछ संदेह नहीं है। परन्तु परमात्मा की शक्ति कुछ विपरीत कार्य कर रही थी। महंतदास का मन उसकी ओर से फिर गया था। उसने मन में ठान ली थी कि चाहे जिस भांति सम्भव हो, इस धूर्त को इसकी चालाकी का स्वाद चखाना चाहिए। उसने सारे उपाय सोच लिये थे और उस दिन श्रद्धालु भक्तों को चले जाने की आज्ञा देकर उनमें से एक आध की सहायता से एक बन्दर मंगवा लिया था, जो मकान के पीछे

बंधा था। नये मकान में स्थान काफी था. दो-तीन कमरे भी बन गये थे। वह इधर अपनी चिन्ता में लगा हुआ था, बसंतदास को अपनी ही चिंता थी। महंतदास चाहता था कि थोड़ी देर के लिए किसी तरह से बसन्तदास को बाहर भेज दे, जिस से उस कि अनुपस्थिति में नई चाल चलने का अवसर हाथ आवे। परन्तु दैव योग की बात, उसको बहाना बनाने की जरूरत नहीं हुई बसन्त ने स्वयं ही उससे कहा—"सन्दूक आधी रात से पहले नहीं आ सकता। यदि आप कहें तो मैं शहर हो आऊं ? कुछ सामान भी मोल लेना है। महन्तदास ने उत्तर दिया, हां खुशी से जाइये, मैं तो यहां हूँ ही।"

बसन्तदास तो शहर में चला गया, अब महन्तदास अकेला वहां रह गया। उसके चले जाने के दो एक घण्टे बाद दासी बक्स को कुटी में लिवा लाई। महन्तदास ने दासी को तुरन्त घर भेज दिया और सन्दूक को कमरे में लाकर उस का ताला खोला। बीना उसके भीतर अचेत पड़ी थी। महंतदास ने उसके मुंह पर पानी के छींटे मारे, उसने आँखें खोल दीं और बड़े आश्चर्य से महंतदास से पूछा—"तू कौन है और मैं यहाँ कैसे आई हूं, तथा मेरा राजकुमार कहां है ?"

महंतदास—"सुंदरी, मैं धमलू माली हूं। मेरी सूरत को तू अच्छी तरह पहिचानती है। जालिमसिंह ने तुझ को डायन प्रसिद्ध करके धोखे से महल से यहाँ मंगवा लिया है। अब उसका विचार है कि तुझे लेकर भाग जाए।"

बीना—"अरे धमलू। तुझे इन चालाकियों से क्या मिल गया ? तूने मेरी बहिन का सत्यानाश किया और अब तू मेरे पीछे भी पड़ा है ?"

धमलू—"मुझे तो बुराइयों का फल मिल गया। मां मर गई,

स्त्री छोड़ कर चली गई, घर-बार छूट गया। इस से बड़ा दण्ड और क्या मिल सकता है ? परंतु तू विश्वास कर कि मैं बिल्कुल निरापराध हूं। जालिम सिंह ने मजबूर करके मुझे से सारे अनहोने काम कराये। इस समय मैं तेरी सहायता करने के लिये तैयार हूँ, जिस से कि तुझे कोई हानि न पहुंचे। समय बीता जा रहा है, अधिक बात करने का अवसर नहीं है ! तू संदूक से निकल आ और हाथ में छुरी ले ले। सम्भव है कि आवश्यकता के समय तू इसे काम में ला सके। निकल आ और इस मकान के एक कोने में चुपके से बैठ जा। जालिम सिंह अब आता ही होगा, नहीं तो फिर समय नहीं मिलेगा।"

बीना झटपट सन्दूक से बाहर निकल आई। उसने छुरी हाथ में ले ली और पूछने लगी–"कहाँ जाकर छिपूं ?"

धमलू—"पास के कमरे में तेरे लिए स्थान कर रक्खा है, परंतु तुझ को मेरी थोड़ी सी सहायता करनी होगी ?"

बीना—"वह क्या ?"

धमलू—"इस मकान के बाहर बंदर बंधा है। तेरे स्थान पर उसको सन्दूक में बन्द कर दें। जालिम सिंह जब तेरे ख्याल से संदूक को खोलेगा तो बंदर उसकी गत बनाएगा।"

बीना हंसी और कहने लगी वाह धमल भाई, वाह ! तूने जालिम सिंह को दण्ड देने की अच्छी तरकीब सोची है। चलो जल्दी से बन्दर को लाकर इस के अन्दर बन्द कर दें।"

दोनों मिल कर उस बन्दर को लाए और उसको सन्दूक के भीतर बैठा कर ऊपर से पट बन्द कर दिया। थोड़ी देर तो वह तड़पता रहा, परन्तु अन्तमें चुप होकर बैठ गया।

धमलू ने अपनी कहानी जहाँ तक उस को मालूम थी, कह सुनाई। बीना ने कहा—यथार्थ में तू निरापराध है। जालिम

सिंह ने धमका कर तुझ को अपना साथी बनाया। विश्वास रख, यदि कोई बात हुई तो तेरा बाल भी बांका न होने दूंगी। परन्तु इस दुष्ट ज़ालिम सिंह को इसके किये हुए का फल अवश्य दिलाऊंगी।"

जब वे बात-चीत कर ही रहे थे कि किसी के आने का आहट मालूम हुई। धमलू ने कहा–"ज़ालिम सिंह आ रहा है, तू छिप जा और वह खुद भी कोने में छिप कर बैठ गया।

ज़ालिम सिंह ने आते ही सन्दूक को देखा तो हर्ष के मारे मन में फूला न समाया। बाबा जी, बाबा जी! दो तीन बार आवाज़ लगाई। परन्तु कौन उत्तर देता, बाबा जी तो किसी और ही ताक में लगे बैठे थे। उसने अपने मन में कहा कि बाबा जी तो कहीं आते जाते नहीं थे, आज इस समय कहां चले गये? सम्भव है कि किसी काम से बाहर गये हों। चलूं सन्दूक को खोलूं। परन्तु खोलने से पहले चारों तरफ के दरवाज़ों को को बन्द कर लूं।

उसने दरवाज़े बन्द कर लिये और बेहोशी की शीशी भी अपने हाथ में ले ली, कि यदि आवश्यकता पड़े तो काम आवे। इस तरह तैयार होकर सन्दूक को खोला और बीना को पुकारा– "बीना मैंने तेरे लिये कितने रूप धारण किये, अब चल मेरे घर को पवित्र कर।"

ये शब्द अभी उसके मुंह से निकलने भी नहीं पाये थे कि सन्दूक खुलते ही बन्दर जो क्रोध में लाल-पीला हुआ बैठा था, कूद पड़ा और अपने नखों से उसकी आंख तथा मुंह को नाचने लगा। प्रकाश नहीं था कि वह बन्दर को पकड़ ले। बन्दर ने उस को इतना नाचा और लोहूलुहान किया कि वह जोर जोर से चीख मारने लगा। चीख की आवाज़ सुनकर धमलू ने

अन्दर का दरवाज़ा खोला। बन्दर तो द्वार खुलते ही ऐसा भागा कि पता भी न लगा। धमलू ज़ालिम सिंह के पास आया और पूछने लगा "क्या बात है ? तू इस समय क्यों चिल्लाता है ? यह काम करने का समय है या शोर करने का ?"

ज़ालिम सिंह--"भई क्या बताऊं, इस में तो बन्दर छिपा था।"

धमलू—"नादान, इसमें बन्दर कहां से आया, यह तो वह सन्दूक है जिनमें बीना को बन्द करके रानी ने भेजा था। मैंने स्वयं आदमियों से लेकर यहां रखवा दिया था, कि जब तू आवेगा तो खोलेगा और यहां से भागने की तैयारी करेगा।"

ज़ालिम सिंह—"नहीं जी नहीं ! इसमें तो बन्दर था।"

धमलू—"पूर्ण प्रकाश न होने के कारण तूने बीना को बन्दर समझ लिया होगा। मरता क्या न करता, उसने सोचा होगा कि उसके मारने की किसी ने युक्ति सोची है और इस लिए तुझको घायल करके भाग गई होगी ! हां तूने ऐसा अच्छा अवसर हाथ से खो दिया, सारी करी-कराई महनत व्यर्थ हुई। मैं नहीं जानता था कि समय पर तू धोका खा जायेगा, नहीं तो मैं स्वयं आकर सन्दूक को खोलता। तू मेरे लिये क्यों नहीं ठहरा रहा ?"

जालिम सिंह—"मैंने बहुत आवाज़ें दीं परन्तु तूने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब लाचार होकर मैंने उसको खोला तो उसमें से बन्दर निकला।"

धमलू—"मैं कैसे मानूं ? मेरी तो समझ में नहीं आता कि बन्दर सन्दूक में कैसे रह सकता है ? क्या वह इस में बैठा हुआ था ?"

जालिम सिंह—"हां !"

धमलू—"किस तरह ?"

जालिम सिंह को चाहिये तो यह था कि वह बाहर धमलू को बताता, परन्तु वह सन्दूक के भीतर लेट गया और कहने लगा देखो इस तरह। धमलू ने झट सन्दूक बन्द कर दिया। अब जालिम सिंह ने शोर मचाना शुरू किया—"धमलू खोल दे, मेरा दम घुटता है, मैं मरा जाता हूँ। उसने कहा—"धीरज धर, बन्दर ने तुझ को बहुत सताया है, इस में बैठ कर जरा दम ले ले। सन्दूक मुझ से नहीं खुलता, कोई और आदमी आकर इस को खोलेगा।"

जालिम सिंह घबराया। उसे मालूम हो गया कि धमलू ने मुझ को विपत्ति में डाला है। मैंने इसे एक दम झाँसा देना चाहा था, परन्तु इस ने उल्टी मेरी ही ख़बर ली। जो दूसरे के लिये गढ़ा खोदता है उस के लिये कूंआ तैयार रहता है। वह चुप हो कर लेटा रहा।

वीना थोड़ी ही देर बाद आई। उस ने सन्दूक में ताला लगा दिया और ताली अपने हाथ में लेकर धमलू से कहने लगी—"अब क्या राय है ?"

धमलू—'रात का समय है, मैं क्या कहूँ ? न तो तुम को यहाँ रहने की सलाह देता हूं और न इस सन्दूक को ही अकेला छोड़ सकता हूं। इस बार यदि जालिम सिंह हाथ से निकल गया तो वह मुझे अवश्य मार डालेगा।"

वीना—"घबराओ नहीं। जिस तरह तुमने उस के हाथ से मुझ को बचाया है, मैं भी उसी प्रकार तुम्हारी रक्षा करूंगी और राजकुमार सदैव तुम को अपने साथ रक्खेगा।"

धमलू—"अच्छा, थोड़ी देर और यहां ठहरो। यदि कोई आदमी मिल जाएगा तो यह सन्दूक राजकुमार के पास भिजवा

दिया जायेगा।"

जो लोग यह समझते हैं कि वे बुरा काम कर के बच जायेंगे, वे भूल पर हैं। बुराई का फल बुरा होता है। यह माना कि कुछ काल तक बुरे आदमी अपने उद्योग में सफलता पाते रहें, परन्तु जब समय आता है तो वे अपनी बुराई का फल अवश्य भोगते हैं।

जालिम सिंह ने कितने घर बिगाड़े। उस ने छोटे--छोटे ही क्या, बड़े--बड़े आदमियों के नाकों में दम कर दिया था। लूटमार और चोरी उसके जीवन का उद्देश्य था। जब उसके पास इस प्रकार कुछ जायदाद हो गई तो भांति--भांति के अन्याय करने लगा। कई छोटे--मोटे राजाओं ने उसे सालाना कर देना प्रारम्भ कर दिया, जिस से उनकी प्रजा पर अन्याय और अत्याचार न होने पावें। जब उसने अपना सिक्का अच्छी तरह से बैठा लिया तो उसे किसी राज घराने में विवाह कराने की इच्छा पैदा हुई, कि जिस से उस की अच्छे सरदारों में गणना हो जाए। रायसिंह को वह कमजोर समझता था। उस की लड़की बेला को वह चाहता था। परन्तु जब रायसिंह ने कोरा जवाब दे दिया तो उसके मनमें बदले की आग भड़क उठी। पाठक जानते ही हैं कि उस ने उस बेचारी के साथ कैसा व्यवहार किया। जब उसे उस में सफलता न हुई तो वह बीना के पीछे पड़ गया। यदि कहीं धमलू उस से विरुद्ध न होता तो सम्भव था कि उसकी सफलता हो जाती। परन्तु उस के बुरे कर्म प्रति दिन जमा होते गये और उन में फल देने की शक्ति आ गई? यही कारण है कि वह उसी कूंए में गिरा जो उस ने दूसरे के लिये खोद रक्खा था।

इधर जालिम सिंह तो सन्दूक में बन्द पड़ा है, उधर जिस

समय राजकुमार महल में गया और बीना को वहां न पाया, तो उसकी चिन्ता की कोई सीमा न रही। दासियां विस्मित हो गईं, नौकरों ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। परन्तु मामला बेढब था। ऐसी बात कभी छिपाए नहीं छिप सकती थी। द्वारपाल ने महल से सन्दूक के जाने का हाल कह दिया। दासी पकड़ी गई। और जब उसको धमकाया गया तो उसने सब हाल कह सुनाया।

सारे नगर में खलबली मच गई। सैंकड़ों पियादे और सवार खोज में चहुं ओर दौड़ने लगे। राजकुमार स्वयं भी बहुत से लोगों के साथ वहां पहुंचा, जहां साधू रहते थे। वहां धमलू और बीना बाट जोह ही रहे थे।

जिस समय राजकुमार की दृष्टि उस पर पड़ी तो उस की जान में जान आई। उसने सारा हाल उस के मुंह से सुना और धमलू के दोषों को बीना के कहने से क्षमा कर के सन्दूक को महल में उठा लाया।

राजा जोधानाथ ने जब यह हाल सुना तो उसने मुंह में उंगली डाल ली। बूढ़ी रानी की यह दशा थी कि काटो तो बदन में लहू नहीं। वह अपनी मूर्खता पर घण्टों रोती रही। अन्त में जब बीना ने उसे धैर्य और सन्तोष दिया तब उस के चित्त को शांति हुई।

सारी रात इसी में बीत गई। दिन निकलने पर राजकुमार ने वह बन्द सन्दूक उसी तरह से धमलू की सुपुर्दगी में अदालत में भेज दिया। चूंकि मामला संगीन था, इस लिये प्रधान जी के सुपुर्द किया गया।

जब तमाम अहलकार आ गये तो सन्दूक खोला गया। जालिम सिंह उस में से निकला। उसके चेहरे से क्रोध टपक रहा

था। चाहता तो वह यह था कि यदि कहीं अवसर मिले तो वहां से भाग निकले, परन्तु चारों तरफ हथियार बंद सिपाही खड़े हुए थे। लोग जालिम सिंह के नाम से परिचित थे, क्यों कि जोधपुर के निकटवर्ती प्रदेशों में उस ने बड़ी लूट मार की थी। सन्दूक से बाहर आने पर उसकी मुश्कें कस ली गईं और पाँव में बेड़ी तथा हाथ में हथकड़ी डाल दी गई।

दीवान ने पूछा-"तेरा नाम ज़ालिमसिंह है?" उसने कहा-"हाँ, मेरा नाम जालिम सिंह है।"

दीवान—"तूने यह क्यों किया?"

ज़ालिम सिंह—"मुझे जो कुछ करना था, वह कर दिखाया। अब तुम्हारी बारी है जो जी में आवे वह करो।"

दीवान—"क्या तू रायसिंह की लड़की राजकुमारी बीनी को घर से भगा कर लाया था?"

जालिम सिंह—"हाँ, मैंने दुष्ट रायसिंह से बदला लेने के लिये यह काम किया था।"

दीवान—"तूने बीना की इज्जत बिगाड़ने की नीयत से साधू का रूप बनाया था?"

जालिम सिंह—"अवश्य, मैंने ऐसा किया।"

दीवान—"तूने ऐसा क्यों किया? क्या बीना ने तेरा कुछ बिगाड़ा था?"

जालिम सिंह—"नहीं मैं उसके रूप लावण्य को देख कर मोहित हो गया था। मैं उसको अपनी स्त्री बनाना चाहता था। परन्तु वह आसानी से हाथ आने वाली नहीं थी इसी कारण यह किया गया।"

दीवान—"क्या तूने गोविन्द माधो में अमर कुमार को विष दिया था?"

जालिमसिंह—"मैंने विष नहीं दिया था, केवल बेहोशी की दवा सुंघा कर उसको अधमरा कर दिया था। यदि मुझे ज्ञात होता कि मुझे यह दिन देखना होगा, तो मैं उसे मारे बिना नहीं रहता, अब मुझे अपने किये पर पश्चाताप होता है।"

दीवान—"इन कर्मों के करने में क्या तेरे और भी साथी थे?"

जालिमसिंह—"थे, परन्तु वे अपनी मरजी से नहीं हुए थे मैंने उनको ऐसा करने के लिए मजबूर किया था। मेरे भय के कारण वे मेरे साथ शामिल हो गये थे। वे सर्वथा निरापराध हैं इसलिये मैं उनका नाम नहीं लेना चाहता।"

दीवान—"वे कितने थे?"

जालिमसिंह—"ऐसा सवाल करना व्यर्थ है, मैं मरते समय किसी तरह भी किसी का पता न दूंगा।"

दीवान—"तुझे अपना अपराध स्वीकार है?"

जालिमसिंह—"जालिमसिंह झूठ नहीं बोलता। उस को जो कुछ करना था कर चुका। तुम अब जो कुछ दन्ड देना चाहते हो दो। यदि आज के दिन तुम मुझे फांसी भी दे दो तो मुझे स्वीकार है।"

दीवान—"धमलू के विरुद्ध क्या तुझे कुछ कहना है?"

जालिमसिंह—"नहीं। वह तो निरा काठ का उल्लू है। वह मेरी उंगलियों के इशारे पर नाचता था। उसको उतनी बुद्धि कहां थी कि समझ के अनुसार काम करे। मैंने उसको मतलब का आदमी जान कर फंसा लिया था। कुछ लोभ लालच और कुछ भय के कारण वह मेरा साथी बन गया था।"

दीवान—"उसको लोभ किस बात का था?"

जालिमसिंह—"मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता।"

दीवान—"तू अपने लिये क्या दंड चाहता है?"

जालिमसिंह—"ऐसा दंड, जिससे मेरे प्राण जल्दी ही निकल जाएं। अच्छा तो यह होगा कि तुम मुझको पहाड़ की चोटी से गिरा दो, जिससे मैं आसानी से मर जाऊं और जंगल के जीव जन्तु मेरा मांस खा जायें।"

दीवान—"तू किसी को देखना चाहता है?"

जालिमसिंह—"नहीं, क्योंकि न तो कोई मेरा प्यारा अथवा सम्बन्धी है और न मैं इस समय किसी को देखने का इच्छुक हूँ।"

अदालत में सैकड़ों आदमी जमा थे। सब उसकी निर्भीकता को देख कर विस्मित रह गये। विशेष कर अमर कुमार उसकी बहादुरी की प्रशंसा करता रहा। उसके इशारे पर दीवान ने पूछा कि यदि तुझे जीवन दान किया जाये तो क्या तू अपने जीवन को सुगमता से बदल सकेगा?"

जालिमसिंह—"नहीं, मैं ने जो ढंग स्वीकार किया है, अन्त समय तक मैं उसी पर जमा रहूँगा। मैं जाति का राजपूत हूँ, सिंह कभी लोमड़ी नहीं हो सकता। जो हुआ सो हुआ। जैसे मेरे संस्कार थे वैसे ही मैंने काम किए, अब क्यों मैं कायर बनूं। मैं किसी शर्त पर सुलहनामा करने को तैयार नहीं हूं और न ही अपनी चाल-ढाल को बदलूंगा। यदि आपने छोड़ दिया तो मेरा हिम्मत और भी बढ़ जायेगी।"

दीवान—"लूट मार करना या किसी स्त्री को धोका देकर धर्म से पतित करना क्षत्रियों के लिए लज्जा की बात नहीं है?"

जालिमसिंह—"इस समय मैं तुम्हारे वश में हूं जो चाहो कह लो। गालियां दो, बुरा भला कहो, परन्तु तुम्हें स्मरण रहे कि स्त्री, धन और भूमि ये राजपूतों की सम्पत्ति है। आसानी से

कभी कोई सम्पत्ति वाला बना है ? प्रकृति केवल उसीके अधिकार में आती है जो पुरुष बनकर उसको अपने आधीन करता है। मुझे अपनी करनी पर लज्जा नहीं है। आज तुम मुझको ऐसी बातें सुनाते हो, कल यदि मैं जीवित रहूँ तो मेरी संतान और क्षत्री मेरी वीरता के काम का बड़े अभिमान से वर्णन करेंगे। इस-दुनिया की यही बात है। जब इसका दांव चल जाता है तो मनुष्य को तुच्छ और घृणित बना देती है। परन्तु जब दांव नहीं चलता तो उसी के गुण गाती है।"

दीवान—"अब भी संभल जा, देख अब तेरा अन्त समय आ गया है। यदि तुझे अब भी किसी वस्तु की इच्छा है तो कह, नहीं तो पीछे अवसर नहीं मिलेगा ?"

जालिमसिंह—"मेरे मन में किसी बात की इच्छा नहीं है। मैं मृत्यु के कन्धे पर चढ़ कर आया था और उसी के कंधे पर चढ़ कर जाऊंगा। राजपूत के जीवन का मार्ग कंटकमय बनाया गया है। यदि वह साहस वाला है तो दुनिया में ऐश्वर्य का सुख भोगता है, यदि वह साहस हीन है तो उसे क्षत्रीय कहलाने का अधिकार ही नहीं है। हां तुम्हारे कहने पर मैं अपनी इच्छा प्रकट करता हूं कि यदि हो सके तो एक बार रानी बीना के दर्शन करा दीजिए, मैं मृत्यु से पहले उससे अपने अपराधयों की क्षमा मांग लूं।"

दीवान ने तो संकोच भी किया, परन्तु अमर कुमार ने भरे दरबार बीना को बुलाया। उसको देख कर जालिमसिंह ने प्रणाम किया और कहा—धन्य है तू सती ! जिसने अपने प्रण को पूरा किया और मेरे हाथ न लगी। तू सच्ची क्षत्राणी है, धर्मकी देवी है। जालिमसिंह भी अपने आप को राजपूत ही समझता है, चाहे संसार उसको कुछ भी क्यों न कहे। राजकुमारी मैं तुझे प्रणाम

करता हूं। तुम मेरे अपराधों को क्षमा करना। दीवान साहिब, अब शीघ्र मुझे प्राण दन्ड दीजिये। मुझे इस संसार में अधिक जीवित रहना स्वीकार नहीं।"

दीवान ने उसको पहाड़ की चोटी से गिराए जाने का फैसला सुनाया और हुक्म के लिए महाराज के पास कागज भेज दिया। थोड़ी देर में कागज पर महाराज के हस्ताक्षर होकर आ गये। दीवान जी ने जालिमसिंह से कहा–"लो तुम्हारी कामना पूर्ण हो गई। महाराज ने भी हुक्म दे दिया है कि तमको पहाड़ की चोटी से गिराया जाए।" जालिमसिंहने उसी आन बानसे हुक्म सुना। उसके चेहरे से तनिक भी शोक प्रकट नहीं होता था।

शृंखलाओं से बंधे हुए सिंह को लोग पहाड़ की चोटी पर लाए। हजारों आदमी इस भयंकर घटना को देखने के लिए उपस्थित थे। जिस समय उसको पहाड़के शिखर पर खड़ा किया गया। उस समय यही मालूम होता था कि प्रकृति ने उसको सारे संसार पर राज्य करने के लिए उत्पन्न किया था, परन्तु बुरे कर्मों के फल ने उसको कुछ का कुछ बना दिया। उसने लोगों को देख कर कहा...

जो जैसी करनी करे, तैसा ही फल पाय।
कर्म प्रधान विश्व कर राखा, जो जस कीन, सो तस फल चाखा।

सिपाहियों ने उसको ऊपर से ढकेल दिया और वह धम से नीचे की ओर गिरा। उसके गिरने का बड़े जोर से शब्द हुआ और लोगों के देखते-देखते उसने प्राण त्याग दिये। मृतक शरीर घाटी में गिरा। थोड़ी देर तक तड़पता रहा, फिर निश्चेष्ट हो गया। यह हाल देख कर सब अपने घर को लौट आये और बहुत दिनों तक उसकी निर्भीकता का जिक्र करते रहे।

जालिमसिंह के जीवन का यह अन्त हुआ। बुराई का फल सदैव बुरा होता है। यदि वह सदमार्ग पर चला होता तो दुनिया में सदैव के लिये बड़ा आदमी हो जाता। कर्म की गति प्रबल है।

---

## ३६

# बिछड़े हुवों का मिलाप

जालिमसिंह के मरने के बाद अमर कुमार और बीना बड़े आनन्द से रहने लगे। अब उस निर्दयी का भय सदा के लिये दूर हो गया। धमलू द्वारपाल बनाया गया यद्यपि राजकुमार उसको नहीं चाहता था, परन्तु बीना के कारण उसने उससे कुछ नहीं कहा। धमलू के जीवन में भी महान परिवर्तन हो गया और वह रात-दिन बड़े परिश्रम से काम करने लगा। जोधानाथ के हर्ष की कोई सीमा न थी, सूखी हुई नदी में फिर से पानी आ गया था। राज पाट का मालिक अपने आप बिना बुलाये चला आया।वृद्धा रानी ने जब साधुओं की करतूत का हाल सुना तो उसके प्राण सूख गये। पहले जो उसकी श्रद्धा और भक्ति साधू महात्माओं में थी भी, वह बिल्कुल हो जाती रही और रात-दिन वह अपना समय पूजा भजन में लगाने लगी। जिस दासी ने बीना की जंघा पर त्रिशूल का चिन्ह बनाया था, वह महल से निकाल दी गई।

इस घटना के कुछ दिन बाद जोधानाथ को अमर कुमार को युवराज बनाने का विचार पैदा हुआ। मंत्रीगण से सम्मति लेने

के बाद एक दिन नियत किया गया कि जिस दिन यह रस्म अदा की जाए। बीना ने अमरकुमार से कहा, क्या ही अच्छा होता यदि मेरे माता-पिता भी इस उत्सव में सम्मिलित होते। राजकुमार ने कहा—उनका बुलाना तो कठिन नहीं है, वे चले आएंगे, पर वे तो यह समझते होंगे कि बेली जोधपुर की राजकुमारी है। तुम को देखकर तो वे खुश न होंगे। परन्तु बीना ने कहा चाहे खुश हों या न हों, इसकी कोई चिंता नहीं है। उनको बुलाना अवश्य चाहिये। आज तीन साल बीत गये, अभी तक मैंने उनको देखा भी नही हैं। वे माँ बाप हैं चाहे वे कैसे ही क्यों न हों, और इसी लिए उनके देखने को मेरा जी चाहता है। आप उन्हें चिट्ठी लिख दीजिये, परन्तु उनमें मेरा या बेली का हाल न लिखिये। जब वे आयेंगे तो मैं सारा हाल अवसर पाकर उनको सुना दूंगी।

अमर कुमार ने जोधानाथ से राय लेकर उनको पत्र लिखा।

श्रीमान राजा रायसिंह जी,

जोधपुर में मेरे युवराज होने का उत्सव एक सप्ताह में होगा। आप की पुत्री की इच्छा है कि आप व रानी साहिबा भी इस अवसर पर पधार कर मेरे घर की शोभा बढ़ावें। मेरे पिता महाराजा जोधानाथ जी की भी यही प्रार्थना है। आशा है कि आप हामारी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे।

दर्शनाभिलाषी

अमरकुमार युवराज

जिस समय यह पत्र रायसिंह को मिला तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। रानी को भी पत्र सुनाया। उन दोनों को जो हर्ष और आनंद हुआ, वह अकथनीय है। इन मूर्खों का अभी तक यही विचार था कि बेली जोधपुर के राजकुमार के साथ व्याही गई है। इन

को अभी तक मालूम ही नहीं कि भाग्य का पासा पलट गया। रायसिंह की प्रजा के बहुत से मनुष्य यह जानते थे कि बेली को धमलू ने नष्ट कर दिया है परन्तु भय के कारण किसी ने भी उन से कहने का साहस नहीं किया।

रानी—"स्वामी देखिये, बेली कैसी भाग्यवान है। अब वह छत्रपति जोधपुर नरेश की महारानी होगी। माता-पिता को इससे बढ़कर और क्या आनन्द हो सकता है?"

राजा—"निःसंदेह, सब माता-पिता अपनी सन्तान को अच्छी अवस्था में ही देखना चाहते हैं।"

रानी—"जोधपुर से बड़ा राज्य और कौन सा होगा? वह राजस्थान की नाक है और हम लोग भी कैसे भाग्यवान हैं कि इस वंश के साथ हमारा सम्बन्ध हो गया।"

राजा—"बेली तो अच्छे घर गई, शोक है तो अभागिनी बीना का। कौन जाने अब उसका क्या हाल होगा? रानी मैं ने उस के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया, वह भी मेरी लड़की ही थी किन्तु मैंने बड़ा अपराध किया। इसके लिए कभी कभी मैं बड़ा पश्चाताप करता हूँ।"

रानी-"पश्चाताप करने की आवश्यकता नहीं है। वह कृतघ्नी सन्तान थी, तुम को कुम्हार बताती थी। ऐसी लड़की के लिए पश्चाताप करना मूर्खता है।"

राजा—"परन्तु करूं तो क्या करूं, हृदय नहीं मानता। जब उसका स्मरण हो आता है तो कलेजा धक से रह जाता है। अच्छा होता यदि उसका विवाह किसी छोटे-मोटे राज घराने में ही होता तो।"

रानी—"परन्तु वह तो लकड़हारे की स्त्री बनने के लिये ही पैदा की गई थी, आप उसके भाग्य को कैसे पलट सकते थे? अब

इन बातों को भूल जाइये. चलिये बेली के राज उत्सव में चलने की तैयारी करें।"

राजा और रानी दोनों जोधपुर आए। राय सिंह न तो उच्च राजवंश में था, और न वह अच्छे राजाओं में ही गिना जाता था। इस लिये जोधा नाथ या अमरकुमार उनके स्वागत के लिये नहीं आए, केवल प्रधान जी ने ही उनका स्वागत किया और उन्हें अच्छे स्थान में ठहरा दिया। राय सिंह और उस की रानी को बेली के उत्सव के देखने के सिवाय और कुछ भी ध्यान नहीं था। यदि उन्हें तनिक भी स्वाभिमान का ध्यान होता तो जोधपुर क्यों आते ?

बड़े आनन्द मंगल से उत्सव मनाया गया। जिस समय राजा की दृष्टि अमरकुमार और बीना पर पड़ी तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु उस समय कुछ कहने का अवसर नहीं था, इस लिये वे चुपचाप रहे। जोधानाथ भी उसके मन की बात को समझ गया और उनका ध्यान बंटाने के लिए भांति भांति की बातें करने लगा। परन्तु वे बड़े आश्चर्य में थे और मन ही मन में सोचते थे कि परमात्मा क्या हम यह स्वप्न देख रहे हैं ? क्यों कि बीना तो लकड़हारे के साथ विवाही गई थी।

महाराज ने गाने वालों को गाने का हुक्म दिया, कि अपना गाना प्रारम्भ करें। कई वेश्याएं बुलाई गई थीं। और बहुत सी उत्सव की खबर पाकर स्वयं ही आ गई थीं। पहले तानसेन वाली मंडली खड़ी हुई, उस में बेली भी थी। बेली ने ही गाना शुरू किया।

वेश्या के रूप रंग को देख कर और उसकी आवाज सुनकर रायसिंह और उसकी रानी को बहुत दुःख हुआ। फिर भी उन्होंने अपने दिल को वश में किया। परन्तु वह कैसे थम सकता था। वे

इसी ध्यान में थे कि इतने में वेश्या ( बेली )ने दूसरा गीत गाना शुरू किया।

गीत अभी ख़तम भी नहीं हुआ था, कि धमलू चोबदार की पोशाक पहिने हुए दरबार में पान की तश्तरी लेकर आया। राय-सिंह और रानी ने उसकी सूरत को देख कर एक दूसरे को संकेत किया और उनके हृदय में ज्वाला मुखी पहाड़ की तरह क्रोध की ज्वाला भड़कने लगी। उन्होंने अपने को बहुत रोका, परन्तु अन्त में उन से न रहा गया। रायसिंह ने हाथ के इशारे से प्रधान जी का बुलाया और उन से कहा, मैं जोधानाथ जी से एकान्त में बातचीत करना चाहता हूँ। यद्यपि यह प्रार्थना इस समय युक्त नहीं थी और रंग में भंग डालने वाली थी, परन्तु रायसिंह और उसकी रानी के लिहाज से महाराज सभा से उठ कर एकांत स्थान में पहुंच गये।

जोधानाथ—"कहिये क्या आज्ञा है ?"

रायसिंह—"मुझको बड़ा भ्रम हो रहा है। आप अपने राज-कुमार, उसकी स्त्री और युवक चोबदार को तुरन्त बुलवा लीजिये, तब मैं आप को असल बात सुनाऊंगा।"

जोधानाथ सुन चुका था कि किसी कारण से राय सिंह ने अपनी लड़की बीना का लकड़हारे के साथ ब्याह दिया था, किंतु इस से अधिक हाल उसको मालूम नहीं था। सब लोग एक एक करके बुलाए गए। सब से पहले राजकुमार और बीना आए ! दोनों ने राय सिंह को प्रणाम किया।

रायसिंह—'बीना, तू यहाँ कैसे आई ?"

बीना—"पिता जी, जिसको आप ने लकड़हारा समझ कर मुझ को ब्याह दिया था। वह असल में जोधपुर का राजकुमार

निकला, और उसी के साथ मैं यहाँ आई।"

रायसिंह और रानी के दिल पर साँप लोटने लगे। पूछा, "बेली कहाँ है ?"

बीना—"मुझको उसका कुछ भी पता नहीं।"

रायसिंह—"अच्छा चोबदारको बुलाओ।" वह भी आ गया।

रायसिंह—"क्यों रे ! तू जोधपुर का राजकुमार बन कर मेरे यहां गया था ? तेरा नाम क्या है ?"

चोबदार—"मेरा नाम धमलू माली है। मैं आप की प्रजा हूँ। मैं स्वयं राजकुमार नहीं बना था, बल्कि जालिम सिंहने जबरदस्ती मुझको बना दिया था।"

रायसिंह—"तू जानता है बेली कहाँ है ?"

धमलू—"विवाहके बाद जालिम सिंह और मेरे बीच में अन बन हो गई थी और तानसैन गवैया उसको लेकर भाग गया था। बहुत दिनों तक उसका कुछ हाल ज्ञात न हुआ, आज बेली उसी कत्थक के साथ इस उत्सव में नाचने आई है और इस समय यहाँ पर उपस्थित है। उसने ऐसा रूप बना रखा है कि किसी को उसका भ्रम भी नहीं हो सकता, परन्तु मैं ने तो एक ही क्षण में उसे पहिचान लिया।"

सब से पीछे बेली आई। जिस समय उसकी दृष्टि राजा, रानी और बहिन पर पड़ी, तो बीना ने जल्दी से उसे गोद में उठा लिया। राजा-रानी चित्र की भाँति स्तम्भित रह गये।

जब बेली की आँख खुली तो उसने स्वयं को बीना की गोद में पाया। वह लज्जित हो गई और कहने लगी—"बहिन छोड़ दे, मुझ पापन को हाथ न लगा। तू सत्यवती और धर्मात्मा है, मैं अभागिन और चण्डालनी हूँ। यदि मैं ने तेरा उपदेश ग्रहण किया होता तो माँ का लाड-प्यार मुझे इस दशा

में न लाता। तू सच कहती थी कि विद्या के बिना स्त्री दो कौड़ी की होती है! मैं तेरी बातों की हंसी उड़ाया करती थी। तू ने अन्त समय में बुला कर समझाया था कि यह राजकुमार नहीं है, बल्कि किसी माली का लड़का है। परन्तु मेरे सिर पर अभिमान का भूत सवार था, मैंने तेरी नहीं सुनी, इसी से मेरी यह दुर्दशा हो रही है। बीना, सती बीना! बेली तेरी बहिन नहीं है, उस को तू बहिन मत कह। वह तो स्पर्श करने के योग्य भी नहीं रही।" यह कह कर वह मुंह में रूमाल दे कर रोने लगी।

बीना—"मेरी प्यारी बहिन, तू पहले भी मेरी बहिन थी और अब भी मेरी बहिन है तथा जब तक यह देह है तब तक तू मेरी बहिन रहेगी। लाठी के मारने से पानी नहीं फटता। यह भाग्य की बात थी। जो हुआ सो हुआ, अब पश्चाताप करने से क्या होता है?"

बेली—"नहीं, बीना बहिन! इस में कई आदमियों का हाथ है, नहीं तो मैं ऐसी दुर्दशा को न पहुँचती। तू कहा करती थी कि यदि स्त्री अच्छी हो तो पुरुष को धनी बना देती है। परन्तु मैं इसके विपरीत ही समझती थी, इसी से मैं पतित हो गई।"

रायसिंह—"हाय! अपनी सन्तान का शत्रु मैं ही हूं।"

बीना—"पिता जी धीरज धरो, यह समय विलाप करने का नहीं है। बेली तू मेरे साथ महल में चल, मैं तेरी हृदय से सेवा करूंगी।"

बेली—"नहीं बीना बहिन, मुझ अभागिनी को अपने साथ मत रखो, लोग तुमको बुरा कहेंगे?"

बीना—"सिवाय राज कुमार के और मुझ को बुरा कहने

वाला कोई नहीं है, और विश्वास रख, वे तुझ से आधी बात भी नहीं कहेंगे ।"

रायसिंह की रानी आदि से अन्त तक बेली और बीना की बातें सुनती रही । उसके हृदय पर बड़ी चोट लगी । वह अपने मन में कहने लगी कि हाय ! यह वही बीना है जिस का अनादर करने का मैंने भरसक प्रयत्न किया था, परन्तु यह ही अब दुःख में बेली का साथ देना चाहती है । मुझ से इतना भी न हुआ कि बेली को अपनी लड़की समझ कर गले से लगा लेती ? अभिमान के कारण मेरे मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला । इसी सोच में वह बेहोश हो गई और भूमि पर गिर पड़ी । बीना ने उसे गोद में उठाया और मुंह पर गुलाब छिड़का । जब उस को होश आया तो उस ने भी अपने को बीना की गोद में पाया । उस के मुंह से एक बारगी ये शब्द निकल पड़े—"बीना, तू देवी है । मैंने तेरी कदर न जानी और सौतेली लड़की समझ कर सदा तुझ को दुःख देती रही । हाय बेली ! मेरे अभिमान ने ही तुझ को बिगाड़ दिया ।"

बेली—"माता जी, तुम ने कुछ नहीं किया ! अपनी समझ में तो तुमने मुझ को जोधपुर के राजकुमार के साथ व्याहा था, परन्तु भाग्य में तो दुःख बदा था, तुम करती तो क्या करती ? माँ बाप तो जन्म के साथी हैं, कर्म के साथी नहीं । बीना ने हम सब के उद्धार की क्या क्या बातें सुनाईं, परन्तु सब अभिमान में चूर थे, किसी ने भी उस की ओर ध्यान नहीं दिया । जो होना था सो हो लिया, अब चिन्ता करना व्यर्थ है । इन सब लोगों का मिलाप दुखदाई और शिक्षाप्रद था । जोधानाथ ने अवसर देख कर सब को समझाया, कि भाग्य का खेल विचित्र होता है । फिर बीना ने यह बात सुनाई कि किस तरह उसने विवाह के पहिले ही दिन निर्धन लकड़हारे को धनवान बना

दिया। जो कुछ बीना ने कहा था वह कर दिखाया। सच है, यदि स्त्री धर्मात्मा और अच्छी हो तो अपने पति को राजा से भी ज्यादह अच्छा बना सकती है। बेली पहले तो बीना के साथ महलों में रहना नहीं चाहती थी, परन्तु जब जोर दिया गया तो कुछ दिन उस के साथ ही रही। अमर कुमार ने कुछ दिन बाद बेली का ब्याह किसी सरदार के साथ कर दिया। रायसिंह अपनी रानी को लेकर राजधानी को चला गया और जीवन पर्यन्त अपनी भूल पर पश्चाताप करता रहा।

धमलू अमरकुमार का चोबदार बना। इसके बाद क्या हुआ? इसके कहने की हम को कोई आवश्यकता नहीं है और न ही हमारे पाठकों को उसके जानने की कोई आवश्यकता है!

॥ समाप्त ॥

# स्कूल लाएब्रेरियों तथा प्रौढ़ शिक्षालयों के लिए हमारा नवीन प्रकाशन

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ पंचतन्त्र की कहानियां सरल भाषा में

| | | |
|---|---|---|
| १—सच्चे मित्र | श्रीकृष्ण गुप्त | छः आने |
| २—घमण्ड का सिर नीचा | ,, | ,, |
| ३—नकटा राजा | सरस्वती कुमार दीपक | ,, |
| ४—झूठे की हार | ,, | ,, |

सरल भाषा में अन्य शिक्षाप्रद और मनोरंजक पुस्तकें

| | | |
|---|---|---|
| १—चावल की खेती | श्री हरशरण दास 'शरण' | छः आने |
| २—सुनहरा सपना | ,, | आठ आने |
| ३—सोने की खेती | ,, | छः आने |
| ४—धरती का लाल | ,, | छः आने |
| ५—बचो और बचाओ | ,, | आठ आने |
| ६—परिश्रम का फल | ,, | छः आने |

मंगाने का पता—

**नारायणदत्त सहगल एन्ड सन्स,**

चौंक फतहपुरी, देहली । ६

## पंजाब, पैप्सू, उत्तर प्रदेश, बिहार और देहली सरकार द्वारा पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत हमारा प्रकाशन

| | | |
|---|---|---|
| १. कौन किसी का ? | रवीन्द्र नाथ टेगोर | २।) |
| २. चान्द सितारे | ,, ,, | २॥) |
| ३. डाक घर | ,, ,, | ॥=) |
| ४. प्रेम पुजारिन | सुदर्शन | २।) |
| ५. समाज का अत्याचार | शरत् चन्द्र चैटर्जी | २॥।) |
| ६. जीना सीखो | देसराज व गन्धर्व | २॥) |
| ७. आज के महापुरुष, जब बच्चे थे | दोनों भाग | १।) |
| ८. आंचल और आंसू | शिक्षा रानी "निगम" | ३॥) |
| ९. शाही लकड़हारा | शिवव्रत लाल बर्मन | ३॥) |
| १०. शैतान की मौत | टालस्टाय | ॥=) |
| ११. विज्ञान के चमत्कार | देसराज व गन्धर्व | ॥=) |
| १२. राई का पहाड़ | देसराज | ।=) |
| १३. लालच बुरी बला है | श्री कृष्ण गुप्त | ।=) |
| १४. जैसी करनी वैसी भरनी | ,, ,, | ।=) |
| १५. काठ की हांडी | ,, ,, | ।) |
| १६. आग | जमना दास "अख्तर" | २॥) |
| १७. आँसू | ,, ,, ,, | ३।) |
| १८. पायल | ,, ,, ,, | ४) |
| १९. बुर्दा फ़रोश | ,, ,, ,, | २।) |
| २०. फांसी की कोठरी से | ,, ,, ,, | ३॥) |
| २१. क्रान्तिकारी रमणी | मुं० तीर्थराम फिरोजपुरी | ४॥) |
| २२. विजय किस की ? | ,, ,, | ४) |
| २३ महाराणा प्रताप | मा० शान्त | ॥) |
| २४. गुनाह | दत्त भारती | ३) |
| २५. चोट | ,, | ४) |

नारायण दत्त सहगल एण्ड सन्ज, फतहपुरी देहली